संगीतज्ञों के संस्मरण

लेखक
विलायत हुसैन ख़ाँ

संगीत नाटक अकादेमी
नई दिल्ली
१९५९

प्रकाशक :
कुमारी निर्मला जोशी
सेक्रेटरी, संगीत नाटक अकादेमी,
४ ए, मथुरा रोड, जंगपुरा,
नई दिल्ली, १४

मुद्रक :
नया हिन्दुस्तान प्रैस,
चाँदनी चौक, दिल्ली

स्वर-लिपि मुद्रक :
संगीत कार्यालय, हाथरस

प्रथम संस्करण
नवम्बर १९५९

मूल्य तीन रुपया

विषय-सूची

पृष्ठ क्रमांक

प्रकाशकीय वक्तव्य

उस्ताद विलायत हुसेन खाँ द्वारा संगीतज्ञों के संस्मरणों की यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता है। भारतीय संगीत के इतिहास की कड़ियाँ इतनी बिखरी हुई और अभी तक इतनी असम्बद्ध हैं कि उन्हें जोड़ने के लिये जो भी प्रयत्न किये जायें, वे उपयोगी सिद्ध होंगे। उस्ताद विलायत हुसैन खाँ के इन संस्मरणों में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के बहुत-से महत्वपूर्ण कलाकारों के सम्बन्ध में हमें ऐसी जानकारी मिलती है जो संगीत के इतिहास-सम्बन्धी शोध-कार्य में लगे हुए विद्यार्थियों को उपयोगी जान पड़ेगी। इन संस्मरणों का विशेष महत्व इसलिये भी है कि उस्ताद विलायत हुसैन खाँ प्रसिद्ध आगरा घराने के एक सुपरिचित कलाकार ही नहीं संगीत के पंडित और जानकार भी हैं। उन्होंने अपने ज़माने में देश के बड़े-बड़े नामी संगीतज्ञों को सुना है, देखा है, उनसे परिचय प्राप्त किया है और उनके सत्संग से लाभ उठाया है। ऐसे व्यक्ति के संस्मरणों में स्वभावतः ही एक प्रकार की आत्मीयता के साथ-साथ संगीत-सम्बन्धी जानकारी का एक ऐसा सम्मिश्रण है जो संगीत के विद्यार्थी को रोचक जान पड़ेगा और हमें इस बात की प्रसन्नता है कि यह पुस्तक अकादेमी की ओर से प्रकाशित हो रही है।

किन्तु साथ ही यहाँ इस बात की ओर ध्यान दिलाना भी परम आवश्यक है कि आज हमारे अधिकांश संगीतज्ञों का ज्ञान, विशेषकर संगीत के इतिहास से सम्बन्धित जानकारी, बहुत-कुछ सुनी हुई बातों पर अथवा अपनी स्मरण-शक्ति पर ही आधारित है। उसके पीछे लिखित सामग्री का ठोस आधार बहुत ही कम है। परिणाम स्वरूप नामों में, पद्धतियों में तथा अन्य तथ्य-सम्बन्धी जानकारी में, अनेक प्रकार की भूलें होना अस्वाभाविक नहीं। ये भूलें विभिन्न संगीतज्ञों की वंशावलियों

में विशेष रूप से दिखाई पड़ती हैं। यह ज्ञान किसी अधिक विश्वसनीय सूत्र के सहारे अभी हमें उपलब्ध नहीं हो पाया है। इसके बारे में संगीत क्षेत्रों में तरह-तरह की व्यक्तिगत धारणाएँ, किंवदंतियाँ अथवा अनेक प्रकार के पूर्वाग्रह दिखाई देते हैं। निश्चय ही यह दायित्व संगीत के शोध-कार्य में लगे हुए व्यक्तियों के ऊपर ही है कि वे इन किंवदंतियों के जाल में से सही-सही तथ्य बाहर निकालें। मैं यहाँ यह स्पष्ट कह देना चाहती हूँ कि इस पुस्तक में प्रस्तुत सामग्री की विश्वसनीयता अथवा प्रामाणिकता की कोई ज़िम्मेदारी अकादेमी की नहीं है। उस्ताद विलायत हुसैन ख़ाँ के निजी संस्मरण होने के नाते मूलतः इसकी सारी ज़िम्मेदारी उन्हीं की है।

पुस्तक सम्भवतः उस्ताद विलायत हुसैन ख़ाँ ने उर्दू में लिखी थी जिसे उनके शिष्यों ने हिन्दी लिपि में लिखा तथा स्थान-स्थान पर अनुवादित भी किया। पांडुलिपि जिस रूप में अकादेमी को प्राप्त हुई उसमें विभिन्न व्यक्तियों के अनुवादों तथा रूपान्तरों की विभिन्न शैलियों की छाप मौजूद थी। कहीं भाषा उर्दू-फारसी के शब्दों से बोझिल थी और कहीं संस्कृत के। इसलिए प्रकाशित करने के पहले शैली की समानता के लिए सारी पुस्तक की भाषा को सुधारने की आवश्यकता पड़ी। कुछ बातें अथवा घटनाएँ जो स्थान-स्थान पर कई बार उल्लेखित थीं, वे छोड़ दी गईं। इसी दृष्टि से एक ही घराने से सम्बन्धित सामग्री यदि एक से अधिक स्थान पर थी तो उसको एक स्थान पर रखने की कोशिश की गई। किन्तु यथासम्भव मूल पुस्तक के तथ्यों और लेखक की धारणाओं को बिना किसी परिवर्तन के यथावत रखा गया है। अवश्य ही मुझे लगता रहा है कि घटनाओं अथवा कहानियों से अधिक विभिन्न संगीतज्ञों की शैली के मुख्य पक्षों पर अधिक विस्तार से चर्चा होती तो सम्भवतः यह पुस्तक अधिक उपयोगी होती।

पुस्तक के अन्त में कुछ स्वर-लिपियाँ भी दी गई हैं। संस्मरण में उस्ताद विलायत हुसैन ख़ाँ ने जितनी स्वर-लिपियों का उल्लेख किया है

वे सब कई कारणों से नहीं दी जा सकीं, किन्तु यथासम्भव महत्वपूर्ण स्वर-लिपियाँ दी गई हैं। यह आशा की जाती है कि वे भी संगीत के इतिहास के प्रेमियों को रोचक जान पड़ेंगी।

पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाने की दृष्टि से संगीतज्ञों के नामों की एक विस्तृत अनुक्रमणिका भी तैयार कराके अन्त में जोड़ दी गई है।

बहुत-से कारणों से इस पुस्तक के प्रकाशित होने में बहुत अधिक विलम्ब हुआ है इसके लिए मुझे दुख है।

पुस्तक के सम्पादन और मुद्रण के कार्य में मुझे अपने सहयोगी श्री नेमिचन्द्र जैन से विशेष सहायता मिली है।

निर्मला जोशी
मन्त्री, संगीत नाटक अकादेमी

दो शब्द

आगरा घराने के सुप्रसिद्ध तथा लोकप्रिय कलाकार एवं मेरे पूज्य मित्र श्री विलायत हुसैन खाँ साहब पूर्वकालीन एवं आधुनिक संगीत-कलाकारों की जीवनी तथा कार्य-सम्बन्धी यह ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहे हैं, यह जानकर प्रत्येक संगीत-प्रेमी को हार्दिक सन्तोष होगा इसमें सन्देह नहीं।

इस ग्रन्थ की विशेष महत्ता यह है कि यह श्री विलायत हुसैन खाँ जैसे क्रिया-कुशल, गुणी एवं लोकमान्य गायक की लेखनी से निकला है। कहा ही है कि 'हंसन की गत हंस हि जाने'। तदनुसार संगीत क्षेत्र के गुणीजनों का गुण-वर्णन उन्हीं में से एक के मुख से निकला हुआ यथायोग्य एवं प्रामाणिक होगा यह अपेक्षा की जा सकती है।

घरानेदार गायक-वादकों के यहाँ परम्परागत सम्प्रदाय के आधार पर ही सब विचार-व्यवहार चलते रहते हैं। साथ-साथ संगीत-चर्चा, संगीत-शिक्षा, अभ्यास इत्यादि के अतिरिक्त पूर्ववर्ती श्रेष्ठ कलाकारों के सम्बन्ध में सोदाहरण वार्तालाप भी नित्य होते रहते हैं। ये वार्ता-विनोद कभी-कभी बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। मण्डली में बैठे हुए किसी वृद्ध गायक को अथवा गायक के साथी-सम्बन्धी को प्रस्तुत वार्ता-प्रवाह में कुछ भूतपूर्व कथाओं का अथवा किसी श्रेष्ठ कलाकार का स्मरण होता है, और वे सब बीता हुआ इतिहास कभी-कभी गायन-वादन की शैलियों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए देते हैं। जब वे किसी के कण्ठ स्वर का, किसी की गमक का, किसी की मीड़ का, किसी की द्रुत तान

का, किसी की लयदारी का सोदाहरण वर्णन करते हैं, तो ये वार्तालाप मनोरंजक एवं उद्बोधक हो जाते हैं। ऐसे सुअवसर श्री विलायत हुसैन ख़ाँ साहब के अपने जीवन में बीसों बार आये होंगे। इन्हीं वार्तालापों द्वारा एवं कुछ वृद्ध कलाकारों के साथ किये हुए पत्र-व्यवहार द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर, अत्युक्तियाँ होने पर उनको मर्यादित करके, उन्होंने ये संस्मरण लिखे हैं।

मुझे विश्वास है कि यह ग्रन्थ लोकप्रिय एवं सब संगीत-प्रेमियों के लिए संग्राह्य होगा।

मैं लेखकवर का अभिनन्दन करते हुए उनकी दीर्घायु एवं अभिवृद्धि के लिये ईश्वर के चरणों में प्रार्थना करता हूँ।

—श्री० ना० रातंजनकर

भूमिका

हम्दे ख़ुदा पाक बयां कर तू ऐ ज़बाँ,
पैदा किये हैं जिसने ज़मीं और आस्माँ।
कुर्सीओ-अर्श लौहो-क़लम दोज़ख़ो-जिनां,
बेहशो-तयूर हूरो-मलक और इनसो-जां।
रक्से रसूल नग़मये तौहीद लाये हैं,
गुन सारी कायनात में बेहदत के गाये हैं।

संगीत एक ऐसी प्रभावशाली कला है जो ऋषि-मुनियों, देवताओं और स्वयं भगवान को भी प्रिय रही है। इसीलिए इसके द्वारा भक्ति भारत की प्राचीन परम्परा है। सामवेद से हमें ज्ञात होता है कि यह सच्ची और उच्च कोटि की कला मानी जाती थी। यही कारण है कि प्राचीन काल से अब तक यह जीवित है, यद्यपि मध्य युग में इसको बुरा माना जाता था जिसके कारण इसे बहुत-से संकट झेलने पड़े। फिर भी इसके प्रेमियों ने इसे जीवित रखने की सदा चेष्टा की और उनके प्रयत्नों से यह आज भी हमें प्राप्त है।

कई प्राचीन ग्रन्थों से हमें ऐसे व्यक्तियों के नामों का पता चलता है जो भारतीय संगीत शास्त्र के धुरन्धर पण्डित हुए हैं और जो आज तक अपनी कला के लिए प्रसिद्ध हैं, जैसे नायक बैजू, नायक गोपाल, नायक धोंडू, नायक बख्शू, नायक भिन्नू, नायक मच्छू, नायक चरजू, स्वामी हरिदास, सूरदास, रामदास, हाजी सुजान ख़ाँ, अमीर खुसरो इत्यादि। इन गुणियों के बनाये हुए ध्रुपद आज तक भारत के गवैयों को याद हैं और गाये जाते हैं। नमूने के तौर पर इन बुज़ुर्गों के बनाये हुए थोड़े से ध्रुपद इस पुस्तक के अन्त में हम दे रहे हैं। यह तो

निस्सन्देह है कि इन सब बुज़ुर्गों का मान भारत के राजा, महाराजा और बादशाह तक सभी करते थे; पुस्तकों से केवल इतना ही मालूम होता है। खेद की बात यह है कि इन पण्डितों ने अपनी परम्परा का कोई इतिहास नहीं लिखा। इसलिए हम उसके विषय में अधिक जानने में असमर्थ रहे। उदाहरण के लिए, इस बात तक का ठीक पता नहीं चलता कि इनमें से कौन किसका शिष्य था।

संगीत की बानियाँ

भारतीय संगीत की चार बानियाँ (ढंग) प्रसिद्ध हैं—खंडार, नौहार, डागुर और गोबरहार। पहली खंडार बानी में कोई तान गमक के बिना नहीं होती और इसमें सिर्फ गमक ही होती है; दूसरी नौहार बानी में गमक और द्रुत मिली-जुली होती है; तीसरी डागुर बानी धमाके के साथ मट्ठी गायी जाती है; और चौथी गोबरहार बानी है जिसे मियाँ तानसेन ने ईजाद किया था। इसमें गमक क़तई नहीं होती और यह मींड, लहक तथा तूम के साथ एक दम विलम्बित गायी जाती है।

भारत का शास्त्रीय संगीत इन्हीं चार बानियों में गाया जाता था। पर अब धीरे-धीरे गवैये बानियों की बात बिल्कुल भूल चुके हैं। इसी तरह पिछले दिनों संगीत शास्त्र पर जो कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनमें संगीत के पण्डितों के नाम तो दिये गये हैं पर उनके जीवन-चरित्र पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है। इस तरह हमारे संगीत की बड़ी-बड़ी हस्तियाँ हमारे लिए लोप हो चुकी हैं। इन सब कमियों को महसूस करते हुए ही मैंने यह निश्चय किया कि जो कुछ मैंने अपने ख़ानदानी बुज़ुर्गों और उस्तादों से भारतीय संगीत और उसकी हस्तियों के बारे में सुना है, उसे एक पुस्तक का रूप दूँ। भारतीय संगीत उन्हीं लोगों के अथक प्रयत्न और लगन से आज तक जीवित है। आज जो संगीत विद्या का आदर है और भारत के कोने-कोने में जो इसका इतना प्रचार हुआ है, उसका एकमात्र श्रेय उन हस्तियों की महान सेवाओं

को है। साथ ही उन लोगों के अलावा मैं उन गुणियों का जिक्र भी करना चाहता हूँ जो आजकल संगीत विद्या के प्रचार में रात-दिन लगे रहते हैं और निष्कपट भाव से अपनी सन्तानों और शिष्यों को यह विद्या सिखाते रहते हैं।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अपने ख़ानदानी उस्तादों और बुज़ुर्गों से बड़ी मदद मिली है और उसी मदद के कारण मैं यह पुस्तक लिखने में समर्थ हो सका हूँ। ख़ास तौर से अपने दादा गुलाम अब्बास ख़ाँ, अपने उस्ताद कल्लन ख़ाँ, करामत ख़ाँ, अल्ताफ़ हुसेन ख़ाँ खुरजे वाले, उमराव ख़ाँ दिल्ली वाले, आफताबे मौसीकी फ़ैयाज हुसेन ख़ाँ आगरे वाले, और अपने मामा महबूब ख़ाँ 'दर्स' अतरौली वाले का मैं बहुत ही आभारी हूँ क्योंकि इनसे मुझे बहुत-से संगीत के पण्डितों और जानकारों के बारे में बहुत-सी महत्वपूर्ण बातें जानने को मिलीं।

बचपन से मुझे इन बुज़ुर्गों की सेवा में रहने का अवसर मिला। ये लोग आपस में बहुत ही खुले दिल से मिलते-जुलते थे और जब भी मिलकर बैठते तो अक्सर पुराने गाने-बजाने वालों का जिक्र करते थे। इन्हीं लोगों से मुझे बहुत-से राजदरबारों का हाल भी मालूम हुआ जहाँ मध्य युग से आज तक भारतीय संगीत फला-फूला। इन लोगों की बातचीत से इस बात का भी पता चलता था कि उन दिनों गवैयों का कैसा आदर-सत्कार होता था और किस तरह वे अपना जीवन व्यतीत करते थे। मैं ये सब बातें सुनता और नोट कर लिया करता था।

एक चीज़ मैंने विशेष रूप से अनुभव की कि सभी प्राचीन गवैये सबसे पहले अपनी शारीरिक शक्ति का ख्याल रखते थे। वे अच्छी ग़िज़ा खाते और किसी निश्चित समय पर रोज़ व्यायाम भी करते ताकि बदन में फ़ुर्ती पैदा हो और आरामतलबी की आदत न पड़ जाय। इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह थी कि सबेरे उठकर सबसे पहले वे भगवान की उपासना में तत्पर होते और इसके बाद दूसरा

कोई काम करते। पहले वे स्वयं अपने संगीत पर मेहनत करते और चीज़ों को दिमाग़ में ताज़ा करके फ़ौरन ही अपने शिष्यों को सामने बैठाकर स्वर-विद्या तथा ताल-विद्या की शिक्षा देते थे। उन दिनों शिष्यों को जब तक स्वर-ज्ञान पूरा-पूरा न हो जाता, तब तक कोई 'चीज़' नहीं सिखाई जाती थी। मैंने बचपन में अपने घर में एक हज़ार दानों की एक बड़ी माला देखी है और एक एकतारा भी। संगीत का रियाज़ करते वक्त एक साँस भरने पर माला का एक दाना घुमाया जाता था। इस क्रिया में कितना समय लगता होगा और कितना प्राणायाम होता होगा इसका सहज ही अन्दाज़ किया जा सकता है।

साथ ही आम तौर पर शिक्षा जब तक पूरी न हो जाय और गुरु आज्ञा न दे दें तब तक संगीत के विद्यार्थी पूरी तौर से ब्रह्मचारी भी रहते थे। इस तरह की बहुत-सी बातें प्राचीन पुस्तकों को देखने से पता चलती हैं। संगीत का सीखना एक बड़ी साधना समझा जाता था और सीखने वाला इस विद्या को प्राप्त करने के लिए तन-मन-धन सब की बाज़ी लगा दिया करता था। और सच तो यह है कि जब तक एक शिष्य किसी गुरु की सेवा में बरसों नहीं गुजारता, उसका संगीत का ज्ञान अधूरा ही रहता था। यही कारण है कि यह विद्या वंश-परम्परागत अधिक होती थी, यानी पिता से पुत्र और उससे पौत्र तक पहुँचती थी। बाहर के बहुत-से शिष्य भी ठीक पुत्रों की तरह बरसों गुरु के पास रहते और गुरु के ख़ानदान की विद्या सीखते थे। इस मेहनत में बरसों ही गुज़र जाते थे और गानेवालों के गले और हृदय में स्वर का रस बस जाता था। इस तरह के बहुत-से सबक़ हमें उन दिनों की जानकारी से मिल सकते हैं, यहाँ तो मैंने कुछ थोड़ी-सी ही बातें बयान की हैं।

उन दिनों के जो जमाव मैंने देखे हैं उनमें धुरपदिये, ख्यालिये, बीनकार, सितारनवाज़, सारंगीनवाज़, पखावजी और तबलिये सभी

शामिल होते थे। उनमें परस्पर बेहद प्रेम रहता था और उनका जाहिर और बातिन एक था। मालूम होता था कि इनके बुजुर्गों में भी ऐसी ही प्रेम की सचाई होगी जिसकी झलक इन लोगों में पाई जाती थी।

उन दिनों का दस्तूर यह था कि हर हफ़्ते-दो-हफ़्ते के बाद कहीं न कहीं गाने-बजाने का जलसा होता जिसका अवसर बहुत प्रकार से उपस्थित होता रहता था। किसी के यहाँ जन्म-दिन की खुशी का जलसा, कहीं शादी का जलसा, किसी के घर मेहमान की दावत, किसी जगह शागिर्दी-उस्ताद का जलसा—इसी तरह किसी न किसी कारण से जलसा मुकर्रर हो जाता था। इन जलसों में बुजुर्ग लोग यानी गायक और पण्डित प्रधान आसनों पर बैठते और उनके बाद उनकी सन्तान और शिष्य अपने-अपने उचित स्थानों पर बैठा करते थे। जलसे की शुरूआत किसी छोटे से छोटे गायक से होती, दर्जा-ब-दर्जा इसी तरह गाने-बजाने का सिलसिला क़ायम होता और आखिर में बुजुर्ग लोगों की बारी आती और जलसा बहुत खूबी के साथ ख़त्म हो जाता।

जलसे की एक बात मुझे अब तक याद है कि कोई सारंगीनवाज़ तानपूरा लेकर गा नहीं सकता था क्योंकि उसको ऐसी महफ़िल में गाने की आज्ञा न थी। परम्परा यह थी कि इन साज़ों को छोड़कर सिर्फ तम्बूरे पर गाने में उम्र गुज़ार देने वाले ही इन महफ़िलों में गाने योग्य समझे जाते थे। एक बार का जिक्र है कि एक सारंगीनवाज़ जो बहुत तैयार गाता था किसी महफ़िल में बैठ गया और गाना शुरू कर दिया। सभापति ने इस पर उसे गाने से मना किया और कहा कि पहले सारंगी बजाना छोड़ दो तो हर महफ़िल में बहुत खुशी से गा सकते हो। सभापति की बात सुनकर उस व्यक्ति ने उम्र भर के लिए सारंगी छोड़ दी और गाना शुरू किया। उसके बाद उसने अच्छे-अच्छे गवैयों से तारीफ पाई और काफ़ी नाम पैदा किया। यह बात कहने का हमारा मतलब यही है कि उन दिनों संगीत को एक पवित्र और श्रेष्ठ विद्या माना जाता

था और उसकी क़द्र करना और उसका मान क़ायम रखना बड़ा ज़रूरी समझा जाता था ।

मैंने ऊपर ज़िक्र किया है कि हमारा संगीत मध्य युग से आज तक राजदरबारों में ही फला-फूला है । वास्तव में हर छोटी-बड़ी रियासत में त्यौहार और हरेक खुशी के अवसर पर राजा, महाराजा, नवाब और जागीरदार शास्त्रीय संगीत सुना करते थे और अच्छे-अच्छे इनाम दिया करते थे । राजदरबारों के संगीत-प्रेम की यह ख़बर दूर-दूर तक फैल जाया करती थी और हर गाने-बजाने वाले के दिल में यह इच्छा होती थी कि ऐसी रियासतों में जाय । पर उनमें से बहुतों को अपनी योग्यता का सही अन्दाज़ा नहीं होता था । इसलिए उन्हें सदा कामयाबी हासिल नहीं होती थी ।

एक साल मैसूर राज्य में सारे हिन्दुस्तान से सैकड़ों गाने-बजाने वाले पहुँच गए । गुणीजनख़ाने के व्यवस्थापक ने सब का नाम ले लिया और बख्शी सुब्बन्ना बीनकार के पास, जो मैसूर महाराजा के गुरु भी थे, सबको पेश किया । बख्शी जी ने सबकी एक-एक चीज़ सुनी और उनमें से पाँच-सात गाने-बजाने वालों को महाराजा के सुनने के लिए पसन्द किया । बाकी गाने-बजाने वालों को महाराजा के हुक्म से आने-जाने का ख़र्चा देकर बिदा किया और यह भी कह दिया कि आइन्दा आप बिना महाराज के बुलवाये न आयें ।

ऐसी ही घटनाएँ कई राज्यों में हुईं । इस बात का निष्कर्ष यही है कि गवैयों को अपने काम में अच्छी तरह जानकारी हासिल करनी चाहिए और साथ ही साथ वैसी मेहनत भी । जब वे अपने काम में पूरी तरह कामयाब हो जाएँगे, तो अपने आप उनका नाम होगा और उनकी तारीफ दूर-दूर तक पहुँच जाएगी और जगह-जगह से उनके पास निमन्त्रण आएँगे । इस प्रकार उनका मान बढ़ेगा और दुनियाँ की नज़र में उनकी इज़्ज़त होगी । आज से कोई बीस-बाईस साल पहले एक सितार-

नवाज़ बरकत उल्ला ख़ाँ साहब से जम्मू रियासत में हमारी मुलाकात हुई और शायद दो-तीन हफ़्ते तक मिलना-जुलना रहा। एक रोज़ गवैयों का ज़िक्र आया तो ख़ाँ साहब ने अपने बहुत-से अनुभव मुझे सुनाये। उन्होंने कहा कि जब उनकी तालीम और मेहनत पूरी हुई तो अपनी शोहरत के लिए वे दो-चार रियासतों में पहुँचे जहाँ कई रईसों ने उन्हें सुना और अच्छे-अच्छे इनाम भी दिए। इसके बाद वे कितने ही अन्य शहरों में घूमे-फिरे और नाम पैदा किया। मगर जहाँ-जहाँ वे गए और इनाम पाया, वहाँ दुबारा अपने आप नहीं गए। अगर वहाँ के राजा या नवाब ने इन्हें याद किया तो बड़ी ख़ुशी से दुबारा गए। ख़ाँ साहब ने कहा कि उस वक़्त से अब तक उनका यही तरीक़ा रहा है कि जब कोई उन्हें बुलाता है तो वे ज़रूर जाते हैं। बाक़ी वक़्त उनका घर पर ही बीतता है और शागिर्दों की तालीम में लगता है।

एक रईस के बारे में सुना है कि वे एक ख़ानदानी उस्ताद के शागिर्द हो गए और इस कला को ख़ूब हासिल किया। उन्होंने अपने उस्ताद को जागीर वग़ैरा भी इनाम में दी। मगर उनके दरबार में बाहर से भी अच्छे-अच्छे गवैये आते थे और उन्हें गाना सुनाकर इनाम पाते थे। यह बात उस्ताद साहब को बड़ी खटकती थी और उन्हें बाहर के किसी भी गवैये का आना-जाना पसन्द न होता था। एक दिन मौक़ा पाकर उन्होंने उस रईस से कहा, "हर गवैये का गाना सुनने से आपका वक्त ख़राब होता है। मुनासिब यह है कि आप किसी बाहर के गवैये का गाना न सुना करें।" रईस के दिल में यह बात बैठ गई और उस दिन से उसने बाहर के गवैयों का गाना सुनना बहुत कम कर दिया। वह बार-बार यह कहता कि ऐसे-वैसे गवैयों का गाना सुनने से कान बेसुरे हो जाएँगे। इस पर कुछ गवैयों ने एक और तरकीब निकाली। वे उस रईस के पास जाकर कहते, "हमें गाने-बजाने की तालीम तो मिली, पर वह ग़लत-सलत है। आप हमें अपना शागिर्द बनाइये और सही रास्ता

दिखाइये ।" रईस उन्हें अपने उस्ताद के पास भेज देता और उस्ताद उन्हें अपना शागिर्द बना लेता। उसके बाद यह शागिर्द उस रईस को गाना भी सुनाते और इनाम भी पाते।

इस घटना से एक बात तो प्रकट होती ही है कि यदि कोई गवैया कला और विद्या की सेवा करके किसी ऊँचे दर्जे पर पहुँच जाय और किसी बड़े आदमी के यहाँ अधिकार पा जाय तो उसे दूसरे कलावन्तों को बुरा नहीं समझना चाहिए और उनका फ़ायदा होता देखकर उनको नुकसान पहुँचाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। इन्हीं उस्ताद के बारे में यह भी सुना गया है कि कभी संयोगवश दो-चार कलावन्तों के सामने यह गाते-बजाते तो राग की शक्ल बदल देते थे ताकि इनका सही राग कोई सुनकर उड़ा न ले। इसका दूसरा उद्देश्य यह भी था कि सुनने वाला इस दुविधा में पड़ जाय कि आख़िर राग कौन-सा है।

मेरा विचार यह है कि अगर हमारे पुराने बुज़ुर्ग इसी ख्याल के होते तो हिन्दुस्तान की सारी विद्या नष्ट हो गई होती। खुशी की बात है कि ऐसा नहीं हुआ, बल्कि जो राग-रागिनियाँ पुराने ज़माने में गाई जाती थीं, आजकल के कलाकार भी वही राग-रागिनियाँ, वही ध्रुपद, वही अस्थायी और वही ख्याल गा रहे हैं। बल्कि आजकल के कलावन्तों ने तो कुछ ऐसी राग-रागिनियों को भी अपना लिया है जिनको बुज़ुर्गों ने कठिनाई के कारण छोड़ दिया था; और अब हम यह कह सकते हैं कि गायन विद्या तरक़्क़ी करती जा रही है। फ़र्क इतना ही है कि पिछले ज़माने के कलाकार थोड़े-से रागों पर ज़्यादा-से-ज़्यादा मेहनत करके उन पर काबू पाने की कोशिश करते थे और आज का कलाकार राग-रागिनियाँ तो अधिक-से-अधिक जानता है मगर मेहनत न करने के कारण उन पर अधिकार नहीं हो पाता और गायक भी अधूरा रह जाता है। फ़ारसी में एक मसल है: "यक मन इल्म न देह मन अक़्ल बायद" यानी एक मन विद्या के लिए दस मन बुद्धि चाहिए।

बहुत-से नासमझ लोग कलाकारों पर यह एतराज़ करते हैं कि ये लोग शागिर्दों से कपट रखते हैं और उन्हें अच्छी तरह नहीं सिखाते। मगर जहाँ तक हमने नज़र दौड़ाई है हमें तो यह ग़लत जान पड़ा। इसके सम्बन्ध में हम कुछ मिसालें भी पेश करेंगे।

लगभग १८३२ ईस्वी में तानरस ख़ाँ आखिरी मुग़ल बादशाह के यहाँ नौकर थे। ख़ाँ साहब बड़े ही विद्वान और श्रेष्ठ कलाकार थे। वे शागिर्दों को सिखाने में भी अपना मन साफ़ रखते थे और शागिर्द चाहे किसी भी खानदान का हो सबको एक-सी तालीम देते। यही कारण था कि इनके शागिर्द हिन्दुस्तान में दूर-दूर मशहूर हुए और इनके नाम से दुनियाँ आज भी परिचित है और इनकी परम्परा भी क़ायम चली आ रही है। ख़ाँ साहब के बहुत-से शागिर्द तैयार हुए जिनमें से कुछेक नाम ये हैं—अलीबख़्श ख़ाँ और फत्तेअली ख़ाँ पटियाले वाले, अब्दुल्ला ख़ाँ रामपुर वाले (यह हिन्दुस्तान की बड़ी नामी और मशहूर गायिका गोपी-बाई के लड़के थे), ज़हूर ख़ाँ सिकन्दरे वाले, महबूब ख़ाँ अतरौली वाले और स्वयं तानरस ख़ाँ के सुपुत्र उमराव ख़ाँ।

दूसरी मिसाल हमारे सामने ग्वालियर के हद्दू ख़ाँ की है। इस घराने के सैकड़ों शागिर्द हुए और गायन विद्या का बहुत प्रचार हुआ। खास कर हिन्दू ब्राह्मण पण्डित इस घराने में बहुत तैयार हुए जिन्होंने अपनी ख़ान-दानी गायकी का बहुत प्रचार किया। पण्डित दीक्षित, पण्डित बालागुरू, शंकर पण्डित, बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, पण्डित रामकृष्ण बुआ बझे आदि बहुत-से अच्छे गाने-बजाने वाले इस घराने में पैदा हुए। इसी तरह से जनाब बहराम खाँ भी हैं जिनके बहुत से शागिर्द कामयाब हुए और जिन्होंने अपने घराने को क़ायम रखा। इनके तीन पुत्र थे : मोहम्मद जान ख़ाँ, सरदार ख़ाँ और अख़्तर ख़ाँ। इनमें से मोहम्मद जान ख़ाँ के पुत्र ज़ाकिरुद्दीन ख़ाँ और अपने भानजे अलीबंदे ख़ाँ को इन्होंने स्वयं तैयार

किया था । बाई गोपीबाई भी इन्हीं की मशहूर शागिर्द थीं और मौलाबख्श साँकड़े वाले तथा फरीद ख़ाँ पंजाबी ने भी इन्हीं से तालीम पायी थी ।

इनके अलावा भी बहुत से ऐसे बुज़ुर्ग गुज़रे हैं जो शागिर्दों से बड़ी मुहब्बत से पेश आते और उन्हें औलाद की तरह तैयार करते । बहादुर हुसेन ख़ाँ रामपुर वाले, वन्दे अली ख़ाँ और उनके बाद कल्लन ख़ाँ आगरे वाले वगैरह गायन विद्या सिखाने में बड़ी दिलचस्पी लेते थे । पुराने खानदानों में क़व्वाल बच्चों का खानदान बड़ा मशहूर हुआ है । मुश्किल फिरत और कठिन गायकी इस ख़ानदान की विशेषता थी । इस ख़ानदान के शागिर्द सुनने में बहुत कम आये । इसका कारण यह था कि ये लोग अपनी मेहनत में फ़र्क़ नहीं आने देते थे और अपनी गायकी और उसकी तमाम खूबियों को तैयार करने की लगातार कोशिश करते रहते और उसमें कामयाब होते थे । इस खानदान के गायकों को सुनकर बहुत-से गवैयों ने अपना रंग बदला और इनके रंग पर जी तोड़कर मेहनत की और उस मेहनत का फल भी पाया । इन सभी लोगों का अच्छे कलाकारों में नाम हुआ । कुछ ऐसे लोग भी गुज़रे हैं जिन्होंने इस घराने की गायकी को हासिल करने का प्रयत्न किया मगर उनसे उस गायकी की मुश्किल तानें और पेच-फंदे न निकल सके और वे बेसुरा गाने लगे । इन सब मिसालों से यह साफ़ जाहिर है कि पहले के बुज़ुर्ग उदारता से गायन विद्या सिखाते और प्रचार करते थे । अगर वे ऐसा न करते तो अब तक यह विद्या ख़त्म हो गई होती ।

मुझे अपने विद्यार्थी जीवन में बहुत-से गुणी लोगों का गाना सुनने का मौक़ा मिला । इसके अलावा बहुत-से बहस-मुबाहिसे भी सुनने में आये । अक्सर क़रीब-क़रीब की रागिनियों के बारे में इन लोगों के बीच मतभेद होता और इसकी चर्चा बहुत-देर तक होती रहती, जैसे जय-जयवन्ती, गारा, झिझोटी, खट, जीलफ, जैत, विभास, रामदासी मल्हार और नायिकी कानड़ा वगैरह । ऐसे मौक़ों पर हर व्यक्ति अपने-अपने

घराने की पुरानी चीज़ें, ध्रुपद, होरी वगैरह सुनाता और ऐसे रागों की सनद होती। ये लोग बहुमत से माने हुए रागों को तस्लीम कर लेते थे। इन मुबाहिसों में हमने कहीं झगड़ा, मन-मुटाव या वैमनस्य नहीं देखा। उनके दिल साफ़ थे, उनकी तबीयत इन्साफ़पसन्द थी और सच्ची बातों को उनका दिल मान जाता था।

भारत की गायनशालाएँ

सन् १९०९ ईस्वी की बात है कि मैं अपने दादा जनाब गुलाम अब्बास खाँ साहब के साथ बम्बई आया था। इस शहर में हिन्दुस्तान भर के नामी गवैयों में से बहुत-से मौजूद थे। इन्हीं में एक और नाम भी मशहूर था जो पण्डित विष्णु नारायण भातखंडे जी का था। एक रोज़ सुबह के वक़्त पण्डित जी हमारे मकान पर दादा साहब से मिलने के लिये आये। मुझे तो दादा साहब और उनमें बड़ा फ़र्क़ नज़र आया। पण्डितजी ने अपनी संगीत सम्बन्धी सेवाओं का ज़िक्र किया और यह बताया कि गायन विद्या की पुस्तकों के सिवाय दूसरी कौन-कौन-सी चीजें किन-किन गायकों से उन्हें मिलीं। उन्होंने इस बात का भी ज़िक्र किया कि उन्हें अपने उस्ताद मुहम्मद अली खाँ साहब से कैसे सच्चे ज्ञान का लाभ हुआ था। पण्डित जी संगीत के प्रचार की बाबत भी बहुत देर तक बातचीत करते रहे। इसके थोड़े ही दिन बाद पण्डित जी अपने काम में सफल हुए।

सन् १९१६ में बड़ौदे में पहली संगीत कान्फ्रेन्स हुई। उसका संरक्षण महाराजा सियाजीराव गायकवाड़ ने किया और उन्होंने ही उसका सारा ख़र्च भी बर्दाश्त किया। इस कान्फ्रेन्स में थोड़े-से मगर बड़े ज़बर्दस्त गायक और गायन विद्या के जानने वाले बुलाये गए थे। इसी कान्फ्रेन्स में क्लेमेंट साहब अपना ईजाद किया हुआ बाईस श्रुतियों वाला हारमोनि-यम भी लेकर आए थे। उनका यह दावा था कि गले का हर स्वर और हर श्रुति इस हारमोनियम में मौजूद है मगर जब इम्तहान का मौक़ा

आया तब यह बात उस हारमोनियम में नहीं पाई गई। कहा जाता है कि ज़ाकिरुद्दीन ख़ाँ साहब ने अपने गले से स्वरों के जो दर्जे ज़ाहिर करके दिखाये वे हारमोनियम से न निकल सके और आख़िर क्लेमेंट साहब को यह मानना पड़ा कि वह ग़लती पर हैं।

दूसरी संगीत कान्फ्रेन्स सन् १९१९ में दिल्ली में हुई और उसमें भी अच्छे-अच्छे गवैये शामिल हुए। इसका संरक्षण रामपुर के नवाब साहब ने किया। तीसरी कान्फ्रेन्स सन् १९२० में बनारस में और चौथी सन् १९२४ में लखनऊ में हुई जो दोनों बहुत ही कामयाब और अच्छी रहीं। पाँचवीं कान्फ्रेन्स सन् १९२५ ईस्वी में फिर लखनऊ में हुई और इस में आगरे के फैयाज़ हुसेन ख़ाँ, कल्लन ख़ाँ, तसद्दुक हुसेन ख़ाँ, इन्दौर के लतीफ ख़ाँ और मजीद ख़ाँ, बीनकार, उदयपुर के अली बन्दे ख़ाँ, जाकिरुद्दीन ख़ाँ, नसीरुद्दीन ख़ाँ, कच्छ के नसीर ख़ाँ, कलकत्ते के इनायत ख़ाँ सितारिये, ग्वालियर के हाफिज अली ख़ाँ सरोदनवाज़, पण्डित कृष्ण राव, राजा भैया, पर्वतसिंह पखावजी, जयपुर के करामत ख़ाँ, फिदा हुसेन ख़ाँ सितारनवाज़, सादिक अली ख़ाँ बीनकार, रियाजुद्दीन ख़ाँ, सखावत हुसेन ख़ाँ सरोदनवाज़, कायम हुसेन सितारनवाज़, जोधपुर के बशीर ख़ाँ हारमोनियमनवाज़, टीकमगढ़ के वामनराव देशपाण्डे, झल्लीराम पखावजी, दिल्ली के मुज़फ्फर ख़ाँ, बड़ौदे के जमालुद्दीन ख़ाँ बीनकार, गुलाम रसूल हारमोनियम नवाज़, बनारस के बीरू तबलानवाज़, मैहर के अलाउद्दीन खाँ सरोदिये, रामपुर के फिदा हुसेन खाँ, लखनऊ के आबिद अली ख़ाँ तबलानवाज़, खुरशीद अली ख़ाँ, अच्छन महाराज, शंभू महाराज, लच्छू महाराज, सहसवान के फ़िदा हुसेन ख़ाँ, मास्टर निसार हुसेन ख़ाँ, और पण्डित दिलीपचन्द बेदी वग़ैरह-वग़ैरह के अलावा और भी बहुत से गाने-बजाने वाले मौजूद थे। पाँच दिन बराबर रात-दिन जलसे होते रहे और गाने-बजाने का बड़ा आनन्द आया। इस कान्फ्रेन्स में पण्डित विष्णु नारायण भातखंडे, ठाकुर नवाब अली ख़ाँ, उत्तर

प्रदेश के शिक्षा विभाग के मन्त्री राय राजेश्वर बली और राय उमानाथ बली जैसे लोगों ने भी बहुत योग दिया। यह जलसा बहुत ही बड़े पैमाने पर किया गया था और बहुत ही सफल हुआ। असल में लखनऊ में चौथी और पाँचवीं कान्फ्रेन्स करने का मकसद यह था कि हिन्दुस्तान के बीचो-बीच किसी ख़ास जगह पर संगीत महाविद्यालय की स्थापना हो। यह उद्देश्य अन्त में पूरा भी हुआ और सन् १९२६ के सितम्बर में लखनऊ में मैरिस कालेज खुला जो क़ैसर बाग़ की मशहूर इमारत में क़ायम हुआ। इस कालेज में नसीर ख़ाँ बाबा हैदराबाद वाले गायन सिखाने के लिए और हामिद हुसेन ख़ां सितार सिखाने के लिए रखे गए। इसी तरह दूसरे सभी विभागों का भी प्रबन्ध हुआ। भारत के दूर-दूर के नगरों से विद्यार्थी आकर इसमें भर्ती होने और संगीत सीखने लगे। पण्डित रातनजनकर तभी से इस कालेज के प्रिंसिपल हैं। पण्डित भातखंडे ने संगीत शिक्षा के निमित्त 'लक्ष्य संगीत' और हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' पुस्तकें पाँच भागों में लिखीं। इस पुस्तक में दिये हुए ध्रुपद, अस्थायी, ख्याल और राग-रागिनियों को इकट्ठा करने के लिए भातखंडे जी को बड़ा कष्ट झेलना पड़ा था। वह उत्तर भारत के हर छोटे-बड़े नगर में गए और महीनों रियासतों में भटकते रहे। अन्त में वह अपनी यह पुस्तक स्वरलिपि सहित प्रकाशित करने में सफल हुए। पण्डित जी का यह काम सचमुच महान् है। इससे पहले भारतीय संगीत शिक्षा की कोई पुस्तक न थी। पण्डित जी से मेरी अच्छी मित्रता थी और सन्ध्या को अक्सर बम्बई में चौपाटी पर उनसे मुलाक़ात हो जाया करती थी। वह हमेशा यही कहते थे कि गाना तो आप लोगों का है जो आप उस पर दिन-रात मेहनत करते हैं। मैंने तो सिर्फ़ पुस्तकें लिखी हैं। यह उनका बड़प्पन ही था।

बड़ौदे का म्यूज़िक स्कूल

लगभग सन् १८८० ईस्वी के आसपास बड़ौदा रियासत में मौला

बख़्श ख़ाँ नामक एक गवैये रहते थे जिन्होंने हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का रंग बहुत ही बदल दिया था और कर्नाटक संगीत की सरगम पद्धति पर अच्छी मेहनत की थी। उन्होंने महाराजा सियाजीराव गायकवाड़ की मदद लेकर एक संगीत स्कूल खोला जो सन् १९१८ तक चलता रहा। जब पण्डित भातखंडे बड़ौदा गए तो उन्होंने महाराजा से अपने कार्य का वर्णन किया और उनसे प्रार्थना की कि उस स्कूल में हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति भी सम्मिलित कर ली जाय। महाराजा यह बात मान गए और बड़ौदा में एक बड़ा स्कूल खोल दिया गया। इसका नाम 'भारतीय संगीत शाला' रखा गया और दरबार के गवैयों से इसमें बहुत सहायता मिली। उसमें तसद्दुक हुसेन ख़ाँ आगरे वाले, फ़िदा हुसेन ख़ाँ और निसार हुसेन ख़ाँ रामपुर वाले, अता हुसेन ख़ाँ अतरौली वाले, भीकम ख़ाँ सितार-नवाज़ बड़ौदे वाले और आबिद हुसेन ख़ाँ जयपुर वाले अध्यापक नियुक्त हुए। शुरू में उस्ताद फ़ैयाज ख़ाँ भी हफ़्ते में एक बार सिखाने आते थे। पर उन्हें स्कूली काम पसन्द न था। इसलिए उन्होंने महाराजा से कह कर स्कूल से छुट्टी ले ली।

गान्धर्व महाविद्यालय

पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर के शिष्य थे और ग्वालियर के घराने से उनका सम्बन्ध था। उन्हें भी संगीत प्रचार का बड़ा शौक़ था। इसलिए एक संगीतशाला के लिए पैसा इकट्ठा करने के उद्देश्य से इन्होंने अपने शिष्यों को लेकर भारत के बड़े-बड़े शहरों का दौरा किया और वहाँ के श्रीमन्तों को संगीत सिखाकर स्कूल के लिए फ़न्ड जमा करना शुरू कर दिया। उस फ़न्ड से उन्होंने बम्बई में एक बड़ी इमारत बनवाई और उसमें गान्धर्व महाविद्यालय नामक संगीत का स्कूल खोला। पण्डित जी ने स्कूल में अपनी ख़ानदानी पद्धति रखी और इस विषय की पुस्तकें भी लिखीं जो स्कूल में पढ़ाई

गईं। परन्तु खेद की बात है कि उनका स्वर्गवास होते ही स्कूल बन्द हो गया।

भारत गायन समाज

पण्डित भास्कर बुआ भखले को भी संगीत प्रचार की बड़ी अभिलाषा थी और उन्होंने सन् १९११ ईस्वी में पूना में भारत गायन समाज नामक स्कूल खोला जिसमें स्वयं पण्डित जी और पण्डित अष्टेकर विद्यार्थियों को सिखाते थे। पण्डित जी का स्वर्गवास होने के बाद भी इनके शिष्यों ने स्कूल को जारी रखा। इस समय इसके प्रिंसिपल केशवराव केलकर हैं। इस स्कूल को जीवित रखने के लिए नारायणराव, बालगन्धर्व, गोविन्दराव टैम्बे और मास्टर कृष्णराव ने बड़ा काम किया है।

पण्डित भातखंडे की कोशिश से माधवराव सिंधिया के समय में ग्वालियर में भी संगीत का एक बड़ा स्कूल खुला। यह स्कूल सन् १९२५ ईस्वी से अब तक बदस्तूर चला आ रहा है। इस स्कूल में कृष्णराव शंकर पण्डित और राजा भैया पूंछवाले संगीत अध्यापन के लिए रखे गए।

वर्तमान समय में संगीत का प्रचार काफ़ी हो रहा है और यह सबसे ज़्यादा बम्बई राज्य में दिखाई देता है। बम्बई में जितने संगीत स्कूल, गोष्ठियाँ (सर्किल) और नामी कलाकार मौजूद हैं, उतने पूरे भारत में भी कठिनाई से होंगे। सन् १९३० के लगभग पण्डित देवधर ने स्कूल आफ़ इण्डियन म्यूजिक की नींव डाली जो अब तक ख़ूब चल रहा है। पण्डित बाबूराव गोखले का संगीत विद्यालय, पण्डित नारायण राव व्यास का व्यास संगीत विद्यालय, पण्डित मनोहर बरवे का मनोहर संगीत विद्यालय, श्री चिदानन्द नगरकर का भारतीय संगीत शिक्षापीठ, पण्डित बालकृष्ण बुआ कपिलेश्वरी का सरस्वती संगीत विद्यालय आदि नगर की प्रमुख संगीत संस्थाएँ हैं। इनके अलावा कुल मिलाकर सौ-सवा सौ और भी छोटे-बड़े संगीत के स्कूल मौजूद हैं।

बम्बई में संगीत गोष्ठियाँ (म्यूज़िक सर्किल) भी बहुत हैं। बम्बई म्यूज़िक सर्किल, इण्डियन म्यूज़िक सर्किल, म्यूज़िक आर्ट सोसायटी, सबर्बन म्यूज़िक सर्किल, दादर म्यूज़िक सर्किल, आगरा घराना संगीत समिति आदि गोष्ठियाँ अच्छी चल रही हैं।

बम्बई में बहुत-से घरानों के गवैयों का निवास रहा है। इनमें से कुछेक प्रमुख नाम ये हैं : स्व० अल्लादिया ख़ाँ अतरौली वाले; आगरा के लताफ़त हुसेन, अनवर हुसेन, ख़ादिम हुसेन और यूनुस हुसेन ख़ाँ; मुरादाबाद घराने के स्व० अमान अली खाँ और छज्जू ख़ाँ; ग्वालियर घराने के पण्डित देवधर, पण्डित नारायणराव व्यास, पण्डित विनायक-राव पटवर्धन और स्व० पण्डित पलुस्कर आदि; स्व० अब्दुल करीम ख़ाँ, डागर बन्धु, स्व० मोहम्मद ख़ाँ बीनकार, अब्दुल हलीम ख़ाँ इन्दौर वाले, अली अकबर ख़ाँ मैहर वाले, विलायत ख़ाँ और इनायत ख़ाँ सितारनवाज़, भीखन जी पखावजी, कुदऊ सिंह के घराने के लोग, अहमद जान थिरकवा, अज़मत हुसेन ख़ाँ अतरौली वाले, अमीर हुसेन तबलानवाज़, अल्लारखा खाँ तबलानवाज़ लाहौर वाले, शमसुद्दीन तबलानवाज़, नारा-यणराव इन्दौरकर, बाबूराव मंगेशकर, विष्णु पंत शिरोढ़कर, यशवन्त केरकर, कृष्ण राव कुमठेकर सारंगीनवाज़, मजीद खाँ, अमीरबख़्श और ख़ादिम हुसेन झज्जर वाले, बाबूराव कुमठेकर, अनन्तराव केरकर, दंता-राम पर्वतकर, रघुवीरजी रामनाथकर हारमोनियम नवाज़ आदि।

संगीत प्रचारक मन्डल

सन् १९३१ ईस्वी में मैंने बम्बई के सब गवैयों की एक बैठक बुलाई जिसका उद्देश्य यह था कि बम्बई में जहां संगीत का इतना प्रचार है, वहाँ उत्तरी हिन्दुस्तान के गवैयों की तरफ़ से कोई गायन शाला और सर्किल क़ायम किया जाय ताकि उत्तर भारत के गवैयों में परस्पर सम्पर्क बढ़े। बैठक का यह भी उद्देश्य था कि इस पाठशाला के लिए बहुमत से एक पाठ्यक्रम शुरू किया जाय। बैठक में संगीत सम्राट अल्लादिया खाँ

और उनके सुपुत्र मज्जी ख़ाँ, आफ़ताबे मौसी की फ़ैयाज़ हुसेन ख़ाँ, संगीत-रत्न अब्दुल करीम ख़ाँ, अमान अली ख़ाँ, अज़मत हुसेन ख़ाँ, अनवर हुसेन ख़ाँ, ख़ादिम हुसेन ख़ाँ आदि मौजूद थे। सभापति अल्लादिया ख़ाँ साहब थे। सबसे पहले अमान अली ख़ाँ साहब का भाषण हुआ। वह बोले, "स्कूल में मेरा तैयार किया हुआ कोर्स रखा जाय जिसे मैंने बरसों की मेहनत से बनाया है, वरना मैं शरीक न होऊंगा।" अब्दुल करीम ख़ाँ साहब बोले, "हमें एकता की बहुत ज़रूरत है और उससे भी पहले हमें अपने नामों से ख़िताब निकाल देने चाहिए। अगर ऐसा हो तो हम भी सब के साथ है।" मैंने पाठशाला की ज़रूरत पर ज़ोर दिया। अन्त में फ़ैयाज़ हुसेन ख़ाँ साहब ने कहा, "अपनी-अपनी बड़ाई करने से कोई लाभ नहीं। हमें एकता की सख़्त ज़रूरत है। हम सबको मिलकर प्रसिद्ध राग-रागिनियों का एक पाठ्यक्रम तैयार करना चाहिए ताकि संगीत शास्त्र की बढ़ती हो और विद्यार्थियों को लाभ हो। बहुत-से रागों पर कोई मतभेद नहीं है। उन्हें ज्यों का त्यों रखा जा सकता है। अछोप राग अवश्य अलग-अलग ढंग से गाये जाते हैं। उसके लिए भारत भर के गवैयों को बुला कर एक ढंग निर्धारित कर लेना चाहिए। सब लोग अपने-अपने ख़ानदान के ध्रुपद सुनायें और जिनकी सनद हो जाय वे रख लिए जाएँ। यही एक ढंग मतभेद मिटाने का है।" सब के अन्त में सभापति अल्लादिया ख़ाँ साहब ने अपने भाषण में कहा "हमसे पूछा जाय तो कोई भी पाठ्यक्रम ग़लत नहीं।" उन्होंने एक-दो चीज़ें मालकोस की सुनाईं जिनका स्वरूप अलग-अलग था और उनमें अलग-अलग ढंग से स्वर लगाये जो बहुत ही सुन्दर मालूम हुए।

उस मीटिंग में एकता उत्पन्न होने की कोई आशा नहीं दिखाई दी। फिर भी मैंने एक और मीटिंग बुलाई और इसके लिए सब लोगों को ख़त भी लिखे। मगर एक-दो को छोड़कर किसी ने ख़त का जवाब तक नहीं दिया और मुझे बहुत निराशा हुई। आख़िरकार मैंने अपने घराने के लोगों को अपने यहाँ इकट्ठा किया और अल्लादिया ख़ाँ साहब और मज्जी

ख़ाँ साहब को भी अपने घर आने का निमन्त्रण दिया। ये दोनों खुशी से आये और हमारी सभा के सभापति बने। हमने एक गायन मण्डली खोल कर संगीत की उन्नति करने के लिए जलसा करके फ़ण्ड इकट्ठा करने का निश्चय किया। एक महीने के बाद ही संगीत प्रचारक मण्डल के नाम से एक संस्था की नींव डाली गई जिसमें हर महीने संगीत का कार्यक्रम होने लगा। यह मण्डल सन् १९३६ में खोला गया और इसके मन्त्री अज़मत हुसैन ख़ाँ, उप-मन्त्री शांताराम तैलंग तथा अनवार हुसैन ख़ाँ और अध्यक्ष संगीत सम्राट अल्लादिया खाँ साहब हुए। अपने एक विश्वासी शिष्य को हमने कोषाध्यक्ष बनाया। एक साल बाद हमनें बम्बई में एक म्यूज़िक कान्फ्रेन्स बुलाई। अध्यक्ष पद ग्रहण करने की प्रार्थना हमने महाराजा धर्मपुर से की और वह मान भी गए। यह कान्फ्रेन्स सन् १९३७ ईस्वी में कावसजी जहाँगीर हाल में हुई और उसका सारा ख़र्च हमारे मण्डल ने उठाया। इसी समय पण्डित ओंकारनाथ, पण्डित विनायकराव पटवर्धन, पण्डित देवधर, पण्डित डी० वी० पलुस्कर और पण्डित नारायणराव व्यास भी एक कान्फ्रेन्स करने वाले थे। हमने इन लोगों से प्रार्थना की कि एक ही समय में दो की बजाय हम मिलकर एक ही कान्फ्रेन्स क्यों न करें। हमारी प्रार्थना ये लोग मान गए और यह कान्फ्रेन्स खूब ज़ोरदार हुई।

इस सम्मेलन में भारत के सभी बड़े-बड़े गवैये, बीनकार, हारमोनियम, सितार और तबलानवाज़ तथा आरकैस्ट्रा वाले शामिल हुए। गान्धर्व महाविद्यालय की ओर से भी कई अच्छे कलाकार इसमें शामिल हुए और सम्मेलन पूरी तरह सफल हुआ। इसी कान्फ्रेन्स में हमारे मण्डल ने कुछ प्रस्ताव भी पास किए जो ये हैं :

(१) मण्डल को मज़बूत बनाने के लिए कोशिश ज़ारी रखनी चाहिए।

(२) फ़ण्ड बढ़ाया जाना चाहिए।

(३) काफ़ी रुपया जमा होने के बाद एक बड़ा स्कूल या कालेज खोला जाय।

(४) उन कलाकारों को भी सदस्य बनाने की कोशिश करनी चाहिए जो अभी तक इसके सदस्य नहीं बने।

हमें अपने मण्डल की प्रगति का पूरा-पूरा भरोसा था। पर एकाएक हमारे कोषाध्यक्ष का रवैया ही बदल गया। वह मण्डल के सब कलाकारों को अपने आधीन समझने लगे और अपने आप को मण्डल का पूरा-पूरा मालिक। वह बिना किसी की राय लिए जलसा मुक़र्रर कर देते। जलसे में कलाकारों के उठने-बैठने में बेजा रुकावटें पैदा करते, जिसको इच्छा होती दावत देते और सभी से अकड़ के साथ बात करते। उनकी ये बातें मण्डल के सभी सदस्यों को बुरी लगतीं। इन बातों से मण्डल तंग आ गया और उनको उनके पद से अलग कर दिया गया। इस पर वह बहुत बिगड़े और उन्होंने एक नई चाल चली। वह कहने लगे कि हिन्दुस्तानी संगीत प्रचारक मण्डल मेरे नाम पर रजिस्टर्ड हुआ है। इसलिए इस नाम का उपयोग कोई और नहीं कर सकता। हमने कहा कि हमें इस नाम की ज़रूरत नहीं है, हम कोई दूसरा नाम रख लेंगे। इसके बाद हमने उसका दूसरा नाम 'गायन वर्द्धक संस्था' रख लिया और बाक़ी सारी की सारी कार्रवाई वैसी की वैसी जारी रही। मगर उनकी चाल सफल हो गई और वह मण्डल का सारा फ़ण्ड हजम कर गए। यद्यपि वह हमारे शिष्य थे और हमने उन्हें बड़ी मेहनत से तैयार किया था तथा उन पर बहुत भरोसा करते थे, परन्तु जो व्यवहार उन्होंने हमारे साथ किया उसकी हमको स्वप्न में भी आशा न थी।

इस्लामी दृष्टि से संगीत की मान्यता

कितने ही धार्मिक मुसलमानों से हमने सुना है कि संगीत धर्म-विरोधी कला है और इसे इस्लाम में हराम ठहराया है। मगर खोज करने से पता चलता है कि उनके पास ऐसा कोई प्रमाण या दलील नहीं जिससे

इस बात को सही मान लिया जाय। उनकी एक दलील यह है कि नाच-रंग और शराबख़ोरी भी संगीत में शामिल है। पर यह तो स्पष्ट संगीत को व्यर्थ बदनाम करना है। संगीत एक महान् पवित्र कला है और पवित्र मन वाले लोगों को सदा से प्रिय रही है। यह खेद की बात है कि बहुत-से लोगों ने इसे पहचाना ही नहीं। संगीत तो ऐसी ज़बर्दस्त विद्या है जो हज़ारों साल से चली आ रही है। बुज़ुर्गों से सुना है कि भगवान ने जब आदम का पुतला तैयार किया तो उसमें दाख़िल होने के लिए आदम को आज्ञा दी, मगर आदम ने उस अँधेरी कोठरी में प्रवेश करने में घबराहट प्रकट की। तब भगवान की आज्ञा से एक सुरीला नग़मा पैदा हुआ जिससे आदम पर मस्ती-सी छा गई और उसी मस्ती की-सी हालत में वह फ़ौरन पुतले में दाख़िल हो गया। बस क्या था, हज़रत आदम उठ बैठे और उठकर भगवान का सजदा किया।

इसी तरह की कितनी ही कथाएँ इस्लामी परम्परा में संगीत के सम्बन्ध में हमको मिलती हैं। इनमें से कुछेक मैं यहाँ पेश करता हूँ।

(१) हज़रत दाऊद बड़े ऊँचे दर्जे के पैग़म्बर हुए हैं। भगवान ने इन्हें कई अलौकिक चीज़ें दी थीं जिनमें सबसे बड़ी उनकी सुरीली आवाज़ थी। जिस वक़्त वह अपनी लोचदार और सुरीली आवाज़ से प्रार्थना करते तो इन्सान तो इन्सान जंगल के चरिंदे-परिंदे भी आपके इर्द-गिर्द जमा हो जाते और बेख़ुद हो जाते।

(२) हमारे पैग़म्बर मुहम्मद मुस्तफ़ा सुरीलेपन को बहुत पसन्द फ़रमाते थे। क़ुरान शरीफ़ को निहायत पुरअसर तरीक़े से पढ़ते थे। आपने हुक्म दिया था कि क़ुरान शरीफ़ को कराअत के साथ पढ़ो। अगर आदमी बद-आवाज़ हो तो वह बहुत आहिस्ता से पढ़े। इसी तरह हरेक मुअज़्ज़िन (अजान देने वाला) खुश-आवाज़ तलाश करके मुक़र्रर किया जाता था। हज़रत बिलाल हब्शी के नाम से इस्लाम की दुनिया खूब वाक़िफ़ है। इनके सुरीले गले से हज़रते सलअम बहुत खुश थे और

अजान देने के वास्ते इनको मुक़र्रर किया था। बहुत-से सुरीली आवाज़ वाले लोग अरबी नस्ल के भी उनकी ख़िदमत में थे। मगर हब्श के रहने वाले हज़रत बिलाल की आवाज़ का सुरीलापन सबसे निराला और और अद्‌भुत था। उनसे बेहतर मुअज्जिन कोई नहीं हो सकता था। उनकी सुरीली आवाज़ में दर्द कूट-कूट कर भरा हुआ था और उसका असर असाधारण होता था। उनकी आवाज़ कानों में पहुँचते ही एक कशिश-सी पैदा करती थी और लोगों के दिल इनकी तरफ़ खिंच जाते थे। इस बात से साफ़ ज़ाहिर है कि यह सब करिश्मा संगीत का ही था और संगीत ख़ुदा और रसूल की प्यारी चीज़ है। ऐसी चीज़ को वही हराम ठहरायेगा जो वास्तविकता से अपरिचित होगा। इन मिसालों के अलावा आज भी हम अरबी लहजे में और कराअत में संगीत का अनु-भव करते हैं जिसमें चढ़े-उतरे बारहों स्वर सुनाई देते हैं। अगर यह सच है तो कराअत को मौसीक़ी से अलहदा कैसे कर सकते हैं ? मैंने क़ई जगहों पर हाफ़िजों को क़ुराने-मजीद कराअत में पढ़ते सुना है और मैं बिना किसी सन्देह के यह कह सकता हूँ कि मैंने वह कराअत कहीं भैरवी राग में, कहीं कालिंगड़ा में और कहीं जोगिया वगैरह में सुनी है। इसलिए मुझे तो कोई गुंजाइश नज़र नहीं आती कि इस चीज़ को संगीत से अलग समझा जाय। यही वजह थी कि हज़रत ने संगीत को कहीं हराम नहीं कहा बल्कि उसको ऊँची जगह दी है।

(३) कई बार ख़ुद सरकारे दोआलम ने भी गाना सुना है। एक मरतबा ईद के मौक़े पर जब सरकार ईद की नमाज़ से .फ़ारिग़ होकर घर पर तशरीफ़ लाये तो मरदाने की कुछ लड़कियों ने ख़िदमत में आकर डफ बजा कर नाचना-गाना शुरू कर दिया जिसे हुज़ूर बहुत ख़ुशी के साथ सुनते रहे। किसी ख़ास मुसाहिब ने वजह जाननी चाही तो हुज़ूर ने फरमाया कि आज ईद का दिन है।

(४) एक बार जब हुज़ूर जंगेबदर से मुज़फ्फरो मंसूर मदीने में जिहाद से वापस आये और कुरैश की लड़कियों ने आपको घेर लिया और गाना-

बजाना शुरू कर दिया तो आप सुनते रहे। उस समय आपके चेहरे पर खुशी थी। किसी साहाबी ने इस चीज को बन्द करना चाहा तो लड़कियों ने कहा कि हमने मन्नत मानी है कि सरकार के वापस आने पर हम नाचेंगी और गायेंगी। उस समय खुद सरकार ने यह कहा कि इनको न रोको। उन्होंने जो मन्नत मानी है उसे पूरा करने दो।

(५) आमिर बिन साद कहता है कि मैं अबू मसूद अन्सारी के पास एक शादी में गया। वहाँ औरतें गा रही थीं। मैंने कहा, 'तुम रसूलिल्लाह के साहाबी हो और औरतों का गाना सुनते हो ?' वह बोले, 'तेरा जी चाहे तो हमारे साथ बैठ, अगर नहीं चाहे तो चला जा। हमें ब्याह-शादी में इजाज़त दी गई है कि डफ के साथ गाना सुनें।' यह हदीस 'सही निसाही' में है और शेख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस रहमतुल्ला अलैह ने मदारिज में लिखा है।

इन बड़ी मिसालों के अलावा और बहुत-सी मिसालें किताबों में मौजूद हैं जिनसे मालूम होता है कि धर्म के बड़े-बड़े बुज़ुर्गों ने संगीत को पसन्द किया है और अक्सर औलिया अल्लाह को यह चीज़ बहुत पसन्द होती थी। जैसे हज़रत अब्दुल्ला इबने जाफ़रे तय्यार, रजे अल्लाहो ताआला अनहो इमाम अहमद बिन हम्बल, हज़रत जुनैद बग़दादी, हज़रत ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती अजमेरी और चिश्ती तथा सोहरावर्दी ख़ानदान के तमाम लोग और अक्सर औलिया अल्लाह गाना सुनते थे तथा संगीत का बहुत लिहाज करते थे।

संगीत और हिकमत

संगीत का हिकमत से गहरा सम्बन्ध है जिसको समझने वाले अच्छी तरह से जानते हैं। सबसे पहले लय को ले लीजिए जिसको वज़न भी कह सकते हैं। इसका हिकमत में बड़ा दख़ल है। इन्सान की नब्ज़ और साँस लय में चलती हैं। अगर यह लय से ख़ारिज हो जाती हैं तो इन्सान बीमार हो जाता है और बढ़ने से मौत के नज़दीक पहुँच जाता है। कहने

का मतलब यह है कि ज़िन्दगी का दारोमदार इन्हीं चीज़ों पर है और यह लय संगीत का आधा हिस्सा मानी जा सकती है। कुछ बुज़ुर्गों ने इस राज़ को समझा था कि ज़िन्दगी का दारोमदार क़ुदरत ने साँसों के शुमार पर रखा है। इसीलिए वे अपनी साँस को बढ़ाने का प्रयत्न करते थे। वे एक ही सुर पर क़ायम हो जाते और इतनी देर तक ठहरते कि दूसरी साँस लिए बिना चारा ही न रहता। इसका नतीजा यह हुआ कि जितनी देर में वह पहले चार साँस लेते थे, वहाँ एक से ही काम निकल आता था और इस तदबीर में सुरों में भी अच्छी तासीर पैदा होती थी। साथ ही इससे उनकी उम्र भी बढ़ती थी। मैंने बड़े-बूढ़ों से सुना है कि दरवेश, साधु और योगी इस चीज पर पूरा-पूरा अमल करते थे। इसी कारण उनकी उम्रें दो-दो चार-चार सौ बरस तक की होती थीं। हमारे दादा साहब गुलाम अब्बास ख़ाँ की उम्र १२० साल की हुई। मैंने उन्हें अच्छी तरह देखा है। उन्होंने भी अपनी साँस को बहुत बढ़ाया था। गाना उनका बहुत ही पुरअसर होता था। साँस बढ़ाने की कोशिश तो वह बुढ़ापे में भी करते रहे और साँस को कभी तेज़ नहीं होने दिया। उनको कभी भागते-दौड़ते भी नहीं देखा। वह हमेशा बहुत धीमी चाल से चलते थे जिससे साँस की रफ़्तार तेज़ न हो। उन्हीं से मुझे यह भी मालूम हुआ कि वह तीस बरस तक ब्रह्मचारी रहे। वह ख़ुराक बहुत कम मगर ताक़त देने वाली खाते थे और साँस के वज़न को क़ायम रखते थे।

गाने से कितने ही रोग भी अच्छे होते हुए सुनने में आये हैं। हैदराबाद दक्खन के महाराजा कृष्णप्रसाद को आख़िरी ज़माने में बुरे सपनों का मर्ज़ पैदा हो गया था और रात-रात भर नींद न आती थी। बहुतेरा इलाज, दवा-दारू करने के बाद हकीमों ने राय दी कि आप रात को गाना सुना करें। महाराजा को भी यह राय पसन्द आई और वह रात को सोने से पहले अब्दुल करीम ख़ाँ वगैरह सरकारी गवैयों को बुलवाते और गाना सुनते। धीरे-धीरे उन्हें नींद आने लगी और जो शिकायत थी

वह जाती रही। इसी तरह मेरे एक घनिष्ठ मित्र अन्ना साहब नांदनी-कर वैद्य हैं, जो बेलगांव में रहते हैं। खुद उनको भी दिल की धड़कन की बीमारी हो गई थी और उनका दिल इतना धड़कता था कि बेहोश हो जाते थे। एकाएक उनके ख़्याल में यह बात आई कि गाना सुनना चाहिए। और उसके बाद वह हर रोज़ शाम को किसी कलावन्त को या तो अपने घर बुलाते या ख़ुद उसके घर जाकर घण्टा-दो घण्टा गाना सुनते थे। थोड़े ही दिनों में उनके दिल को चैन आने लगा और धड़कन जाती रही। यह बात मैंने ख़ुद वैद्य जी के मुँह से सुनी है।

ख़ुद गाने वाले के लिए बहुत बार संगीत बड़ी अच्छी दवा साबित होता है। अक्सर देखा गया है कि गाने वालों को फेफड़े की बीमारी बहुत कम होती है क्योंकि उनके फेफड़ों को वर्जिश का मौक़ा मिलता रहता है। उनसे गंदी हवा निकलती रहती है और अच्छी हवा पहुँचती है जिससे कोई बड़ी बीमारी पास नहीं आने पाती। गाने वाले के दिल को अपने गाने से बड़ी प्रसन्नता होती है और उसे आराम और शान्ति मिलती है।

संगीत और कविता

कविता में भी सबसे बड़ी चीज़ लय है। कवित्त, दोहरा, पद, ग़ज़ल, रुबाई सब किसी न किसी लय में ही होते हैं। अगर ये लय से ख़ारिज होंगे तो बेताले माने जायेंगे। दूसरी बात यह है कि जो समझदार और कामिल शायर होगा, वह अक्सर ऐसे शब्दों का इस्तेमाल करेगा जिनमें संगीत होगा। इसके अलावा यह भी है कि कवित्त, दोहरा, छन्द, पद, ग़जल, रुबाई, मसनवी वगैरह सीधे तौर पर पढ़ दी जायें तो असर कम होता है। अगर उन्हें किसी धुन में या किसी रागिनी में पढ़ा जाय तो उनमें चार गुना रंग आ जाएगा। आजकल के मुशायरों में हमें यह बात आम तौर से नज़र आती है कि जो ग़ज़लें तरन्नुम के साथ अर्थात् गाकर पढ़ी जाती हैं, उनका असर सुनने वालों पर बहुत गहरा पड़ता है और

मुशायरे में भी बड़ा रंग आ जाता है। इस बात से यह साफ़ जाहिर है कि संगीत का शायरी के साथ भी कम लगाव नहीं है।

बुज़ुर्गों के कुछ उपदेश

(१) **एके साधे सब सधें, सब साधे सब जायँ**—मतलब यह है कि सिर्फ एक ही सुर पर आवाज़ को क़ायम किया जाय। तम्बूरे का एक ही तार बजाकर स्वर फिराते रहें। जब आवाज़ सुर पर क़ायम हो जाय तो इसका फ़ायदा यह होगा कि बाक़ी तमाम सुर सच्चे और सुरीले लगने लगेंगे और एक के सधने से सबको साधने का मतलब पूरा हो जाएगा। इसके विपरीत अगर एक ही वक़्त में सातों स्वर लगाने की कोशिश की जाय तो एक भी स्वर सच्चा न लगेगा और इस तरह 'सब साधे सब जायँ' की बात पूरी होगी। इसी तरह पहले सिर्फ़ एक ही रागिनी विद्यार्थी को सिखाई जानी चाहिए जिसे वह हर रोज़ दोहराता रहे। इसी में उसे अस्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग की तानें समझायें, बढ़त का तरीक़ा बतायें, आरोह-अवरोह का तरीक़ा दिमाग़ में बैठायें, विलम्पत, मध्य और द्रुत तानों का क़ायदा याद करायें और आकार, इकार, उकार वगैरह गले से निकलवायें। मतलब यह है कि गायकी की बहुत-सी तरकीबें इसी एक रागिनी में समझा दी जायें। जब विद्यार्थी उन्हें समझकर गाने लगे तो वह इस राग का माहिर माना जाएगा। इससे फ़ायदा यह होगा कि आइन्दा जो रागिनियाँ सिखाई जाएँगी, वे जल्दी-जल्दी समझ में आने लगेंगी और गले को भी ज़्यादा तकलीफ़ न होगी। इस तरह से भी 'एके साधे सब सधें' का मतलब पूरा होगा।

यही बात ताल के सबक़ के बारे में भी सही है। यह ज़रूरी है कि विद्यार्थी को पहले एकताले की बारह मात्रा रटवाई जायें और बारह मात्राओं का ठेका भी सिखला दिया जाय, बल्कि उसे यह ज़बानी याद करा दिया जाय। अगर हाथ से बजाना भी सिखा दिया जाय तो बहुत फ़ायदेमन्द होगा। जब इस ताल का ख़ाली और भरा विद्यार्थी के दिल

में बैठ जाएगा और वह वज़न अच्छी तरह से समझ जाएगा तो आइन्दा दूसरी तालें भी वह जल्दी-जल्दी याद कर सकेगा और इस तरह 'एके साधे सब सधें' का सही मतलब निकल आयेगा।

(२) **आसन बैठे ऊंट की तब हो सिद्ध अलाप**—यह बात हमने बड़े-बड़े बुज़ुर्गों से सुनी है और इसमें कोई शक नहीं कि यह समझने और अमल करने के क़ाबिल है। मतलब इसका यह है कि गाने वाला अपनी मनमानी बैठक बैठकर न गाये, बल्कि दोनों घुटने मोड़कर ऊंट की बैठक बैठकर गाये। इस बैठक में बहुत-से फ़ायदे हैं। सबसे पहला तो यह कि जिस्म का ऊपर वाला (नाभि से सिर तक) हिस्सा सीधा रहता है और आवाज़, जिसका सीधा सम्बन्ध नाभि से है, निकालने में कोई रुकावट नहीं होती। इससे साँस भी ज्यादा क़ायम रहती है। इन फ़ायदों को मालूम करके ही बुज़ुर्गों ने यह मसल क़ायम की है।

(३) **दिक्खिया, सिक्खिया परक्खिया**—यह बात लोगों में पुराने ज़माने से चली आ रही है। इसका मतलब कुछ छिपा हुआ नहीं है। मगर मैंने यह सोचा कि किताब में लिख देने से आने वाली पीढ़ियों को फ़ायदा पहुँचेगा। पहला शब्द है 'दिक्खिया' यानी 'देखो'। अब हम अगर इसके लफ़्ज़ी मानों पर ख़्याल करेंगे, तो इसका कुछ मतलब नहीं निकलता। पर यह साफ़ ज़ाहिर है कि यहाँ देखने से मुराद सुनना है। क्योंकि गाना कोई आँखों से नजर आने वाली चीज नहीं बल्कि सुनने की चीज़ है। गाना सुनने से सुनने वाले को और ख़ासकर सीखने वाले को जो फायदे पहुँचते हैं, वे ज़ाहिर हैं! बल्कि सही मानी में सुनने से ही गाना आता है। बिना सुने कोई विद्यार्थी यह मालूम ही नहीं कर सकता कि गाना क्या चीज़ है। इसलिए 'दिक्खिया' शब्द का एक बड़ा गहरा मतलब ध्यान में आता है। शायद 'दिक्खिया' से मतलब यही है कि दिल की आँख से इसे देखो और दिल के कानों से इसे सुनो।

दूसरा शब्द है 'सिक्खिया' यानी 'सीखो'। मतलब साफ़ है कि सुनो

और सीखो। उस्ताद अपने गले से सुर अदा करे, शागिर्द सुनें और फिर अपने गले से निकालें। इस तरह जानकारी बढ़ती जाएगी और हर चीज़ गले से निकलने लगेगी। साथ ही एक उस्ताद से सीख लेने के बाद भी 'सिक्खिया' का मतलब पूरा नहीं हो जाता। उसका उपयोग आगे भी होता रहता है और वह इस तरह कि जब किसी गायक से कोई नई चीज़ सुनो तो उसे हासिल कर लो। अगर ऐसा मौक़ा न भी मिले तो उस चीज़ पर पूरी तरह ध्यान देकर उसे गले से अदा करने की कोशिश करो जिससे एक हद तक कामयाबी हासिल हो जाय। अब यह अपना-अपना दिमाग़ है कि कोई जल्दी हासिल कर लेता है और कोई देर से। यह एक स्वाभाविक चीज और प्राकृतिक देन है। बुज़ुर्गों से सुना है कि विद्यार्थी को पहले एक उस्ताद से अच्छी तरह सीखना और अपना 'कोर्स' पूरा कर लेना चाहिए। उसके बाद जहाँ कोई नई चीज़ पाई, उसे हासिल करने की कोशिश करनी चाहिए ताकि कला की जानकारी बढ़ती जाय। मेरे उस्ताद कहा करते थे कि सौ आदमियों का शागिर्द होगा तब एक उस्ताद बनेगा।

तीसरा शब्द है 'परक्खिया' यानी 'परखो', 'जाँचो', 'तोलो', 'आज-माइश करो'। वास्तव में इस शब्द का अर्थ बहुत ही गहरा है। एक तरह से इसमें देखना, सीखना, परखना सभी चीज़ें शामिल हो जाएँगी। अपनी राग-रागनियों को जाँचने और उनकी असलियत मालूम करने के लिए यह ज़रूरी है कि बहुत-से कलावंतों को सुना जाय और ग़ौर किया जाय कि उन में और हम में क्या फ़र्क है, उनका राग हमारे राग से मिलता है या नहीं। सच्चाई पैदा करने का तरीक़ा यही है कि एक ही राग को अलग-अलग जगह सुनकर फ़र्क को समझो और जो अधिक लोगों को मंज़ूर हो उसी पर मश्क करो।

किसी एक ही उस्ताद से हासिल की हुई राग-रागनियों में ग़लती होने की सम्भावना है और इसकी कई वजहें हैं। एक तो यह कि शायद सीखते वक़्त उस्ताद से कुछ भूल हो गई हो। दूसरी यह कि शागिर्द

ने सीखने के बाद कोई चीज़ भुला दी हो। तीसरी यह भी मुमकिन है कि कोई भूल-चूक न हुई हो मगर अपनी तबीयत से किसी ने कोई चीज़ बढ़ा दी हो तो इस तरह का राग संगीत जगत में माना नहीं जाएगा। यही वजह थी कि बुज़ुर्गों ने 'दिक्खिया', 'सिक्खिया' और 'परक्खिया' की कारआमद नसीहत की है।

(४) **'करता उस्ताद, ना-करता शागिर्द'**—इस कहावत में मेहनत और रियाज़ की नसीहत की गई है। गाना एक बड़ी मुश्किल चीज़ है जिस पर दिन-रात अमल करने की ज़रूरत है। इस पर जिस क़दर मेहनत की जाय थोड़ी है। संगीत की दुनियाँ में जिसने भी नाम पाया है, मेहनत ही से पाया है। कोई आदमी फ़न में बड़ा माहिर हो, बहुत-सी राग-रागिनियाँ सीखी हों, चीज़ों की याददाश्त भी काफ़ी हो; मगर अमल नहीं है तो वह महफ़िल में बैठकर गा नहीं सकता। और अगर गाये भी तो सुनने वाला खुश नहीं हो सकता। दूसरी तरफ ऐसा व्यक्ति जिसे इल्म की जानकारी तो कम है मगर मेहनत ज़बर्दस्त है, उसका स्वर सच्चा, तान ज़ोरदार, लय पुख्ता है; तो ऐसा शख्स महफिल में बैठकर मजलिस को अपने गाने से खुश कर देता है। यह 'करता उस्ताद, ना-करता शागिर्द' की खुली हुई मिसाल है। दरअसल संगीतज्ञ को मेहनत की बेहद ज़रूरत है। मेरे उस्ताद कहा करते थे कि अगर लोहे के टुकड़े को पत्थर पर घिसा जाएगा तो वह आइने की तरह चमकने लगेगा। यहाँ तक कि उसमें आइने की तरह ही सूरत नज़र आने लगेगी। इसका मतलब ज़ाहिर है कि मामूली चीज़ पर भी पालिश करने से उसकी हालत बदल जाती है तो फिर अगर ऊंची और आला चीज़ पर कोई मेहनत करके उसे चमकायेगा तो वह किस क़दर दिल को खींचने वाली और अच्छी होगी ?

(५) **'जलो कण्ठ बिन राग'**—इसका मतलब ज़ाहिर है कि अच्छी आवाज़ के बिना राग जल गया। राग जलने से अभिप्राय मज़ा किर-

किरा होने का है। बुज़ुर्गों की यह नसीहत याद रखने के क़ाबिल है। वास्तव में बुरी आवाज़ वाले आदमी के गाने में कोई लुत्फ़ नहीं आ सकता। लेकिन पुराने उस्तादों ने कुछ तरीक़े, कुछ रख-रखाव ऐसे बनाये हैं जिनसे खराब आवाज़ वाला आदमी भी अपने गले को मीठा कर सकता है। और यह सच है कि पुराने बुज़ुर्गों में बुरी आवाज़ वाले भी कोई-कोई थे, मगर उस्तादों के बनाये हुए तरीक़ों पर मेहनत करने से उनकी आवाज़ में लोच पैदा हुआ और असर भी और वह हिन्दुतान के मशहूर गानेवालों में शुमार हुए।

(६) **'उपजत अंग स्वभाव'**—गानेवालों के लिए यह बात बुज़ुर्गों ने बहुत सोच-समझकर बनाई है। कलावंत जब गाने को बैठता है तो पहले वह अपने घराने के तरीक़े से अस्थायी, अन्तरा वगैरह पूरा करने के बाद स्वर की बढ़त शुरू करता है। इस बढ़त में सुरों का लगाव, मींड़, सूत, लहक, घसीट वगैरह बहुत-सी चीज़ें शामिल होती हैं और जैसे-जैसे गानेवाले का दिमाग़ काम करता है, वैसे-वैसे वह अदा करता जाता है। यह बढ़त बिलम्पत लय में होती है। मगर ख़ास-ख़ास मौक़े पर इसमें मध्य और द्रुत लय की भी छोटी-छोटी तानें लगाई जाती हैं और इनको शामिल करने से एक ख़ास जान पैदा हो जाती है। जब गानेवाला बढ़त करते-करते टीप के स्वर पर पहुँच कर अपने 'उपजत अंग स्वभाव' से काम लेकर नई-नई तरकीब से स्वर लगाता है तो इस लगावट से एक असर पैदा होता है जिससे सुननेवाले बेचैन हो जाते हैं। मगर इस बेचैनी में एक ख़ास मज़ा उनको आता है और वह चाहते हैं कि बार-बार इन्हीं तरकीबों को सुना जाय। ऐसे गाने से उनका दिल नहीं भरता। एक तरफ़ सुनने वालों का यह हाल होता है, दूसरी तरफ गानेवाले की यह हालत होती है कि वह ख़ुद नहीं समझ सकता कि तानें कहाँ से निकल रही हैं, आवाज़ कहाँ से पैदा हो रही है। एक मस्ती-सी छा जाती है; वक्त का भी कोई अन्दाज़ नहीं रहता कि कितनी देर गाया। और यही हाल सुननेवालों का भी होता है कि वे भी नहीं समझ सकते कि कितना

वक़्त गुज़र गया। बहुत मौक़ों पर देखा गया है कि गानेवाले ने चार-चार घण्टे गाया है और सुनने वालों ने सुना है, मगर दोनों को वक़्त भारी नहीं हुआ। ध्यान देने से मालूम होता है कि यह रंग 'उपजत अंग स्वभाव' ही भर देता है।

कलाकारों के चन्द लतीफ़े

(१) एक ज़माने में जयपुर में, जहाँ अच्छे-अच्छे गुणी जमा थे, रजब अली ख़ाँ बीनकार के मकान पर सब लोग मिला करते थे। एक रोज़ का ज़िक्र है कि वहाँ दस-बारह मशहूर कलाकारों का मजमा था। शाम के वक़्त ये लोग सहन में एक बड़े पलंग पर, जिसे भाचा कहते हैं, बैठे हुए थे। मौजूद लोगों में मुबारक अली ख़ाँ, बहराम ख़ाँ, घग्घे ख़ुदाबख़्श, इमरत सैन, ख़ैरात अली ख़ाँ जैसे कलाकार थे और आपस में हँसी-दिल्लगी की बातें हो रही थीं। बहराम ख़ाँ ने ख़याल गाने वालों की बहुत-बहुत हँसी उड़ाई। वह कहने लगे कि ख़याल का गाना जनाना गाना है और ध्रुपदों का गाना मरदाना और बहादुरी का गाना है। इस लफ़्ज़ पर मुबारक अली ख़ाँ से ज़ब्त न हो सका और फ़ौरन बहराम ख़ाँ से कहा, "बड़े मियाँ, हमारा गाना ऐसा नहीं है जैसा आप समझते हैं। हाँ, जरा सम्हलिये।" यह कहकर जो एक ज़बर्दस्त तान गमक के साथ ली तो पलंग के चारों पाये टूट गये और जितने आदमी पलंग पर बैठे हुए थे गिर कर झिलंगे में इस तरह फँस गये जैसे कबूतर जाल में फँस जाते हैं। बड़ी मुश्किल से ये लोग सम्हल-सम्हल कर झिलंगे में से निकले। हर शख़्स हँसता-हँसता लोट-पोट हुआ जाता था और सब के पेट में बल पड़े जा रहे थे। बहुत दिनों तक लोगों को यह वाक़या याद रहा।

(२) यह जयपुर के महाराजा सवाई रामसिंह के ख़ास दरबार का ज़िक्र है। वहाँ बहुत-से गाने-बजाने वाले नौकर थे। महाराजा साहब को गाने-बजाने के अलावा इन लोगों की बातों में भी लुत्फ़ आता था। इस-

लिए ख़ास अवसरों पर हर शख़्स को बात करने की इजाज़त थी । एक रोज़ का ज़िक्र है कि बहराम ख़ाँ ने सोचा कि आज गवैयों को चिढ़ाकर कुछ लुत्फ़ उठाना चाहिए । यह ख़्याल आते ही ख़ाँ साहब खड़े हो गए और महाराजा साहब से अर्ज़ की, "हुज़ूर आली, मेरी एक गुज़ारिश है ।"

महाराजा साहब ने फ़रमाया "ज़रूर कहो ।"

ख़ाँ साहब ने कहा, "ख़ुदा के दरबार में जब इल्म बाँटा जा रहा था, तो वहाँ सिर्फ़ मैं हाज़िर था । मुझे इल्म इनायत हुआ । बाक़ी गवैये मौजूद न थे । उनको इल्म न मिल सका । अब बेख़बरी से चिल्लाना इन लोगों को आ गया है ।"

यह सुनकर अमीरबख़्श नौहार से न रहा गया । वह भी फ़ौरन ही खड़े हुए और महाराजा साहब से अर्ज़ की, "महाराज, मेरी भी एक विनती है ।"

महाराजा ने कहा, "ज़रूर कहिये । आपका क्या मतलब है ?"

ख़ाँ साहब ने कहा, "जैसा बहराम ख़ाँ साहब ने अभी बताया कि इल्म के बँटवारे के वक्त हम लोग ग़ैरहाज़िर थे । यह बात सही है । मगर ख़ुदा के उस दरबार में जहाँ असर बाँटा जा रहा था, वहाँ हम लोग हाज़िर थे । और हम सब वहाँ से अपना-अपना हिस्सा ले आये । अफ़-सोस की बात यह है कि बहराम ख़ाँ साहब वहाँ ग़ैरहाज़िर थे, इसलिये यह इस चीज़ से महरूम रहे ।"

बात सुनकर महाराजा साहब ने हँस कर कहा, "हाँ, यह बात बिल्कुल ठीक कहते हो ।" दरबार में जो और लोग मौजूद थे वे भी इस लतीफ़े पर बहुत हँसे ।

(३) गवैयों को अक्सर मीठा खाने का शौक़ रहा है । कोई-कोई गवैया तो मीठे का इतना शौक़ीन रहा है कि अगर मिठाई न मिले तो वह भूखा रहता । मुबारक अली ख़ाँ को, जो अलवर के महाराजा शिवदान

सिंह के दरबार में थे, मिठाई खाये बगैर चैन ही न आता था। इनका वेतन भी अच्छा था; सात सौ रुपया माहवार उन्हें मिलता था। इनके मकान पर शागिर्दों और दोस्तों का एक मजमा रहता और कोई-कोई शागिर्द और दोस्त तो इन्हीं के दस्तरख़ान पर खाना खाते थे। इसलिए तनख़्वाह काफ़ी न होती थी और अक्सर कर्ज़दार हो जाते थे। कर्ज़ ज़्यादातर हलवाई का होता जहाँ से यह रोज़ाना मिठाई उधार मँगवाया करते थे। जब तक उनके पास पैसा रहता मिठाई नक़द आती, वर्ना उधार। हर महीने दो-चार सौ रुपये हलवाई के कर्ज़ हो जाते। एक बार कर्ज़ बढ़ते-बढ़ते कई हज़ार तक पहुँच गया तो हलवाई को फ़िक्र हुई। उसने कई बार ख़ाँ साहब के यहाँ आदमी भेजा। मगर ख़ाँ साहब के पास क्या था जो देते, वह टालमटोल करते रहे। हलवाई ने तंग आकर महाराजा साहब की ख़िदमत में अर्ज़ी पेश कर दी और उसमें लिखा कि मुबारक अली ख़ाँ साहब पर मेरा कई हज़ार रुपया आता है। महाराजा साहब को यह बात मालूम हुई तो बड़ा ताज्जुब हुआ और कहा, "ख़ाँ साहब किस क़दर मिठाई खाते थे!" इसके बाद महाराजा साहब ने हलवाई को तो सब रुपया ख़ज़ाने से दिलवा दिया मगर इसके साथ ही यह हुक्म भी दिया कि आज से ख़ाँ साहब को कोई मिठाई या शक्कर न दे—न नक़द न उधार। सरकारी हुक्म था, सबने उस पर अमल किया और ख़ाँ साहब को मिठाई मिलनी बन्द हो गई। इस पर ख़ाँ साहब बड़े परेशान हुए। मगर कुछ सोचकर अपने नौकर को बुलाया और कुछ रुपया देकर उससे कहा कि अत्तार की दूकान से बारह बोतलें अनार के शर्बत की ख़रीद लाये। नौकर फ़ौरन गया और ख़रीद लाया। ख़ाँ साहब ने ज़र्दा पकवाया और उसमें शक्कर की जगह अनार का शर्बत डलवाया। ज़र्दा ख़ाँ साहब ने ख़ुद भी खाया और अपने दोस्तों-शागिर्दों को भी खिलाया। अब रोज़ाना बारह बोतलें अनार के शर्बत की आने लगीं। जब पैसे निबट गये तो ख़ाँ साहब ने अत्तार को बुलवाया और कहा कि तनख़्वाह मिलने पर सब पैसे दे दिए जाएँगे, और वह रोज़ बारह बोतलें

भेज दिया करें। जब यह खबर महाराजा साहब तक पहुँची तो वह बहुत हँसे। फिर ख़ाँ साहब को बुलवाया और इनकी तनख्वाह दो हज़ार कर दी और मिठाई कर्ज़ मँगवाने से मना कर दिया।

(४) रामपुर के नवाब जनाब हामिद अली ख़ाँ उस्ताद वज़ीर ख़ाँ के शागिर्द थे और संगीत के बड़े भारी जानकार थे। इनको तानसेन जी के घराने के बहुत-से ध्रुपद याद थे, बहुत-से तालों पर काबू था और अस्थाइयाँ तथा ख्याल भी सैकड़ों ही मालूम थे। इनके दरबार में अच्छे-अच्छे गवैये थे। यही वजह थी कि इन्होंने बाहर के लोगों का गाना सुनना बन्द कर दिया। एक बार का ज़िक्र है कि आगरे वाले ग़ुलाम अब्बास ख़ाँ अपने किसी काम से मुरादाबाद गए। वहीं इन्हें ख्याल हुआ कि रामपुर पास ही है, नवाब साहब को ज़रा सलाम भी करते जायें। इसलिए अपना काम पूरा करके रामपुर पहुँचे। वहाँ वह मूलजी नामक एक दरबारी के यहाँ ठहर गए और उसको अपना इरादा बताया। मूलजी ने दूसरे ही दिन नवाब साहब से अर्ज़ कर दिया कि ग़ुलाम अब्बास ख़ाँ आये हैं और सरकार को सलाम करने के लिए दरबार में हाज़िर होना चाहते हैं। नवाब साहब ने हुक्म दिया कि उन्हें अगले दिन सुबह अपने साथ ही लेते आओ। दूसरे दिन सबेरे ख़ाँ साहब महल में हाज़िर हुए। नवाब साहब ने सलाम के लिए अन्दर आने की इज़ाजत दे दी। ख़ाँ साहब ने पहुँच कर शाहाना सलाम किया और आज्ञा पाकर बैठ गए। नवाब साहब ने पहले तो कुशल-मंगल पूछी और शिष्टाचार की बातें करते रहे। उस समय नवाब साहब के उस्ताद वज़ीर ख़ाँ भी वहाँ मौजूद थे।

एकाएक नवाब साहब ने फ़रमाया, "मियाँ ग़ुलाम अब्बास, मैंने तो गाना सुनना छोड़ दिया है।"

ख़ाँ साहब ने फ़ौरन अर्ज़ किया, "यह तो सरकार ने बहुत ही अच्छा किया। क्योंकि हिन्दुस्तान भर के गवैयों को आप सुन ही चुके हैं। दूसरे

यहाँ ख़ुद सरकार को संगीत विद्या का ऐसा ज्ञान मिल चुका है जिसका जवाब नहीं। फिर ऐसे-वैसे को सुनकर परेशान होने से क्या फायदा ? जो हुज़ूर ने किया है, वही मुनासिब था।" फिर बातचीत के सिलसिले को बनाए रखने के लिए ख़ाँ साहब ने अर्ज़ किया, "हुज़ूरेआली, बन्दे ने भी गाना छोड़ दिया है। क्योंकि अब बुढ़ापे का वक्त है, बहुत-कुछ गा-बजा चुका हूँ। अब तो काबे के हज की आरज़ू है। ख़ुदा पूरी करे।"

नवाब साहब चुपचाप यह बातचीत सुनते रहे। फिर कुछ देर बाद बोले, "मियाँ गुलाम अब्बास, मैंने हिन्दुस्तान भर के सब गाने-बजाने वाले सुने, मगर सिर्फ़ दो आदमी मुझे लयदार नज़र आये।"

"वे दो आदमी कौन-से हैं ?" ख़ाँ साहब ने पूछा।

नवाब साहब ने फ़रमाया, "एक तो लखनऊ वाले बिन्दादीन और दूसरे उस्ताद वज़ीर ख़ाँ साहब।"

यह सुनकर ख़ाँ साहब ने फ़ौरन ही अर्ज़ किया, "सरकारआली, एक हस्ती को भूल गए।"

नवाब साहब को यह सुनकर बड़ी हैरत हुई और बोले, "बिलकुल ग़लत है। कोई तीसरा है तो उसका नाम लो।"

ख़ाँ साहब ने फ़ौरन कहा, "सरकारआली वह ख़ुद आप हैं। ख़ुदा ने आपको लय और स्वर का हिस्सा पूरा इनायत किया है।"

नवाब साहब यह सुनकर खुश हो गए और कहने लगे, "भाई, यह तो तुम्हारी मुहब्बत है जो ऐसा कहते हो।" कुछ देर बाद नवाब साहब ने पूछा, "गुलाम अब्बास, यह तो बताओ कि जयपुर वाले मुशर्रफ ख़ाँ कैसी बीन बजाते हैं ?"

ख़ाँ साहब ने अर्ज़ किया, "साहब, मुशर्रफ ख़ाँ के क्या कहने ! हिन्दुस्तान के अच्छे बीन बजाने वालों में से हैं।"

नवाब साहब ने फिर फ़रमाया, "उस्ताद वज़ीर ख़ाँ साहब कैसी बीन बजाते हैं ?"

ख़ाँ साहब ने वज़ीर खाँ साहब की तरफ़ इशारा करके कहा, "यह तो किसी में नहीं ।"

नवाब साहब इस बात पर चौंक पड़े और ज़रा-सी नाराज़ी के साथ बोले, "यह तुमने हमारे उस्ताद के बारे में क्या कहा ?"

ख़ाँ साहब ने अर्ज़ किया, "सरकार, बीन तीन तरह की होती है ।"

"यह किस तरह ?" नवाब साहब ने पूछा ।

"असली, नक़ली और फ़सली", ख़ाँ साहब ने अर्ज़ किया ।

नवाब साहब ने फिर पूछा, "ज़रा और समझाकर कहो ।"

खाँ साहब ने अर्ज़ किया, "असली वह बीन है जो चौदह पुश्त से ख़ानदान में चली आ रही है । सच्चे क़ायदे, सच्चे सबक़, सच्चे तरीक़े भी वहाँ उसी तरह चले आ रहे हैं । दूसरी नक़ली बीन वह है कि किसी ने उनकी नक़ल की और बजाने लगे । तीसरी बीन फ़सली है, जिसके मानी ये हैं कि कहीं बीनकार बन गए, कहीं सितारिये । जहाँ जैसा मौक़ा देखा, वहाँ वैसा ही करने लगे । अब इन बीनों पर ग़ौर करने से ज़ाहिर होता है कि असली असली ही है और नक़ली नक़ली । ख़ाँ साहब वज़ीर खाँ की बीन असली है । हिन्दुस्तान के बीनकार इन्हीं से सीखे और इन्हीं की नक़ल करते हैं । ख़ाँ साहब किसी में नहीं हैं, बाक़ी सब इन्हीं में से हैं ।"

ग़ुलाम अब्बास साहब इतना ही कहने पाये थे कि नवाब साहब ख़ुशी के मारे उछल पड़े और उनकी योग्यता की तारीफ़ की । वह इनसे इतने ख़ुश हुए कि एक हज़ार रुपये का इनाम भी दिया ।

(५) पुराने बुज़ुर्ग आपस में बड़े मेल-जोल से रहते और बड़ी मुहब्बत से एक-दूसरे से मिला करते थे । इनमें आपस में कभी-कभी हँसी-

दिल्लगी भी होती थी, मगर कभी दिलों में रंजिश नहीं पैदा होती थी। एक बार देहली वाले तानरस ख़ाँ ग्वालियर आए हुए थे और सराय में ठहरे थे। उन दिनों ग्वालियर में उस्ताद हद्दू ख़ाँ, हस्सू ख़ाँ और नत्थू ख़ाँ वगैरह का दौर-दौरा था। एक रोज़ तानरस ख़ाँ से मिलने के लिए ये लोग सब सराय में आए और दूसरे रोज़ तानरस ख़ाँ भी उनके मकान पर गये। संयोगवश उस समय नत्थू ख़ाँ मकान पर मौजूद न थे, मगर हद्दू ख़ाँ ने उनकी बड़ी खातिर की और बड़ा स्वागत किया। वहाँ एक खूँटी पर एक लम्बी पगड़ी बँधी हुई थी जिसको उस ज़माने में चीरा कहते थे। तानरस ख़ाँ ने उसे देखा तो वह उन्हें बहुत पसन्द आई और खूँटी से उतार कर उसे पहन लिया। यह देखकर हद्दू ख़ाँ ने कहा, "अगर आपको पसन्द है तो इसे अपने पास ही रखिए।" इस पर तानरस ख़ाँ पगड़ी को अपने साथ ले आए। पर फ़ौरन ही शहर में यह बात मशहूर हो गई कि तानरस ख़ाँ नत्थू ख़ाँ की पगड़ी ले गए। नत्थू ख़ाँ ने यह बात सुनी तो फ़ौरन घर आए और दरयाफ़्त करने पर उन्हें मालूम हुआ कि सचमुच तानरस ख़ाँ पगड़ी ले गए हैं।

नत्थू ख़ाँ यह सुनते ही हाथ में भाला ले घोड़े पर सवार होकर सराय की तरफ़ चल दिए। सराय में पहुँच कर देखा कि तानरस ख़ाँ पलंग पर लेटे हुए हैं। नत्थू ख़ाँ ने क़रीब पहुँचकर भाला उनकी छाती पर रख दिया और कहने लगे, "लाओ, पगड़ी कहाँ है ? हाज़िर करो।"

तानरस ख़ाँ ने कहा, "भाई साहब, आइए बैठिए, मैं अभी आपको पगड़ी देता हूँ।"

मगर यह नहीं माने। कहने लगे, "बातचीत पीछे होगी, पहले पगड़ी लाओ।"

तानरस ख़ाँ ने जल्दी से पगड़ी पेश कर दी। उसके बाद दोनों साहब मिलकर बैठे और बहुत देर तक बातें करते रहे। यह बात भी दोस्ताना

तरीक़े से ख़त्म हो गई। बल्कि पगड़ी का ज़िक्र भी कभी बीच में नहीं आया क्योंकि दोनों के दिल साफ़ थे।

(६) जयपुर नरेश स्वर्गवासी महाराजा रामसिंह को संगीत विद्या की बहुत अच्छी समझ थी। वह ख़ुद बीन बजाते थे और हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े नामी गवैये उनके दरबार में थे। उनके अलावा बाहर से कोई गुणी आ जाता तो उसे ज़रूर सुनते। एक बार का जिक्र है कि पंजाब के एक ख़ाँ साहब गाने वाले जयपुर आये। महाराजा के पास खबर पहुँची और उनका हुक्म हुआ कि आज ही रात को सुनेंगे। रात को नियत समय पर ख़ाँ साहब दरबार में हाज़िर हुए। उनका लिबास बेहतरीन था। कमख़ाब मुशज्जर और सेले वगैरह पहने हुए थे; हाथों में सोने के कड़े और अँगूठियाँ भी थीं। महाराजा साहब ने गाने का हुक्म दिया। ख़ाँ साहब ने तम्बूरे की जोड़ी किसी न किसी तरह मिलाई और गाना शुरू किया। महाराजा साहब बड़े ध्यान से सुन रहे थे और दरबार में उपस्थित दूसरे लोग भी कान लगाए थे। मगर इन साहब का कोई सुर सच्चा न लगता था; न ताल का कोई ठिकाना था, न राग का। मुश्किल से महाराजा साहब ने एक घण्टा उनका गाना सुना। गाना बन्द होने पर महाराजा साहब ने खजांची को हुक्म दिया कि पाँच सौ रुपये और पाँच टके कच्चे ख़ाँ साहब को दे दिए जाएँ और यह कह दिया जाय कि पाँच सौ रुपये तो तुम्हारे कपड़ों और ठाठ के हैं और पाँच टके तुम्हारे गाने के।

ख़ाँ साहब ने पाँच सौ रुपये तो वापस कर दिए और पाँच टके लेकर रख लिए। सरकारी आदमी से उन्होंने कहा, "मैंने अपने गाने का इनाम ले लिया, कपड़ों के इनाम के लिए मैं नहीं आया था। इसलिए इन पाँच सौ रुपयों को वापस करता हूँ।" उसके बाद ख़ाँ साहब अपने वतन पंजाब को लौट गए। मगर इस घटना के बाद से उन्हें नींद नहीं आती थी। इनके स्वाभिमान का तक़ाज़ा था कि दिन-रात गाने की मेहनत

करें और जिस दरबार से पाँच टके पाये थे, वहीं से इज़्ज़त हासिल करें। फिर क्या था, रात-दिन गाने पर मेहनत शुरू कर दी। सब ऐशो-आराम छोड़ दिया। तीन साल की कोशिश से इनके गले में सच्चे स्वर बैठ गए और गाने में मज़ा पैदा हो गया। गले में असर आ गया। तीन साल बाद यह फिर जयपुर पहुँचे। महाराजा साहब के पास ख़बर हुई। उन्होंने इनको बुलाया और देखते ही पहचान गए। मगर इस बार तो इनका पहले जैसा ठाठ-बाट न था। गाना शुरू करने की आज्ञा मिलते ही तम्बूरे की जोड़ी मिलाई तो वह भी बड़ी सुरीली मिली और गाना शुरू होते ही रंग आने लगा। महाराजा साहब बेहद खुश हुए। उनकी हर उपज पर महाराजा साहब प्रसन्न होते और दिल से वाह-वाह निकलती। उस दिन महाराज ने अपने नियम से विपरीत दो घण्टे तक इनका गाना सुना और सुनने के बाद बोले, "मियाँ, ग़ैरत हो तो तुम्हारे जैसी हो। क्या कहने हैं तुम्हारी ग़ैरत और मेहनत के! तुमने हमको बहुत खुश किया है।" इसके साथ ही महाराज ने इनको बहुत कुछ इनाम वगैरह भी दिया।

ख़ाँ साहब ने अर्ज़ किया, "हज़ूर यह ग़ैरत आप ही ने दिखाई थी कि मैं इस दर्जे पर पहुँच सका। दूसरी बात यह है कि मुझे सरकार ही ने पहचाना। दरबार के दूसरे लोग मुझे अब तक नहीं पहचान पाए।"

(७) यह जिक्र सन् १८६० का है। रियासत भरतपुर के महाराजा साहब को संगीत विद्या का बड़ा शौक़ था। उनके दरबार में कई नामी गाने-बजाने वाले वेतन पाते थे। महाराजा साहब मदारबख़्श के गाने से बहुत खुश थे। एक बार सालगिरह के उत्सव के समय इनके गाने पर बहुत प्रसन्न होकर महाराज ने इन्हें बड़ा इनाम देना चाहा और पूछा, "ख़ाँ साहब, आपकी जो इच्छा हो वह बताइए, वह मैं आपको दूँ।" संयोगवश उस समय महाराज के हाथ पर बाज़ या ऐसी ही किस्म का कोई पक्षी बैठा हुआ था। महाराजा साहब उससे दिल बहलाया करते

थे। ख़ाँ साहब ने रियासती ज़बान में महाराज से कहा, "या चिरैया को मेरे हाथ पर बिठाय देओ।" महाराज ने तुरन्त उस पक्षी को ख़ाँ साहब के हाथ पर बिठा दिया और जो डोरी पक्षी की कमर में बँधी होती है, वह खोल कर ख़ाँ साहब के हाथ में बाँध दी। ख़ाँ साहब पक्षी को लिए खुशी-खुशी अपने घर आए तो इनके घर वाले और दोस्त सभी अफ़सोस करने लगे और इनसे बोले, "आपने भी क्या माँगा? कोई काम की चीज़ ही माँगते।"

ख़ाँ साहब ने कहा, "तुम उसकी क़द्र क्या जानो। यह चिरैया या तो महाराज के हाथ पर थी या आज मेरे हाथ पर है।"

(८) एक बार घग्गे खुदाबख़्श ख़ाँ रियासत जयपुर से छुट्टी लेकर अपने वतन आगरे में आए हुए थे। ख़ाँ साहब तबीयत के बड़े भोले और सीधे-सच्चे आदमी थे। एक दिन का ज़िक्र है कि एक नया आया हुआ पंजाबी गवैया ख़ाँ साहब के मकान पर मिलने पहुँचा और अपना बड़ा शौक़ ज़ाहिर किया। कहने लगा, "मेरी जैत राग सुनने की बड़ी इच्छा है। आपकी तारीफ़ सारे हिन्दुस्तान में है। मुझे उम्मीद है कि आप जैत राग मुझे ज़रूर सुनायेंगे।"

ख़ाँ साहब बोले, "भई जैत-वैत तो मैं जानता नहीं हूँ। हाँ, तुम चाहो तो गाना सुन सकते हो।"

वह बोला, "मैं गाना तो सुनना नहीं चाहता। मुझे आप तम्बूरा दे दीजिए।" इस बात पर ख़ाँ साहब ने उसे तम्बूरा दे दिया और वह लेकर चलता बना। इसके बाद उसने यह बात मशहूर की कि मेरी फ़रमाइश ख़ाँ साहब पूरी नहीं कर सके इसलिए मैं उनसे तम्बूरा छीन लाया।

तम्बूरा ले जाने के थोड़े ही दिन बाद ख़ाँ साहब के बड़े लड़के और कई शागिर्द घर पर आए और उन्हें सब हाल मालूम हुआ। उन्हें पता

चला कि उसने जैत की फ़रमाइश की थी जिसके बारे में ख़ाँ साहब ने अपनी असमर्थता प्रकट की और इसी बात पर वह तम्बूरा ले गया है। ख़ाँ साहब के लड़के को इस बात से बहुत बुरा लगा। उसने ख़ाँ साहब को जैत की एक अस्थाई याद दिलाई तो बोले, "अरे इसी को जैत कहते हैं ? इस राग की तो मुझे बहुत-सी अस्थाइयाँ याद हैं।"

इसके बाद फ़ौरन ही सब लोग उस पंजाबी गवैये के पास पहुँचे और उससे कहा, "तूने ऐसे बुज़ुर्ग के साथ जो सीधे-सच्चे स्वभाव के इन्सान हैं और जिन्हें गाने के सिवाय और कोई धुन ही नहीं है, बड़ी बेअदबी की है। तू जैत राग सुनना चाहता था तो एक की जगह दस चीज़ें सुनता। तुझे इन्सानियत से बैठकर बात करनी और उनकी बुज़ुर्गी का ख़याल करके मौक़ा देखकर अपनी इच्छा प्रकट करनी चाहिए थी। पर तूने तो इन सब बातों को ताक़ में रख दिया और इतनी ज़्यादती की कि तम्बूरा उठा लाया। पर इतना याद रहे कि बुज़ुर्गों की बद्दुआ अच्छी नहीं होती।"

इतना सुनते ही वह पंजाबी गवैया उठ खड़ा हुआ और तम्बूरा भी उठाकर बग़ल में दाब लिया। बोला, "आप मुझे अपने साथ ले चलें। मैं वहाँ चलकर उनके पैरों पर गिरकर माफ़ी माँगूँगा।" ख़ाँ साहब के घर पहुँच कर वह उनके पैरों पर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर माफ़ी माँगी। ख़ाँ साहब ने भी उसका अपराध क्षमा कर दिया। उसके बाद उन्होंने तम्बूरे की जोड़ी मँगवाई और मिलाने के बाद गाना शुरू किया, और जैत ही शुरू किया। ख़ाँ साहब के गाने के क्या कहने ! गाना इतना दर्द भरा था कि लोग वाह की जगह हाय करने लगे। गाना ख़त्म हुआ तो वह पंजाबी गवैया उठकर ख़ाँ साहब के पास आया और उनके पैर पकड़ कर खूब रोया और बार-बार अपनी ग़लती के लिए अफ़सोस प्रकट करके माफ़ी माँगने लगा।

(६) बादशाह अमीर तैमूरलंग ने दिल्ली जीतने के बाद बड़ा भारी

उत्सव मनाया तो गवैयों को भी बुलाया गया। मगर कोई कलावन्त नहीं मिला। बड़ी तलाश करने के बाद एक अन्धा गवैया बादशाह के सामने पेश किया गया। बादशाह इसका गाना सुनकर बहुत खुश हुए और नाम पूछा। जवाब मिला—"दौलत" ख़ाँ।

बादशाह ने हँस कर कहा, "क्या दौलत भी अन्धी होती है ?"

ख़ाँ साहब ने हँस कर जवाब दिया, "अगर अन्धी न होती तो लंगड़े के घर क्यों आती ?"

राजघरानों में संगीत

हिन्दुस्तान के ख़िलजी और तुग़लक वंश के सुल्तानों को संगीत से बहुत लगाव रहा है और इनके संगीत प्रेम की बात इतिहास में भी मौजूद है। जौनपुर के बादशाहों के शरकी वंश में सुल्तान हुसैन शरकी संगीत के बड़े पण्डित हो गए हैं। राग जौनपुरी इन्होंने ही पहले-पहल बनाया था। इस ख़ानदान के और लोग भी ऐसे ही गुणी हुए हैं।

बादशाह अकबर के अभिभावक बहराम खाँ संगीत के बड़े कलाकार थे और कलाकारों के क़द्रदान भी। उनके सुपुत्र नवाब अब्दुर्रहीम ख़ान-ख़ाना संगीत के बड़े ज़बर्दस्त जानकार और कवि थे। उनके यहाँ ईरानी और हिन्दुस्तानी मुसलमान-हिन्दू गवैये नौकर थे।

बादशाह जहाँगीर का भी संगीत कला में बड़ा दख़ल था। उसके दरबार में ऐसे-ऐसे कलाकार इकट्ठे थे कि जिसका दूसरा उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता। असल में यह संगीत की जवानी का ज़माना था। इस ज़माने में संगीत कला को भी वही स्थान मिला हुआ था जो दूसरी विद्याओं और कलाओं को। यहाँ तक कि संगीत सीखे बिना किसी शहज़ादे या रईसज़ादे को पूरी तरह शिक्षित नहीं माना जाता था। इसलिए उन दिनों दूसरी विद्याओं के साथ संगीत भी शिक्षा का ही एक अंग था और दिल्ली के बादशाह देश भर में से ढूंढ-ढूंढ कर कलाकारों को अपने दरबार में इकट्ठा किया करते थे। उसी तरह

दक्षिण में अहमदनगर, बीजापुर, बुरहानपुर और गोलकुण्डा के बादशाह गवैयों को बुलवाते और संगीत की शिक्षा दिलवाते थे। बादशाह जहाँगीर के ज़माने की एक बड़ी दिलचस्प घटना कही जाती है। बादशाह एक ख़ास क़िस्म का शिकार खेलते थे जिसका नाम 'कमरगा' था। उसक तरीक़ा यह होता था कि शिकारगाह में पहुँच कर संगीत मण्डली गाना शुरू करती थी और थोड़ी ही देर में संगीत को सुनकर हिरन गाने-बजाने वालों के आस-पास इकट्ठा हो जाते थे और उन्हें पकड़ लिया जाता था।

राजा उदयसिंह की बेटी भानमती, जिसने बाद में शाहजहाँ को जन्म दिया, जब जहाँगीर को ब्याही गई तो उसकी संगीत कला की सारे महल में धूम हुई थी। खुद बादशाह शाहजहाँ ध्रुपद के गाने में सानी नहीं रखते थे। अलाउलमुल्क तौनी जो शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने के सात साल बाद भारत आया और जिसे फाज़िल ख़ाँ का ख़िताब मिला और जो औरंगज़ेब के शासन में प्रधान मन्त्री भी बना, हिन्दुस्तानी संगीत का इतना बड़ा जानकार था कि उस समय के बड़े-बड़े उस्ताद आकर उससे संगीत सीखते थे।

ख़ानेज़माँ मीर खलील जो अमीनुद्दौला के दामाद थे, संगीत के इतने बड़े माहिर थे कि उस ज़माने के संगीतज्ञों के राग-रागनियों को लेकर होने वाले आपस के झगड़ों को मिनटों में निबटा दिया करते थे। शाहज़ादे मुराद की प्रेमिका सरसबाई भी बहुत उम्दा ख़याल गाती थी मगर ख़ुद शाहज़ादा मुराद इतना ऊँचा संगीतज्ञ था कि सरसबाई भी उसका लोहा मानती थी।

निज़ामुलमुल्क के सुपुत्र आसिफ़जहाँ शहीद संगीत के इतने प्रेमी थे कि उसे ठीक-ठीक समझने के लिए इन्होंने संस्कृत का अभ्यास किया और संगीत में बहुत जानकारी हासिल की।

हज़रत शेख़ सलीम चिश्ती के पोते नवाब इस्लाम ख़ाँ संगीत के

इतने प्रेमी और जानकार थे कि अस्सी हज़ार रुपये माहवार संगीत पर ख़र्च करते थे।

बादशाह औरंगज़ेब को भी, जब कि वह सिर्फ शाहज़ादा था, संगीत की शिक्षा दी गई थी। मगर इसका ध्यान राजनीति की तरफ़ अधिक था। इसलिए उसने अपने दरबार से संगीत को हटा दिया था। मगर उस समय के लगभग सब राजा, महाराजा, अमीर, ज़मींदार, नवाब संगीत के भक्त और प्रेमी थे। यही कारण है कि संगीत बादशाही दरबार से निकल कर इनके दरबार में फला फूला। यह बात संगीत के लिए अच्छी ही साबित हुई क्योंकि इस प्रकार संगीत जनता के अधिक समीप पहुँचा।

मालवे के सुल्तान बाज़ बहादुर संगीत के बड़े ज्ञानी थे और नायक भी थे। उनकी रानी रूपमती भी संगीत, कला और कविता में इनके साथ-साथ थी। इनकी बनाई हुई चीज़ें आज भी गाई जाती हैं।

ग्वालियर के राजा मानसिंह संगीत के बड़े जानकार और क़द्रदान थे। वह खुद भी ध्रुपद बहुत अच्छा गाते थे और रचना भी करते थे। उन्नीसवीं सदी में जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह संगीत के बहुत बड़े जानकार हुए और उन्होंने रज्जब अली ख़ाँ से बीनकारी सीखी। उनसे कुछ पहले अलवर-नरेश महाराजा शिवदान सिंह भी संगीत के बड़े प्रेमी और जानकार थे। रामपुर के नवाब क़लबे अली ख़ाँ, कासिम अली ख़ाँ और हामिद अली ख़ाँ संगीत के बड़े अच्छे जानकार और सच्चे प्रेमी हुए हैं और मौजूदा नवाब भी संगीत के बड़े विद्वान हैं तथा इनके यहाँ अब भी हिन्दुस्तान के कई मशहूर कलाकार मौजूद हैं। उन्नी-सवीं शताब्दी में टोंक के नवाब इब्राहीम ख़ाँ संगीत के जानकार और आश्रयदाता थे। उन्हीं दिनों नवाब हैदर अली ख़ाँ बहुत अच्छा गाते थे और किलसी नरेश नवाब जानी साहब भी ख़ुद सुरसिंगार बहुत अच्छा बजाते थे। मैसूर के महाराजा साहब श्री कृष्णराज वारियर संगीत विद्या के बहुत बड़े जानकार थे। उन्होंने शेषन्ना और सुब्बन्ना से रुद्र-

बीन सीखी थी। पंचगछिया नरेश महाराजा लक्ष्मीनारायण सिंह हार-मोनियम और पखावज बहुत अच्छी बजाते थे और संगीत के बड़े पारखी थे। बनैली के महाराजकुमार श्यामानन्द सिन्हा विश्वदेव चैटर्जी से ख्याल अस्थाई सीखे और बहुत सुरीला गाते थे। उन्हें संगीतज्ञों से बहुत प्रेम है और भारत के सभी संगीतज्ञों को इन्होंने अपने यहाँ सुना है तथा उनका आदर-सत्कार किया है। सारे बिहार राज्य में संगीत के मामले में इनसे ज़्यादा समझदार और क़द्रदान दूसरा रईस नहीं।

इन लोगों के अलावा बहुत-सी रियासतों के राजा और रईस संगीत के बड़े जानकार और प्रेमी हुए हैं। उनमें से कुछ स्थानों के नाम ये हैं: लूनावाड़ा, मुरसान, ग्वालियर, बड़ौदा, आवागढ़, हैदराबाद, दुजाना, किसनगढ़, बूँदी, उनियारा, जोधपुर, जूनागढ़, भावनगर, पटियाला, राज-कोट, नाभा, काश्मीर, मिरज, इचलकरंजी, कोल्हापुर, गढ़वाल, सुघौल, जमखंडी, भोर, इन्दौर, देवास, धार, भोपाल, दरभंगा, मुर्शिदाबाद, सुल्तानगंज, महिषादल, पालमपुर, राधनपुर, धर्मपुर, बाँसदा इत्यादि।

कुछ प्रारम्भिक तथा अकबरकालीन प्रसिद्ध संगीतज्ञ

अमीर ख़ुसरो

इनका असली नाम अबुल हसन था। इनके पिता अमीर सैफ़ुद्दीन महमूद बलख के अमीर थे, और चंगेज़ खाँ का हमला शुरू होने के दिनों में हिन्दुस्तान आकर बसे और यहाँ के उमराव में गिने जाने लगे। अमीर ख़ुसरो मोमिनाबाद में पैदा हुए थे जिसे उस जमाने में बेताली या बतियाली कहा जाता था। इन्हें सबसे पहले फ़ारसी की शिक्षा दी गई। उसके बाद उन्होंने हिन्दी में भी एक पण्डित का दर्जा हासिल किया। तभी यह संगीत की तरफ़ भी झुके और उसमें तो इन्होंने कमाल ही पैदा कर दिखाया। इनका स्वभाव बड़ा कवि-सुलभ था और नई-नई उपज और सूझ इनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। अमीर ख़ुसरो ने हिन्दुस्तानी संगीत में कई नई चीज़ें जोड़ीं। इनके बनाए हुए राग सरपर्दा, जीलफ, एमन, गारा, बहार अब तक सबको पसन्द आते हैं। वाद्यों में इनकी सबसे बड़ी ईजाद है सितार। इस साज़ की प्रभावोत्पादकता और प्रसिद्धि के बारे में कुछ भी कहना आवश्यक नहीं; हिन्दुस्तान के कोने-कोने में उसका प्रचार इस बात का सबसे बड़ा सबूत है। बुज़ुर्गों से सुना है कि तबला भी इन्हीं की ईजाद था। इनसे पहले केवल मृदंग बजाया जाता था। इन्होंने ही मृदंग को देखकर तबला-बायाँ बनाया, यानी उसके दो हिस्से कर दिए, एक तबला और दूसरा बायाँ। इसके बाज़ के बोल भी मृदंग की तर्ज़ पर ही ढाले गए, पर इन बोलों में कुछ नरमी पैदा की गई। इनके बनाए हुए साज़ हिन्दुस्तान भर में पसन्द हुए और प्रचलित हुए। गाने की चीज़ों में तराना, रुबाई आदि

भी इन्हीं की यादगार हैं । सुना है कि कुछ और भी चीज़ें इन्होंने बनाई थीं, जैसे क़ौल, क़लबाना, नक्श, गुल, हवा, गोशा, शोशा इत्यादि । मगर ये सब चीज़ें अब सुनने में नहीं आतीं । इनका बादशाह ग़यासुद्दीन तुग़लक के ज़माने में सन् ७२५ हिजरी में स्वर्गवास हुआ और यह दिल्ली में हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह में दफ़नाए गए ।

ख़्वाजा बहाउद्दीन नक्शबन्दी रहमतुल्लाह अलैह मुलतानी

यह संगीत विद्या के बड़े भारी जानकार थे । मुलतानी राग इन्हीं का ईजाद किया हुआ है जो हिन्दुस्तान भर में गाया और दिलचस्पी से सुना जाता है । इनकी दरगाह मुलतान में है ।

तानसेन

तानसेन गौड़ ब्राह्मण थे। उनकी बानी गौड़ी थी जो बाद में गोबरहारी मशहूर हो गई । इनके पिता का नाम मकरन्द पांडे था । सुना है कि रियासत ग्वालियर के किसी गाँव में इनका जन्म हुआ । जब होश सँभाला तो ग्वालियर आये और हज़रत मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी से अर्ज़ किया कि मुझे गायन कला बहुत पसन्द है । हज़रत ने कहा, 'जा, वृन्दावन में तुझे उस्ताद मिलेगा ।' यह हुक्म पाते ही इन्होंने वृन्दावन का रास्ता लिया जहाँ हरिदास स्वामी जैसे महान् कलाकार मौजूद थे । तानसेन इनके पैरों पर जा गिरे और अपने हृदय की अभिलाषा प्रकट की । स्वामी जी ने बहुत प्रेम से इन्हें सिखाना शुरू किया और बरसों इनको गायन कला की शिक्षा देते रहे । तानसेन गुरु जी की सेवा से कभी न थकते थे और सीखने तथा मेहनत करने में जी तोड़कर कोशिश करते थे । शिक्षा पूरी करने के बाद यह रीवाँ के महाराजा राम के यहाँ जाकर रहने लगे । धीरे-धीरे बादशाह अकबर ने इनकी कला की तारीफ़ सुनी और इन्हें रीवाँ से दिल्ली बुलवा भेजा । जब बादशाह का हुक्म रीवाँ नरेश के पास पहुँचा तो उन्होंने तानसेन को बड़े सम्मान के साथ बिदा किया । कहा जाता है कि जिस पालकी पर सवार होकर तानसेन

दिल्ली के लिए चले उसमें बहुत दूर तक ख़ुद रीवाँ नरेश ने कन्धा दिया था। दिल्ली में बादशाह अकबर इनके गाने से बहुत ख़ुश हुए और इनको अपने दरबार के नवरत्नों में स्थान दिया। अबुलफ़ज़ल ने अपनी पुस्तक 'आइने अकबरी' में इनकी बहुत तारीफ़ की है और यह भी लिखा है कि एक हज़ार साल में ऐसा गवैया पैदा नहीं हुआ। तानसेन ने ध्रुपद भी बहुत-से बनाए थे और कुछ घरानों में इनकी चीज़ें आज भी सुनने में आती हैं।

अबुलफ़ज़ल की 'आइने अकबरी' में और भी बहुत से गायकों का ज़िक्र आता है। पर उनमें से एक-दो को छोड़कर किसी दूसरे के बारे में नाम से अधिक कोई जानकारी नहीं मिलती। उनमें से कुछेक नाम हम यहाँ लिख रहे हैं :

गायक—सुरज्ञान ख़ाँ, मियाँ चंद, मोहम्मद ख़ाँ, बीर मंदल ख़ाँ, दाऊद ख़ाँ, सईद ख़ाँ, मियाँ लाल, तानसेन के सुपुत्र तानतरंग ख़ाँ, मुल्ला इशाक धाड़ी और उनके भाई रहमत उल्ला, नायक चिरचू, सुल्तान हाफ़िज़ हुसैन मशहैदी, रंगसेन, मीर अब्दुल्ला, मीरज़ादा ख़ुरासानी।

वादक—कासिम उर्फ कोहबर (रबाब के आविष्कारक), शाहाब ख़ाँ (बीनकार), प्रवीन ख़ाँ (बीनकार), दोस्त मुहम्मद मशहैदी (बाँसुरी-वादक), शाह मुहम्मद (शहनाईवादक), मीर अब्दुल्ला (क़ानूनवादक), दरदी युसूफ (तम्बूरावादक), सुल्तान हाशिद मशहैदी (तम्बूरावादक), मुहम्मद अमीर (तम्बूरावादक), मुहम्मद हुसैन (तम्बूरावादक), काशवेग कुवचाक-कुम्बरी, शेख़ डावन डाढी, मीर सईद अली मशहैदी आदि।

स्वामी हरिदास

यह हिन्दुस्तान के बड़े उच्चकोटि के कलाकारों में से हुए हैं। यह अधिकतर वृन्दावन में ही रहा करते थे। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध गायक तानसेन इन्हीं के शिष्य थे। एक बार जब बादशाह अकबर तान-

सेन के गाने से बहुत ही ज़्यादा खुश हुए और बहुत तारीफ़ करने लगे तो तानसेन ने हाथ जोड़कर अर्ज़ किया, "अगर बादशाह सलामत मेरे गुरू जी का गाना सुनें तो उन्हें मालूम होगा कि संगीत क्या चीज़ है।"

बादशाह अकबर को यह सुनकर बड़ी उत्सुकता पैदा हुई। उन्होंने फ़ौरन हुक्म दिया कि उन्हें जल्दी से जल्दी बुलवाया जाय।

तानसेन ने फिर अर्ज़ किया, "वह तो त्यागी पुरुष हैं। सारी दुनिया से नाता छोड़ चुके हैं तथा वृन्दावन के एक मठ में भजन किया करते हैं। अक्सर वह जंगलों में निकल जाते हैं और वहीं विश्राम करते हैं।"

यह सुनकर बादशाह खुद वृन्दावन जाने पर आमादा हो गए और तानसेन से कहा कि किसी दिन वृन्दावन चलेंगे और किसी भी तरह उनका गाना ज़रूर सुनेंगे। एक दिन समय निकाल कर बादशाह तानसेन के साथ वृन्दावन जा पहुँचे। वहाँ पता चला कि हरिदास स्वामी कुछ दूर पर एक जंगल के अन्दर रहते हैं। तलाश करते-करते तानसेन और बादशाह अकबर दोनों स्वामी जी के पास पहुँच गए। स्वामी जी अपने शिष्य को देखकर बहुत खुश हुए। बादशाह अकबर अपना भेस बदले हुए थे। तानसेन ने इन्हें अपना शिष्य बताया। थोड़ी देर बाद ही तानसेन ने गुरू जी से प्रार्थना की, "बहुत दिन से आपका मधुर संगीत नहीं सुना। आज यदि कृपा करें तो हमारे कान पवित्र हो जाएँ।"

गुरु जी की अनुमति पाकर तानसेन ने तम्बूरा उठाकर मिलाया और गुरु जी के पास बैठकर छेड़ने लगे। स्वामी जी ने गाना शुरू किया और इस ढंग से अलाप करने लगे कि तानसेन और बादशाह दोनों पर जादू का-सा असर पड़ा। जैसे-जैसे गुरू जी बढ़त करते गये, इन दोनों की हालत बदलती गई। एक तरह की बेहोशी-सी होने लगी। नौबत यहाँ तक पहुँची कि एक को दूसरे की सुध न रही। थोड़ी देर बाद स्वामी जी गाना बन्द करके जंगल में किसी तरफ़ को चले गए। जब इन दोनों को होश आया तो देखा कि न गाना ही है, न स्वामी जी ही। दोनों

दिल्ली वापस लौट आये । बादशाह अकबर ने अनुभव किया कि सचमुच संगीत का कोई पार नहीं है ।

नायक बैजू और नायक गोपाल

नायक बैजू अकबर के दरबार का बहुत ही मशहूर कलावन्त था । उसी ज़माने में एक बार मद्रास का नायक गोपाल दिल्ली पहुँचा । कहा जाता है कि इनके साथ इनके एक हज़ार शिष्य भी थे जो इनके सिंहासन को कन्धों पर उठाये हुए चलते थे । नायक गोपाल को अपने संगीत-शास्त्र के ज्ञान का बड़ा घमण्ड था । बादशाह अकबर की आज्ञा से नायक बैजू और नायक गोपाल का शास्त्रार्थ हुआ । कई दिनों तक दोनों कलाकार एक-दूसरे को अपनी विद्या दिखाते रहे और चर्चा करते रहे । आख़िर नायक बैजू ने एक ध्रुपद रच कर और उसे राग खट में बिठाकर नायक गोपाल को सुनाया । यह बहुत ही मशहूर ध्रुपद है जिसे झपताल में बिठाया गया है । ध्रुपद के बोल इस प्रकार हैं :

स्थायी

विद्याधर गुनियन सों कहा अरिये, कछु गुन चर्चा की लराई लरिये ।

अन्तरा

जो कछु आवे तो गाय सुनाये नहीं तो गुनियन के चरन परिये ।

संचारी

मेरो तेरो न्याव निरंजन के आगे चन्दन बबूल को एक ठौर धरिये ।

आभोग

ज्ञान के समझावे को बहु बेख करिये, कहै बैजू नायक तानन तिरिये ।

सुजान ख़ाँ

इनका असली नाम सुजानसिंह था । बाद में यह सुजान ख़ाँ के नाम से मशहूर हुए । इनकी बानी नौहारी कहलाती है । यह संगीत विद्या के बड़े भारी विद्वान् और बड़े प्रभावशाली गायक हुए हैं । इनके गाने में

बड़ा असर था और यह अकबरी दरबार के बड़े अच्छे गवैयों में माने जाते थे। यह कवि भी थे और इनकी कविता बहुत लोकप्रिय थी। इनके बनाए हुए ध्रुपद ख़ानदानी गवैये अब भी गाते हैं। इनके घराने के लोग हिन्दुस्तान में बड़े प्रसिद्ध हुए जिनके बारे में आगे लिखा जाएगा। इनके बारे में ही यह सुना है कि बादशाह के हुक्म से एक बार इन्होंने दीपक राग गाया था। गाने के पहले इन्होंने एक हौज़ पानी से ऊपर तक भरवा दिया और उसके चारों तरफ़ दीपक रखवा दिए। इसके बाद हौज़ के बीच में यह ख़ुद बैठ गए और अपना गाना शुरू किया। इनके गाने के असर से धीरे-धीरे पानी गरम होने लगा और चारों तरफ़ के दीपक जल उठे। गाना ख़त्म करके ख़ाँ साहब हौज़ से बाहर निकल आए।

यह बड़े धार्मिक स्वभाव के व्यक्ति थे। एक बार यह बादशाह से आज्ञा लेकर हज करने के लिए मक्का गए और फिर नबी की ज़ियारत के लिए मदीना भी पहुँचे। वहाँ इन्होंने भक्ति से प्रेरित होकर एक ध्रुपद लिखा जो इस प्रकार है :

ध्रुपद राग जोग—चौताल

स्थायी

प्रथम मन अल्लाह जिन रचो नूरे पाक नबीजी पै रख ईमान ऐ रे सुजान।

अन्तरा

वलीअन मन शाहे मरदान ताहिर मन सैय्यदा इमाम मन हसनैनदीन मन कलमा किताब मन कुरान।

बाबा रामदास

अकबर के दरबार के अच्छे गवैयों में एक बाबा रामदास भी थे और यह बहुत प्रसिद्ध थे। रहने वाले यह ग्वालियर के थे, मगर दिल्ली आने के बाद फिर कभी बाहर नहीं गये। इनकी तबीयत में बड़ी ज़िद्दत थी। राग रामदासी मल्हार इन्हीं का बनाया हुआ है जिसे बड़े-बड़े

कलाकार आज तक गाते हैं। इस राग को रामदास जी ने कुछ इस तरह से रचा है कि मुश्किल होते हुए भी इसके आनन्द में कोई फ़र्क़ नहीं आता। इसीलिये यह राग मुश्किल रागों में बहुत पुरअसर माना गया है।

सूरदास

सूरदास बाबा रामदास के बेटे थे और संगीत विद्या के बड़े भारी पंडित थे। राग सूरदासी मल्हार इन्हीं का बनाया हुआ है। बहुत सम्भव है कि इन्होंने इसके अतिरिक्त और भी राग बनाये हों, मगर उनका कोई पता नहीं चलता। सूरदासी मल्हार बड़ा ही प्रभावपूर्ण राग है।

विलास ख़ाँ

अकबरी दरबार के प्रसिद्ध गाने वालों में विलास ख़ाँ भी थे और होली, ध्रुपद के बड़े माने हुए उस्ताद थे। कुछ किताबों से ऐसा भी अनुमान होता है कि यह तानसेन के पुत्र थे। विलासखानी तोड़ी इन्हीं की बनाई हुई है।

अन्य गवैये

दिल्ली के नामी गवैयों में एक लाल ख़ाँ भी थे। आलाप, ध्रुपद और धमार गाने में इनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। यह विलास ख़ाँ के दामाद थे और अकबर के राज्यकाल के अन्तिम दिनों में हुए थे।

इनके अतिरिक्त हाजी सुजान ख़ाँ के चारों बेटे भी अच्छे गवैये थे। उनके नाम हैं: अलखदास, मलूकदास, खलकदास और लोंगदास। इन लोगों ने संगीत की शिक्षा अपने पिता से पाई थी और ध्रुपद, धमार तथा आलाप बहुत अच्छा गाते थे। इन लोगों की बनाई हुई कुछ चीज़ें भी कुछेक घरानों में सुनाई पड़ती हैं। इनके अतिरिक्त अकबर के राज्यकाल के अन्य प्रसिद्ध गाने वालों में बृजचन्द, श्रीचन्द और बाबा

मदनराय बहुत प्रसिद्ध थे और अपने ज़माने में बड़े ही सुरीले और अच्छे गायक माने जाते थे। इसी प्रकार लाहौर के रहनेवाले सादुल्ला ख़ाँ की भी बड़ी प्रसिद्धि थी।

बादशाह शाहजहाँ के ज़माने में कुछ नामी कलावन्तों में कान ख़ाँ और डागुर सलैमचन्द और शेख मुहम्मद अच्छे गवैये थे और बड़े प्रसिद्ध थे। बहाउद्दीन रबाब और बीन बजाते थे और उन्हें होली, ध्रुपद और तराने वग़ैरह की बहुत अच्छी तालीम थी। इन्होंने ख़ुद भी इस तरह की कुछ चीज़ों की रचना की थी। विशेषकर ध्रुपद और तराना बाँधने में ये प्रसिद्ध हुए। यह भी सुना गया है कि भीमश्री और संकत वग़ैरह रागों के जन्मदाता यही थे।

सदारंग

संगीत की दुनिया में जो अगला नाम बहुत ही मशहूर हुआ, वह सदारंग का है। इनका असली नाम नियामत ख़ाँ था और यह बादशाह मुहम्मदशाह के ज़माने के बड़े ही प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। नियामत ख़ाँ लाल ख़ाँ के सुपुत्र थे और यह मियाँ तानसेन के घराने के बड़े ही प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए हैं। भारतीय संगीत को इनकी सबसे बड़ी देन 'अस्थायी' या ख़याल गायकी की है। इनके जमाने तक हिन्दुस्तान में ध्रुपद, होरी, छन्द, प्रबन्ध तथा इसी प्रकार की दूसरी पुरानी चीज़ें गाई जाती थीं। किन्तु 'अस्थायी' या ख़याल ने इन तमाम चीज़ों से ज्यादा लोकप्रियता प्राप्त की।

इनकी रची हुई 'अस्थायी' की विशेषता यह है कि उसमें ध्रुपद और धमार का पूरा-पूरा सौन्दर्य मौजूद है। अन्तर सिर्फ इतना है कि चार हिस्सों की बजाय सिर्फ दो हिस्से, स्थायी और अन्तरा, क़ायम किए गए हैं। साथ ही 'अस्थायी' की गायकी की तरकीब भी इन्होंने बिल्कुल निराली ही पैदा की। इसमें स्थायी-अन्तरा ख़त्म करने के बाद ही आकार, इकार और उकार में रागों का स्वरूप दिखाना शुरू किया।

चीज़ के बोलों में भी आकार वगैरह का घटाने-बढ़ाने और खूबसूरती के साथ चीज़ के सम पर आने की पद्धति शुरू की। राग के किस-किस स्वर पर ठहरना और सुन्दर तानें पैदा करना, टीप के स्वर पर ज़्यादा से ज़्यादा ठहरना आदि नए ढंग प्रचलित किए। यही तमाम चीज़े 'विलम्पत' में अदा करने के बाद मध्य लय और फिर द्रुत लय में भी पूरी तरह प्रकट करने लगे। सदारंग ने 'अस्थायी' में ध्रुपद और होरी में से बोल-तानें लेकर मिलाईं जिससे इसका अन्दाज़ और भी शानदार हो गया। यही कारण है कि यह नई गायन पद्धति इतनी लोकप्रिय हुई और बहुत से घरानों में 'अस्थायी' या ख़याल गाने का शौक़ पैदा हुआ। बहुत-से गवैयों ने इसको अच्छी तरह से सीखा और धीरे-धीरे एक ऐसा ज़माना आ गया कि होरी और ध्रुपद गाने वाले कम हो गये और 'अस्थायी' या ख़याल गाने वाले हर तरफ़ नज़र आने लगे।

शाह सदारंग की यह ईजाद संगीत की दुनिया की कोई साधारण घटना न थी। यह भारतीय संगीत की परम्परा में एक बड़े भारी विकास का चरण था। यही कारण था कि समूचे संगीत संसार ने इसको बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा और यह लोगों के मन को भा गया। सदारंग के बाद अन्य प्रतिभावान संगीतकारों ने इसमें थोड़ा-बहुत परि-वर्तन भी किया जिनमें बड़े मुहम्मद ख़ाँ का नाम सबसे अग्रणी है।

शाह सदारंग ने स्वयं भी बहुत-सी चीज़ें ब्रजभाषा में लिखी थीं और अपने शागिर्दों को सिखायी थीं। बाद में इनको इस बात का भी ध्यान हुआ कि दिल्ली के आस-पास के प्रदेशों की भाषा में भी, जैसे अवधी, पंजाबी, राजस्थानी आदि में भी, कुछ 'अस्थाइयाँ' बनाना उचित होगा और सचमुच ही उन्होंने इन सब बोलियों में अच्छी-अच्छी 'अस्थाइयाँ' बनाईं और अपने शिष्यों को सिखाईं। उस ज़माने में फ़ारसी का भी रिवाज़ बहुत काफ़ी था। इसलिये इन्होंने फ़ारसी ज़बान से भी काम लिया।

सदारंग ने अपनी 'अस्थाइयों' और ख़यालों को हर तरह की राग-रागिनियों में और प्रचलित तालों में बिठाया है। संगीत की इस नई पद्धति को शुरू हुए लगभग ढाई सौ साल बीत गए मगर ख़याल और इसकी गायकी आज भी उतनी ही लोकप्रिय है।

सदारंग ने 'अस्थायी' की ईजाद क्यों की, इस प्रश्न का उत्तर देना आसान नहीं है। एक ख़ानदानी गवैये से मैंने इसके बारे में सुना है कि एक बार बादशाह ने सदारंग को शाही हरम की कुछ लड़कियों को गाना सिखाने का हुक्म दिया। उस समय सदारंग ने दिल में ख़याल किया कि ध्रुपद के चार हिस्से हैं और वह बड़ी चीज़ है। क्यों न कोई दो हिस्सों की चीज़ बनाकर इन लड़कियों को सिखाई जाय ? यह सोचकर उन्होंने सिर्फ स्थायी और अन्तरा उन्हें बताना शुरू किया। धीरे-धीरे इस चीज़ में राग की बढ़त भी शुरू हुई और यह बादशाह को बहुत पसन्द आयी। इसके बाद तो इसकी लोकप्रियता के फलस्वरूप इसमें तरह-तरह की खूबियाँ पैदा की गईं और इसका प्रचार दिनोंदिन बढ़ता गया।

सुनने में आया है कि 'अस्थायी' ईजाद करने की दूसरी वजह यह थी कि शाह सदारंग और उनके भाई अथवा किसी अन्य घनिष्ठ व्यक्ति से आपस में वैमनस्य हो गया था और इसका कारण यह था कि वह सज्जन शाह सदारंग के गाने पर एतराज़ किया करते थे। एतराज़ उनका यह था कि सदारंग को बड़े-बड़े ध्रुपद तो याद हैं ही नहीं, बल्कि बड़े-बड़े ध्रुपदों की तो उन्हें हवा तक नहीं लगी। अक्सर आपस में इसी प्रकार की छेड़छाड़ होती रहती थी। इस छेड़छाड़ के सिलसिले में सदारंग को 'अस्थायी' या ख़याल ईजाद करने का विचार सूझा और इन्होंने उन सज्जन से कहा, "अब मैं एक ऐसी चीज़ की रचना करूँगा जिसे सारी दुनिया पसन्द करेगी। उसमें राग-रागिनियों का और लय का तो सारा अन्दाज़ होगा ही, साथ ही उसमें कुछ ऐसी बातें भी होंगी जिनसे

गाने में एक अनोखापन पैदा हो जायगा जो संगीत की दुनिया के लिए एकदम नया होगा।" इसी के बाद सदारंग ने प्रचलित रागों में 'अस्थायी' या ख़याल की रचना की। लय के लिए उन्होंने ध्रुपद का ताल छोड़ दिया, यानी मृदंग में बजाये जाने वाले ठेकों से काम नहीं लिया और तबले-बायें पर बजने वाले मुलायम ठेकों में ये चीज़ें बिठाईं।

इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि सदारंग संगीत के क्षेत्र में आज तक अपना सानी नहीं रखते और इनकी रची हुई यह नई संगीत पद्धति हमेशा जीवित और लोकप्रिय रहेगी।

अदारंग

शाह सदारंग के बेटे मियाँ अदारंग भी संगीत के बड़े भारी पण्डित और कलाकार हुए हैं। अपने पिता के यह सबसे श्रेष्ठ शिष्य थे। उच्च-कोटि के गायक होने के अलावा यह कवि भी बहुत अच्छे थे और इनकी बनाई हुई चीज़ें आम तौर पर सारे हिन्दुस्तान में गाई जाती हैं। उदाहरण के तौर पर इनकी रची हुई एक छोटी-सी चीज़ के बोल यहाँ दिये जाते हैं :

ख़याल राग देसी—तीन ताल

स्थायी

साँची कहत है अदारंग यह नदी नाव संजोग।

अन्तरा

कौन किसी के आवे जावे, दाना पानी किस्मत लावे, यही कहत सब लोग।

मनरंग

शाह सदारंग के शिष्यों में मियाँ मनरंग का नाम भी बहुत ही ऊँचा और उल्लेखनीय है। प्रभावपूर्ण गाने के साथ-साथ इनकी उच्च कोटि की कविता ने भी उन्हें बहुत प्रसिद्ध बनाया है। इनके रचे हुए ख़याल,

अस्थाइयाँ वगैरह बहुत ही प्रसिद्ध हैं जो अपनी सुन्दरता और बन्दिश में बेजोड़ हैं। इसीलिए इनके रचे हुए गीत हिन्दुस्तान भर में बहुत ही लोकप्रिय हुए और लगभग सभी ख़ानदानों में ये चीज़ें अभी तक प्रचलित हैं। उचित तो यह होता कि इनकी दस-बीस अस्थाइयाँ इस पुस्तक में दी जातीं, मगर इनकी रचनाएँ साधारणतः सही-सही ही गाई जाती हैं। इसलिए सिर्फ एक ही चीज़ नमूने के तौर पर पेश की जा रही है :

राग बरवा—ताल तिलवाड़ा

स्थायी

ए री मैको नाहि परत चैन, तरपत हूं मैं परी।

अन्तरा

मनरँग पिया अजहूँ नहिं आये अँसुवन लागि झरी।

अन्य संगीतज्ञ

ग्वालियर के राजा मानसिंह के दरबार में भी बहुत से प्रसिद्ध कलावन्त मौजूद थे जिनमें नायक भिन्नू, नायक मच्छू और नायक बख़्शू का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अबुलफज़ल ने अपनी पुस्तक 'आईने अकबरी' में भी इनकी प्रशंसा की है। राजा मानसिंह की मृत्यु के बाद गुजरात के सुल्तान महमूद ने इन्हें अपने पास बुला लिया और अपने दरबारी गवैयों में इनको इज़्ज़त दी। ये लोग ध्रुपद और होरी बहुत अच्छा गाते थे और आलाप पर भी इनका पूरा-पूरा अधिकार था।

मुग़ल वंश के अन्तिम बादशाह बहादुरशाह के दरबार में भी बहुत से ऊँचे दर्जे के गवैये और बजाने वाले मौजूद थे। उनमें मिर्ज़ा काले, मिर्ज़ा चिड़िया, मिर्ज़ा गौहर, मिर्ज़ा शब्बू और फ़ीरोज़शाह का नाम लिया जा सकता है। बहादुरशाह के ज़माने में ख्वाजा जान और ख्वाजा मान नाम के दो संगीतज्ञों का भी उल्लेख मिलता है। मुग़ल घराने के

अहमद अली ख़ाँ

कुछ शाहज़ादों को भी संगीत का शौक़ था और उस घराने के कुछ लोग तो आज तक संगीत में दिलचस्पी रखते हैं। इनमें से कुछेक गाते हैं, कुछ लोग सितार बजाते हैं, कुछ लोग तबला बजाते हैं। मिर्ज़ा सुरैया के सुपुत्र को मैंने ख़ुद दिल्ली में गाते सुना है। उनकी आवाज़ बहुत सुरीली और दर्दभरी है और उन्हें बहुत-से रागों में स्थायी-अन्तरा याद हैं जिन्हें अच्छी तरह से गा सकते हैं। यह दिल्ली वाले चाँद ख़ाँ के शागिर्द हैं।

तानसेन की सन्तान और उनकी शिष्य-परम्परा

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय संगीत की श्रेष्ठतम परम्परा तानसेन और उनके शिष्यों के नाम के साथ जुड़ी हुई है। इस परम्परा में शुरू से अब तक बड़े-बड़े गाने-बजाने वाले पैदा होते रहे हैं। उनमें कुछेक का जिक्र यहाँ किया जाता है।

नौबत ख़ाँ

यह तानसेन के दामाद थे और बीन बजाने में बड़े ही निपुण थे। शाही दरबार में भी इनका बहुत ही अधिक सम्मान होता था। इनके बाद इनकी सन्तान में भी संगीत विद्या का पूरा-पूरा प्रचार रहा और इनके घराने के लोग अब तक कुछेक रियासतों में पाये जाते हैं। इनकी वंश-परम्परा के कुछेक नाम इस प्रकार हैं : शेर ख़ां, हुसैन ख़ाँ, असद ख़ाँ, लाल ख़ाँ, बेनज़ीर ख़ाँ, असद ख़ाँ सानी; लाल ख़ाँ सानी, ख़ुशहाल ख़ाँ।

इनमें से अधिकाँश के बारे में कोई जानकारी हमको नहीं मिलती। ख़ुशहाल ख़ाँ के बारे में सिर्फ़ इतना पता चलता है कि वह बहुत ही उच्च कोटि के विद्वान् थे। संगीत विद्या पर इन्होंने कोई एक पुस्तक भी लिखी थी, मगर वह अब तक देखने में नहीं आई।

इसी घराने में जीवनशाह के सुपुत्र छोटे नौबत ख़ाँ भी हुए हैं। इनका उपनाम था निर्मलशाह। हिन्दुस्तान में यह अपने इस उपनाम से ही मशहूर हुए। यह बीन अच्छी बजाते थे और इनके क़ायम किए हुए बीन के क़ायदों को हिन्दुस्तान के सभी बीनकारों ने माना और उनका अनुसरण किया। सम्भवतः यह रामपुर दरबार में थे।

इसी तरह से रामपुर के उमराव ख़ाँ खण्डारे और उनके सुपुत्र रहीम ख़ाँ तथा अमीर ख़ाँ तानसेन के घराने में बहुत ही प्रसिद्ध कलाकार हुए हैं। ये तीनों ही बहुत ऊँचे दर्जे के बीनकार थे और ध्रुपद पर भी उनका अच्छा अधिकार था। इन तीनों का नाम भी सारे हिन्दुस्तान में हुआ। विशेष कर अमीर ख़ाँ तो बहुत ही प्रसिद्ध हुए। ये रामपुर के नवाब क़ल्बे अली ख़ाँ के दरबार के विशेष संगीतज्ञ थे और इसमें कोई सन्देह नहीं कि बीनकारी की तमाम ख़ूबियों पर उनको पूरा-पूरा अधिकार था।

वज़ीर ख़ाँ

इन्हीं अमीर ख़ाँ के बेटे वज़ीर ख़ाँ भी तानसेन के घराने के बड़े प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए हैं। इन्होंने अपने पिता से संगीत की बहुत अच्छी शिक्षा प्राप्त की थी। ख़ानदान के सब ध्रुपद इन्हें याद थे और बीन के भी सारे क़ायदे इन्होंने सीखे थे। इनके बीन बजाने की हिन्दुस्तान भर में चर्चा थी। वज़ीर ख़ाँ आम जलसों में बीन बजाना पसन्द नहीं करते थे, बल्कि ख़ास-ख़ास लोगों को छोड़ कर और किसी को अपना काम सुनाना इन्हें स्वीकार न था। शायद इन्हें यह डर था कि सुनकर कोई दूसरा इनकी विद्या को उड़ा न ले। जो हो, इनके उच्च कोटि के कलाकार होने में किसी तरह का भी सन्देह नहीं है। यह रामपुर के नवाब हामिद अली ख़ाँ के उस्ताद थे और पण्डित भातखण्डे के भी। सन् १९२० में रामपुर में ही इनका देहान्त हुआ। आजकल इनके पोते दबीर ख़ाँ कलकत्ते में रहते हैं और इन्हें भी ध्रुपद, आलाप और बीन की तालीम मिली है। कलकत्ते में दूसरे लोग भी इनसे संगीत की शिक्षा ले रहे हैं।

सेनिए

इन लोगों के अतिरिक्त तानसेन के घराने से सम्बन्ध रखने वाले और भी कलाकार हुए हैं जो सेनिए कहलाते हैं। इनमें जाफ़र ख़ाँ और

प्यार ख़ाँ भी हुए हैं। सुना है कि ये दोनों बहादुर हुसैन ख़ाँ के क़रीब के रिश्तेदार थे। ये लोग लखनऊ के रहने वाले थे और शाह आलम इनकी बहुत क़द्र करते थे। ये लोग रबाब बजाते थे और उसमें बीन का पूरा असर पैदा करके दिखाते थे। इनके जैसे रबाब बजाने वाले बाद में बहुत कम हुए।

मसीत ख़ाँ

इसी तरह सेनियों में एक उस्ताद मसीत ख़ाँ हुए हैं जो सितार के बड़े भारी जानकार थे। इनकी शैली अपने ढंग की अनोखी थी और तभी से इनके बाज का नाम मसीतख़ानी बाज पड़ा। यह बहुत ही मुश्किल पेचदार कठिन बाज बजाते थे।

अमरत हुसैन

अमरत हुसैन उर्फ़ इमरतसेन नामक एक सितारिये तानसेन के ही घराने में जयपुर में हुए हैं। यह महाराजा सवाई रामसिंह के दरबार में नौकर थे और महाराजा ने उचित वेतन के अलावा इन्हें एक गाँव की जागीर दी थी और सवारी के लिए पालकी दे रखी थी। यह सन् १८८० में जयपुर में ही दिवंगत हुए। इनके सितार बजाने की तारीफ़ सब लोगों से सुनी गई है। मसीतखानी बाज इनसे खूब अदा होता था और लयदारी में तो इनका कोई जोड़ नहीं था।

आलम हुसैन

तानसेन के घराने में आलम हुसैन नामक एक बड़े ऊँचे गवैये और संगीत के विद्वान् हुए हैं। यह भी महाराजा रामसिंह के दरबारी गवैये थे। कहा जाता है कि इन्होंने कुछ चीज़ों की रचना भी की थी पर आज वे हमें प्राप्त नहीं हैं। जयपुर दरबार में ही एक बीनकार लालसेन भी थे। यह भी तानसेन के ख़ानदान में ही पैदा हुए।

अमीर ख़ाँ

सेनियों के घराने में जो एक बहुत बड़ा नाम है वह अमीर ख़ाँ का है। इस घराने में इन्हें बहुत ही अधिक ख्याति मिली। यह सितार बजाते थे और इनका बाज बहुत ही प्रभावपूर्ण था। इनके गत-तोड़ों में बोल-बाँट की तरकीब, लय की काट-तराश बहुत ही ऊँचे दर्जे की होती थी। जोड़ बजाते समय बहुत बार यह महफ़िल को रुला देते थे और फिर लयकारी से सबकी तबीयत खुश करते थे। यह ग्वालियर के महाराज माधवराव सिंधिया के उस्ताद थे और उम्र भर ग्वालियर में ही रहे। यह हर साल अपने मित्रों और सम्बन्धियों से मिलने के लिये जयपुर जाया करते और वहाँ महीने दो महीने ठहरते। यह बीनकार भी बहुत ऊँचे दर्जे के थे। सन् १९१३ में जयपुर में इनका स्वर्गवास हुआ।

हफ़ीज़ ख़ाँ

यह तानसेन के घराने के मम्मू ख़ाँ के बेटे थे और सितार बजाते थे। मसीतख़ानी बाज पर इन्हें बहुत अच्छा अधिकार था और लय की काट-तराश इनसे बहुत निभती थी। इनकी मिज़राबें बड़ी जोरदार होती थीं और यह बोल बड़े ख़ूबसूरत काटते थे। हिन्दुस्तान में दूर-दूर तक इनकी तारीफ़ हुई और टोंक, ग्वालियर, अलवर, जयपुर, रामपुर आदि रियासतों से इन्हें अच्छे इनाम मिले थे। सन् १९०९ में इनका देहान्त हुआ।

निहालसेन

सेनियों के ख़ानदान में निहालसेन एक बड़े ही प्रतिभावान संगीतज्ञ हुए हैं। इन्हें इमरतसेन ने अपना दत्तक पुत्र मानकर और तालीम देकर क़ाबिल बनाया था। यह सितार बजाते थे और इनके बाज में बड़ा असर था। इमरतसेन की मृत्यु के बाद महाराजा माधोसिंह ने इनको भी उचित वेतन देकर नियुक्त किया और जागीर भी बहाल रखी। यह
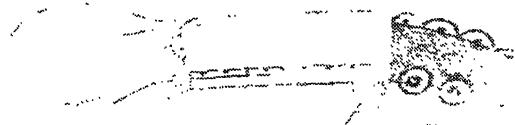
सन् १९१५ में जयपुर में स्वर्गवासी हुए। इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी तालीम के ज़माने में जयपुर में इन्हें सुना था।

फ़ज़ल हुसैन ख़ाँ और फ़िदा हुसैन ख़ाँ

ये दोनों अमीर ख़ाँ के सुपुत्र थे और अपने पिता से दोनों ने बहुत ही अच्छी तालीम और जानकारी पाई थी। ये दोनों ही सितार बजाते थे मगर इनमें फ़ज़ल हुसैन ख़ाँ का हाथ बहुत तैयार था और लयकारी में इनकी टक्कर का दूसरा आदमी नहीं था। इन्हें भी ग्वालियर, बड़ौदा, जयपुर, रामपुर आदि रियासतों से बहुत अच्छे-अच्छे पुरस्कार प्राप्त हुए। इन्हें पान खाने और घोड़े की सवारी का बहुत ज़्यादा शौक़ था। घुड़सवारी की तो बहुत ही अच्छी जानकारी थी तथा कैसा ही ऐबदार घोड़ा हो, उसे झट से क़ाबू में कर लेते थे। इनको भी लेखक ने अच्छी तरह देखा और सुना है।

बहादुर हुसेन ख़ाँ

सेनियों के ख़ानदान में एक और बहुत प्रसिद्ध नाम बहादुर हुसैन ख़ाँ का है। संगीत के इतिहास में इनका दर्जा बड़ा ऊँचा है। यह सुरसिंगार और रबाब दोनों ही बजाते थे और दोनों ही पर इनका बड़ा भारी अधिकार था। तान-बंधान की ख़ूबसूरती, लड़ और गुथाव का आनन्द, राग-रागिनियों का सही स्वरूप—ये तमाम ख़ूबियाँ एक साथ इनमें पाई जाती थीं। सुरसिंगार, रबाब और बीन के अलावा इन्हें अपने ख़ानदान के बहुत-से ध्रुपद भी याद थे। यह ख़ुद भी रचना करते थे और इनकी बाँधी हुई सरगमें और तराने अब भी बड़े आदर के साथ गाये जाते हैं। इनकी रची हुई चीज़ों के सुनने से पता चलता है कि राग-रागिनियों की सही तानों पर इनका कैसा सच्चा अधिकार था। यह रामपुर के नवाब क़ल्बे अली ख़ाँ के उस्ताद थे। बहादुर हुसैन ख़ाँ रोज़ाना कई घण्टे मेहनत करते थे। इनके जमाने में ही कुदऊसिंह नामक एक पखावजी बड़े मशहूर थे जिनकी मेहनत का यह हाल था कि रात

बहादुर हुसैन खाँ

को मोमबत्ती जलाकर आगे रख लेते थे और जब तक वह जलकर ख़त्म न हो जाती, उनका हाथ पखावज पर बराबर चलता रहता। नवाब साहब ने जब उनकी तारीफ़ सुनी तो उन्हें रामपुर बुलवाया। उनकी बड़ी इच्छा थी कि उन्हें बहादुर हुसैन ख़ाँ के साथ-साथ सुनें। अन्त में एक दिन दोनों उस्तादों को एक साथ बिठा दिया। दोनों ही पक्के मेहनती थे, खूब तैयारी से बजाते रहे। बहुत देर के बाद ख़ाँ साहब के हाथ से जवा छूट गया, मगर उनके हाथ नहीं रुके। बराबर बजाते ही रहे, यहाँ तक कि उँगलियों से लहू टपकने लगा। यह देखकर नवाब साहब से न रहा गया। फ़ौरन उठे और पास आकर दोनों साज़ों पर हाथ रख दिये। उन्होंने दोनों की तारीफ़ की, दोनों को ही अच्छे पुरस्कार दिये और यह भी कहा कि तुम दोनों ही अपने-अपने काम में बेजोड़ हो।

कासिम अली ख़ाँ

बहादुर हुसैन ख़ाँ के पास के रिश्तेदारों में एक क़ासिम अली ख़ाँ थे जिन्हें सुरसिंगार बजाने में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। यह भी अपने ज़माने के बड़े नामी तंतकार थे। यह ज़्यादातर बंगाल में रहते थे। ढाका के नवाब साहब इनसे बहुत प्रसन्न थे और अन्त में उन्होंने ख़ाँ साहब को ढाका रहने पर तैयार कर लिया था। ख़ाँ साहब की उम्र का बाक़ी हिस्सा ढाका में ही बीता।

दूल्हे ख़ाँ

सेनियों में एक संगीतज्ञ दूल्हे ख़ाँ हुए। यह तंतकार भी थे और बेहतरीन गवैये भी। होरी, ध्रुपद तथा दूसरी पुरानी चीज़ों का उनके पास ख़ज़ाना था। कुछेक मुश्किल रागों में इनकी बाँधी हुई सरगमें आज भी हिन्दुस्तान के ख़ानदानी गवैयों को याद हैं। ख़ास बात यह है कि इनकी सरगमें शास्त्रीय दृष्टि से एकदम पक्की हैं और राग-रागिनियों की सचाई इनमें पूरी-पूरी दिखाई पड़ती है।

सेनियों के घराने के अन्य संगीतज्ञों में सुखसेन, सादिक़ अली,

हिम्मतसेन और रहीमसेन भी हैं। सुखसेन का देहान्त १८५० में हुआ। अपने ज़माने में यह बड़े प्रसिद्ध संगीतज्ञ माने जाते थे और कई शाहज़ादे इनके शागिद थे। सादिक़ अली खाँ सुरसिंगार बजाते थे। यह ज़्यादा-तर बनारस में रहते थे और अक्सर बंगाल के लोग इन्हें बुलाते और सुनते थे। बनारस में ही सन् १८७० में इनका स्वर्गवास हुआ। हिम्मत-सेन और रहीमसेन सितार बजाते थे और बड़े ऊँचे दर्जे के कलाकार थे। अलवर के महाराजा शिवदान सिंह ने इन्हें अपने दरबार में नियुक्त कर लिया था। उन दिनों अलवर दरबार संगीत की सच्ची क़द्र और सम्मान के लिये प्रसिद्ध था, बल्कि कहा जाता है कि दिल्ली के बाद अलवर दरबार ही ऐसा था जहाँ बहुत-से ऊँचे दर्जे के कलाकारों को जगह मिली हुई थी।

क़व्वाल-बच्चों का घराना

उत्तरी हिन्दुस्तान के संगीतज्ञों में क़व्वाल-बच्चों का घराना बड़ा प्रसिद्ध हो गया है। कहा जाता है कि सुलतान शमशुद्दीन अल्तमश के ज़माने में दिल्ली में सावन्त और बूला नामक दो भाई रहते थे। उनमें से एक गूंगा था और दूसरा बहरा। बादशाह ने एक बार एक दावत में संगीत के लिये भी कुछ इन्तजाम करना चाहा। उन दिनों गाने-बजाने वालों का कुछ पता न था। किसी ने बादशाह को इन दोनों भाइयों की खबर दी तो बादशाह ने उन्हें बुला भेजा, मगर ये बेचारे क्या गाते-बजाते। जब हज़रत ख्वाज़ा-ए-ख्वाजगान को इनका हाल अपने ज्ञान से मालूम हुआ तो उन्होंने इनकी आवाज़ खोलने के लिये दुआ की जो भगवान को मंजूर हुई। फिर आपने दोनों भाइयों को हुक्म दिया कि गाओ। हुक्म पाते ही दोनों की आवाजें खुल गईं और गाना शुरू कर दिया। इन्हीं दोनों का खानदान क़व्वाल-बच्चों का ख़ानदान कहलाता है। इस घराने में मियाँ शक्कर ख़ाँ और मक्खन ख़ाँ और जद्दू ख़ाँ दिल्ली के बड़े मशहूर ख़याल गाने वालों में हुए हैं। अपने ज़माने में ये लोग एकदम बेजोड़ गवैये माने जाते थे।

मुहम्मद ख़ाँ

इस ख़ानदान में बड़े मुहम्मद ख़ाँ बहुत मशहूर हुए। यह शक्कर ख़ाँ के सुपुत्र थे और इन्होंने संगीत की शिक्षा अपने पिता और चाचा दोनों से पूरी-पूरी पाई थी। ये लोग ख़याल गाते थे। शिक्षा पाने के बाद ही अपनी सूझ और उपज से इन्होंने तानों की फिरत ईजाद की। इस फिरत को इन्होंने सीधा ही नहीं रक्खा बल्कि पेचदार और

बलदार बनाया था। अपनी तानों के बल और फन्दों से यह सुनने वालों को हैरत में डाल देते थे और इनके गाने में एक जादू का-सा असर था। इनकी इस विशेषता की सारे देश में बड़ी प्रशंसा हुई और लोग इसे बहुत ही पसन्द करते थे। यह देखकर कई गवैयों ने इनकी नक़ल करने की कोशिश की, मगर इसमें सफलता बहुत कम लोगों को मिल सकी। मैंने बुजुर्गों से यह भी सुना है कि कई लोगों ने इनकी गायकी को अपनाने की कोशिश की, मगर वह उनसे निभ न सकी, यहाँ तक कि वे लोग बेसुरे हो गये। ऐसे लोगों का गाना सुनकर सुनने वाला हँस उठता था, मगर ये लोग अपने मन में यही समझते थे कि हम बहुत कठिन गायकी गा रहे हैं।

कहा जाता है कि ग्वालियर के हद्दू ख़ाँ, हस्सू ख़ाँ और नत्थू ख़ाँ ने बरसों पर्दे में बैठकर इनकी गायकी सुनी और उससे सीखा। घटना इस प्रकार बताई जाती है कि जब महाराजा दौलतराव सिंधिया ने बड़े मुहम्मद ख़ाँ का गाना सुना तो वह बहुत ख़ुश हुए। महाराजा साहब हद्दू ख़ाँ और इनके भाइयों को बहुत चाहते थे। इसलिये उनकी इच्छा हुई कि ये लोग मुहम्मद ख़ाँ की गायकी सीख लें तो इनके गाने में और भी मज़ा पैदा हो जाय। इसका उपाय महाराजा साहब ने यह निकाला कि वह बड़े मुहम्मद ख़ाँ साहब को बार-बार गवाते थे। साथ ही पर्दे के पीछे हद्दू ख़ाँ और हस्सू ख़ाँ को बिठाकर उनका गाना सुनवाते थे। उसके बाद ख़ुद अपने सामने उनसे मेहनत भी करवाते थे। इस तरह से कई बरस बीत गये। धीरे-धीरे हद्दू ख़ाँ और उनके भाइयों का भी रंग बदला और उनके गाने में बड़ी-बड़ी ख़ूबियाँ पैदा हो गईं। इसके बाद महाराजा साहब ने एक रोज़ मुहम्मद ख़ाँ को बुलाकर कहा कि आज आप हमारे यहाँ के बच्चों का भी गाना सुनें। इतना कह कर हद्दू ख़ाँ को बुलवाया और गाने का हुक्म दिया। हद्दू ख़ाँ ने गाना शुरू किया और मुहम्मद ख़ाँ बड़े ध्यान से उनका गाना सुनने लगे। मगर वह जल्दी ही दिल में समझ गये कि मेरा गाना सुनकर ही यह इस

क़ाबिल हुए हैं। यह जानकर उनको बहुत अफ़सोस हुआ और उनका चेहरा उतर गया। महाराजा साहब उनके रंज और उदासी को समझ गये और कहने लगे, "आप परेशान क्यों नज़र आते हैं ?"

मुहम्मद ख़ाँ ने उत्तर दिया, "ये लोग जो कुछ गा रहे हैं, मुझको ही सुन-सुनकर गा रहे हैं। मुझे रंज इस बात का है कि मुझ से सीखा नहीं। अगर सरकार मुझे हुक्म देते तो मुझे बताने से इन्कार न होता।"

महाराजा साहब बड़े ही न्यायप्रिय थे। उन्होंने कहा, "यह सच है कि इन्होंने आपको सुन-सुनकर ही सीखा है। मगर अब मेरे कहने से आप अपने दिल से रंजो-मलाल दूर कर दीजिये और इन्हें शागिद बना लीजिये। तभी ये लोग दुनिया में फूलें-फलेंगे।" इतना कह कर महा-राजा साहब ने हद्दू ख़ाँ की तरफ़ इशारा किया तो वह उठे और जाकर मुहम्मद ख़ाँ के पैर पकड़ लिये। मुहम्मद ख़ाँ ने इन लोगों को अपना शागिर्द बना लिया और उसके बाद महाराज सिंधिया के दरबार में बहुत दिनों तक दरबारी गवैये रहे। मुहम्मद ख़ाँ को अक्सर अलवर, जयपुर, रीवाँ आदि रियासतों में बुलवाया जाता और वहाँ इनका बहुत ही सम्मान होता। सच तो यह है कि अस्थायी-ख़याल गाने वालों के, और ख़ास कर फिरत का गाना गाने वालों के, यह उस्ताद थे। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि यह घटना रीवाँ में हुई थी। जो भी हो, इनके बड़े भारी गवैये होने में किसी को कोई भी शक नहीं हो सकता। इनका देहान्त १८४० लगभग के हुआ।

मुहम्मद ख़ाँ के भाई और पुत्र

मुहम्मद ख़ाँ के कई भाई थे जिनके नाम थे—अहमद ख़ाँ, रहमत ख़ाँ और हिम्मत ख़ाँ। इनमें से अहमद ख़ाँ बहुत प्रसिद्ध हुए। इन्होंने अपने भाई की चलाई हुई गायकी ही अपनाई और फिरत में वही बातें अख़्तियार कीं। इसके ऊपर इनकी मेहनत ने तो और भी चार चाँद

लगा दिए । इसीलिए इनका नाम सारे हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध था। इनकी चीज़ों की बंदिश बड़ी अनूठी होती थी जिसमें ख़ास-ख़ास स्थानों पर पेचदार फिरत के टुकड़े रहते थे। इनके गाने की विशेषता यही थी कि बहुत कठिन पेचदार फिरत के होते हुए भी तानों में राग का पूरा स्वरूप मौजूद रहता था। इसी से इनके सुनने वालों को आनन्द भी आता और बड़ी हैरत भी होती। दूसरे भाई रहमत ख़ाँ ने भी अपनी खानदानी विद्या को पूरी तरह हासिल किया और वह अस्थायी-ख़याल बेजोड़ गाते थे। इनकी तान पेचदार, ज़ोरदार और बड़ी प्रभावोत्पादक होती थी। इसीलिए इनको राजदरबार से 'तानों के कप्तान' का ख़िताब मिला था। तीसरे हिम्मत ख़ाँ सन् १८५० के आसपास रीवाँ रियासत में नौकर थे। स्वयं उच्च कोटि के गवैये होने के अतिरिक्त इन्होंने अपने शागिर्दों को बहुत मुहब्बत से सिखाया और यह गुण इस घराने में केवल इन्हीं में था। इसीलिए इनके शागिर्दों की संख्या बड़ी भारी थी। विशेषकर मालवा में इनके शागिर्दों ने बहुत नाम किया तथा और रियासतों में भी अपनी कला के लिए स्थान और धन-मान दोनों ही प्राप्त किए।

मुहम्मद ख़ाँ के पुत्र भी कई थे—अमान अली ख़ाँ, बाकर अली ख़ाँ, मुबारक अली खाँ, मुनव्वर ख़ाँ और फ़ैयाज़ खाँ। ये सभी बड़े मशहूर गवैये हुए। इनमें से अमान अली ख़ाँ को अपने पिता से ख़याल गायकी की पूरी-पूरी शिक्षा मिली थी। इनकी तानों के बल-फंदे सुनकर श्रोता दंग रह जाते थे। अलवर के महाराज शिवदानसिंह और जयपुर-नरेश रामसिंह के जमाने में इनका नाम सुनने में आता है। इसके अतिरिक्त ग्वालियर और रीवाँ रियासतों में भी इनका बड़ा सम्मान हुआ। बाकर अली ख़ाँ रामपुर के नवाब क़ल्बे अली ख़ाँ के दरबार के खास गवैयों में से थे। मेरे दादा ग़ुलाम अब्बास ख़ाँ ने इनको अच्छी तरह सुना था और वह इनकी बड़ी तारीफ़ किया करते थे। इन्हें भी अपने घराने की गायकी पर पूरा अधिकार प्राप्त था। मुनव्वर ख़ाँ सन् १८७० में रीवाँ

राज्य में नौकर थे। नौकरी करने के बाद यह रियासत के बाहर कहीं नहीं गये और जीवन भर वहीं संगीत की सेवा में लगे रहे। फ़ैयाज़ खाँ का नाम रीवाँ, भरतपुर, जयपुर, अलवर सभी राजदरबारों में हुआ।

मुबारक अली ख़ाँ

किन्तु मुहम्मद ख़ाँ के तीसरे पुत्र मुबारक अली ख़ाँ ने अपने पिता से संगीत विद्या का ज्ञान सबसे अधिक पाया था। पेचीदा फिरत के मामले में तो इनकी टक्कर का कोई दूसरा गवैया नहीं था। इनकी तान की गुत्थी बड़े-बड़े गवैयों की समझ में भी नहीं आती थी और हर तान ऐसी ख़ूबसूरती के साथ सम पर आती थी कि सुनने वाले दंग रह जाते थे। मुबारक अली ख़ाँ अलवर के महाराजा शिवदानसिंह के दरबार में ख़ास गवैये थे। महाराजा ने इनका वेतन सत्रह सौ रुपये माहवार तय किया था जो कुछ दिन बाद पूरा दो हज़ार रुपये कर दिया गया। जब रियासत अलवर 'कोर्ट आफ़ वार्ड' हुई तो महाराज रामसिंह ने जयपुर बुलाकर इन्हें अपने दरबार में बड़ी इज़्ज़त दी। इस ज़माने में जयपुर में रजब अली ख़ाँ बीनकार, इमरतसेन सितारिये, संगीत शास्त्र के पण्डित बहराम ख़ाँ ध्रुपदिये और अस्थायी-ख़याल के मशहूर गायक घग्घे ख़ुदाबख़्श दरबार में मौजूद थे। मुबारक अली ख़ाँ के आने से इस मजलिस की कमी पूरी हो गयी और इसे चार चाँद लग गये। यह बात सच है कि इन्होंने किसी ख़ास शागिर्द को मेहनत से नहीं सिखाया। मगर साथ ही यह बात भी सच है कि इनका सम्मान करने वाले और इन्हें सच्चे दिल से मानने वाले बहुत थे और कितने ही लोगों ने इनको सुन-सुनकर लाभ उठाया और उन्नति की। इनमें से आगरे वाले नत्थन ख़ाँ और अतरौली वाले अल्लादिया ख़ाँ का नाम विशेष रूप से लिया जाना चाहिए।

मुबारक अली ख़ाँ बड़े ही ख़ुशमिजाज़ आदमी थे और हरेक से मुहब्बत से पेश आते थे। इनके गाने की तारीफ़ एक बार हद्दू ख़ाँ ने

ग्वालियर-नरेश के सामने की तो महाराजा को भी सुनने की बड़ी इच्छा हुई और इन्हें जयपुर से बुलवाया। महाराजा ने दो-तीन बार इनका गाना सुना मगर इनकी तबीयत गाने में न लगी और यों ही कुछ सुनाते रहे। इधर महाराजा साहब भी हैरान थे कि जिस आदमी की हद्दू ख़ाँ जैसे उस्ताद ने तारीफ़ की थी, उसमें कोई ख़ूबी कैसे नहीं मिली। संयोग-वश एक सप्ताह बाद किसी दोस्त के यहाँ शहर में ख़ाँ साहब की दावत हुई जहाँ यह गाने के लिए बैठे। उस समय इनकी तबीयत मौज पर आ गई और ऐसी पेचीदा और बलदार तानें पैदा होने लगीं कि हरेक सुनने वाला वाह-वाह करने लगा। वहाँ हद्दू ख़ाँ भी मौजूद थे। वह फ़ौरन उठे और महाराजा साहब के महल में जाकर अर्ज़ किया कि यह मौक़ा सुनने का है। महाराजा साहब भी बड़े ही शौक़ीन तबियत के आदमी थे। यह बात सुनते ही फ़ौरन उठ खड़े हुए और ख़ाँ साहब के साथ ही जलसे में जा पहुँचे। उन्होंने अपनी सवारी का हाथी उस खिड़की से मिलाकर खड़ा किया जिसके पास मुबारक अली ख़ाँ गा रहे थे। वहाँ से महाराजा साहब के कानों में कुछ ऐसी सुन्दर तानों की भनक पड़ी कि बेताब हो गए और दिल नहीं माना तो हाथी से उतर कर अन्दर जा पहुँचे और बराबर वाले कमरे में बैठकर जी भर कर गाना सुनते रहे। उस दिन मुबारक अली ख़ाँ साहब की तबीयत ऐसी जमी हुई थी कि हर क्षण नयी तानें और उपजें पैदा हो रही थीं। तमाम सुनने वाले दंग थे। हरेक के दिल से दाद निकल रही थी। जलसा ख़तम होने के बाद महाराजा ने इन्हें अन्दर बुलाया और बोले, "मैंने जैसी तारीफ़ सुनी थी, आपको उससे कहीं बढ़कर पाया और सच बात तो यह है कि आपका गाना आप ही के वास्ते है।" इसके बाद महाराजा साहब ने इन्हें कई बार अपने महल में बुलाकर सुना और जागीर वग़ैरह देकर इन्हें अपने यहाँ रखने की इच्छा प्रकट की। मगर ख़ाँ साहब यह कहते रहे, "मैं महाराज रामसिंह का नौकर हूँ, इसलिए लाचार हूँ कि उन्हें नाराज़ नहीं कर सकता। हाँ, आप जब कभी भी

मुझे याद करेंगे, ज़रूर कुछ दिनों के लिए हाज़िर हो जाऊँगा।" सन् १८८० में जयपुर में इनका देहान्त हुआ।

मुहम्मद ख़ाँ के दो भतीजे वारिस अली ख़ाँ और इनायत हुसैन ख़ाँ भी जो ग्वालियर रियासत में नौकर थे बड़े प्रसिद्ध गवैये हुए। इनायत हुसैन ख़ाँ अलवर में थे और वहाँ से इन्हें वेतन भी मिलता था और जागीर मिली हुई थी। रियासत के 'कोर्ट आफ़ वार्ड' होने के बाद यह भी जयपुर चले आए जहाँ महाराजा रामसिंह ने बड़ी इज़्ज़त से इन्हें अपने दरबार में जगह दी और पाँच गाँवों की जागीर भी प्रदान की।

सादिक़ अली

क़व्वाल-बच्चों के घराने के बड़े प्रसिद्ध गवैयों में सादिक़ अली का नाम बहुत उल्लेखनीय है। यह नवाब वाजिद अली ख़ाँ के ज़माने में लखनऊ में थे और उसके बाद भी कई बरस जिन्दा रहे। इन्होंने अपने घराने की गायकी को क़ायम रखने के साथ-साथ ठुमरी में बड़ी विशेषता उत्पन्न की। उसे इन्होंने ऐसा प्रभावोत्पादक बनाया कि उसके बाद से ठुमरी का रंग ही बदल गया। यह गायकी हर व्यक्ति को पसन्द आई और तमाम पूर्वी हिन्दुस्तान इसके रंग में रँग गया। बनारस, गया और कलकत्ते वग़ैरह में इसका बहुत ज़्यादा प्रचार हुआ।

भैया गरणपतराव

स्वर्गीय भैया गरणपतराव ग्वालियर वाले इनके बड़े मशहूर शागिर्द हुए जो हारमोनियम बजाने में बड़े भारी उस्ताद माने गए। एक प्रकार से इस वाद्य के यही सबसे बड़े प्रवर्तक थे। यह बात तो मशहूर ही है कि हारमोनियम की ईजाद पश्चिमी देशों में हुई मगर उसका प्रचार हिन्दुस्तान में हुआ। भैया साहब पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हारमोनियम पर अभ्यास किया और अपने उस्ताद सादिक़ अली ख़ाँ से ठुमरी के अंग सीख कर उन्हें हारमोनियम से अदा किया।

यह चीज़ उन्होंने इतने कमाल पर पहुँचा दी कि बड़े-बड़े संगीतकार भी उनकी प्रशंसा करते थे। हारमोनियम में चढ़े-उतरे सिर्फ़ बारह स्वर होते हैं। इसलिए ज़्यादा राग-रागिनियाँ उससे अदा नहीं हो सकतीं। भैया साहब ने हारमोनियम में सिर्फ़ धुनें बजाईं और अपने उस्ताद की राय से सिर्फ़ ठुमरी दादरा वगैरह खुशनुमा चीज़ें दिलचस्प रागिनियों में बजा-कर दुनिया को हैरत में डाल दिया। भैया साहब हारमोनियम के बारे में कहा करते थे कि यह तो बिगुल बाजा है, इसे राग-रागिनी से क्या वास्ता ? मगर जब यह स्वयं हारमोनियम लेकर उसमें पीलू, खमाज, तिलंग, देस, जोगिया, भैरवी वगैरह में कोई चीज़ शुरू कर देते तो मह-फ़िल तड़प जाती। सभी संगीत के प्रेमी दिल से इनकी तारीफ़ करते। भैया साहब ने हारमोनियम को इतना महत्व दिया कि वह ठुमरी के अंगों के लिए एक तरह से अनिवार्य-सा हो गया। भैया साहब के भी बहुत-से शागिर्द हुए जिन्होंने सारे हिन्दुस्तान में बड़ी शोहरत पाई। उनमें से गफ़ूर ख़ाँ गयावाले, बशीर ख़ाँ जोधपुरवाले, जंगी ग्वालियरवाले, सज्जाद हुसैन लखनऊवाले, मीर इरशाद अली, गौहरजान, मलकाजान आगरे वाली, जद्दनबाई कलकत्तेवाली और बाबू शामलाल आदि बहुत प्रसिद्ध हुए हैं।

इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तान के मशहूर ठुमरी गानेवाले मौजुद्दीन ख़ाँ भी सादिक़ अली ख़ाँ के प्रसिद्ध शागिर्द थे। लोग इन्हें अक्सर 'ठुमरी का बादशाह' कहते थे और सारे हिन्दुस्तान में इनका नाम था।

क़व्वाल-बच्चों के घराने में इनके अतिरिक्त फज़ले अली, मुजाहिर ख़ाँ, रज्जब अली ख़ाँ, मुबारिक अली ख़ाँ के भतीजे इमदाद ख़ाँ, मुनव्वर ख़ाँ के पुत्र करम अली ख़ाँ और दिलावर अली ख़ाँ, हुसैन ख़ाँ, मीराबख़्श, तन्नू ख़ाँ आदि सभी प्रसिद्ध हुए। इनमें से करम अली ख़ाँ और दिलावर अली ख़ाँ रीवाँ रियासत के दरबारी गवैये थे और कहा जाता है कि ये सितार भी बजाते थे। हुसैन ख़ाँ महाराजा सवाई माधोसिंह के

दरबार में जयपुर में थे और वहीं इनकी सारी उम्र बीती। इन्होंने अपने बेटे करीम अली खाँ को भी अच्छी तालीम दी थी तथा फूलजी भट्ट भी इनके एक मशहूर शागिर्द हुए हैं। मीराबख़्श मेवाड़पति महाराणा फ़तह सिंह के दरबार में थे और वहाँ से इनको बड़ा सम्मान प्राप्त हुआ था।

दिल्ली के ख़ानदान

मियाँ अचपल

पुराने ज़माने से राजधानी होने के कारण दिल्ली में संगीत की परम्परा बड़ी पुरानी है और यहाँ बड़े-बड़े कलाकार होते रहे हैं। अचपल मियाँ भी दिल्ली के एक बड़े प्रसिद्ध गायक हुए हैं। इनके असली नाम और जन्म-स्थान का ठीक-ठीक पता नहीं, पर सुना है कि यह दिल्ली के आस-पास के ही रहने वाले थे। जो कुछ भी हाल इनके बारे में बड़े-बूढ़ों से पता चला है, उससे जान पड़ता है कि यह क़व्वाल-बच्चों में से थे। यह बड़े ऊँचे दर्जे के कलाकार थे और अस्थायी-ख़याल, तराना, तिरवत, सरगम, चतुरंग वग़ैरह की गायकी पर इन्हें पूरा-पूरा अधिकार था। इनकी गायकी हिन्दुस्तान भर में मशहूर हुई। यह बड़े छंगे ख़ाँ के समकालीन थे और उन्हीं के साथ-साथ शाही दरबार के गवैये थे। यह हिन्दी में कविता बहुत अच्छी करते थे और इन्होंने स्वयं ही बहुत से मुश्किल रागों में चीज़ें बनाईं तथा शागिर्दों को सिखाकर उनका ख़ूब प्रचार किया। ख़ानदानी गवैये इनकी ये चीज़ें आज तक गाते हैं। विशेषकर नट की चीज़ (आज मनावन आये), बहार की चीज़ (हरी हरी डालियाँ), ऐमन की चीज़ (गुरु बिन कैसे गुन गावें), लक्ष्मी तोड़ी की चीज़ (जोबना रे ललैया) आदि बहुत ही प्रसिद्ध हुई हैं। ऐसे बुज़ुर्गों ने ही हमारे संगीत को इतना समृद्ध और भरा-पूरा बनाया है। मियाँ अचपल की महानता का एक उदाहरण यह भी है कि इन्होंने तानरस ख़ाँ जैसे शागिर्द को तैयार किया जिनका ज़िक्र हम आगे करेंगे। इनका देहान्त सन् १८६० में हुआ।

बड़े छंगे ख़ाँ

जैसा ऊपर कहा गया, अचपल मियाँ के साथ ही दिल्ली के दरबार में सन् १८५० के लगभग बड़े छंगे ख़ाँ भी शाही गवैये थे। मैंने अपने कई बड़े-बूढ़ों को इनके नाम पर कान पकड़ते देखा है। कान पकड़ने की बात पर शायद आजकल की नई रोशनी वाले लोग हँसेंगे। मगर मैं यह बताना चाहता हूँ कि ख़ानदानी लोगों में यह चलन बराबर रहा है। इस बात के कम से कम दो फ़ायदे तो हैं ही। अव्वल तो इससे पुराने उस्तादों और बड़े-बूढ़ों की महानता और महत्व का दिल पर असर होता है; दूसरी बात यह भी है कि ऐसा करने से आदमी को घमंड नहीं हो सकता। जो हो, बड़े छंगे ख़ाँ ख़याल गाने में बड़े निपुण और अपने ज़माने के बड़े प्रसिद्ध गवैये माने जाते थे। इनके बारे में भी ज़्यादा जानकारी हमें अभी तक हासिल नहीं है। इतना कहा जाता है कि इनका देहान्त १८५७ से कुछ पहले हुआ। कुछ इस बात का भी पता चलता है कि यह बादशाह की अनुमति से दूसरी रियासतों में भी गाना सुनाने जाया करते थे।

शादी ख़ाँ और मुराद ख़ाँ

ये दोनों बाप-बेटे थे और साथ ही गाते थे। आलाप, होरी, ध्रुपद, ख़याल-अस्थायी इन तमाम चीज़ों पर इन्हें पूरा-पूरा अधिकार था। ये दोनों ही दिल्ली में दरबार के ख़ास गवैये थे। इसके साथ ही सारे हिन्दुस्तान के राजा-महाराजा और समझदार रईस इनकी बड़ी इज़्ज़त और क़द्र करते थे और इन्हें बुलाकर गाना सुनने में अपना सम्मान समझते थे। एक बार दतिया के महाराज भवानीसिंह ने इन्हें अपने यहाँ बुलाया और इनके गाने को कई बार सुना। महाराजा साहब इनसे इतने प्रसन्न हुए कि इनके लिए एक नए ढंग का पुरस्कार सोचा। उन्होंने सवा लाख रुपयों का एक चबूतरे जैसा ढेर लगवाया और उसके ऊपर दुशाला बिछवा कर इन दोनों को बैठा दिया। इसके अतिरिक्त हौदे

समेत हाथी, साज सहित सात घोड़े, मूल्यवान पोशाक तथा आभूषण इत्यादि भी इन्हें भेंट किए। मगर उस समय अचानक ही महाराज के मुँह से यह निकल गया कि ख़ाँ साहब दिल्ली के बादशाह ने भी आपको ऐसा इनाम न दिया होगा। इन दोनों को यह बात बहुत बुरी लगी। इन्होंने महाराजा साहब से तो कुछ नहीं कहा और चुपचाप इनाम लेकर महल से बाहर निकल आए। मगर बाहर आते ही जितना रुपया और सामान था, सब फ़क़ीरों और ग़रीब-मुँहताजों को दान कर दिया। जब महाराज को इस बात की ख़बर लगी तो उन्होंने इन दोनों को फिर महल में बुलाया और इतना माल लुटा देने पर अचम्भा प्रकट करते हुए इसका कारण पूछा। इन लोगों ने अर्ज़ किया, "हम दिल्ली के बादशाह का नमक खाने वाले हैं जिसके मामूली से मामूली सेवक भी इतना दान दिया करते हैं।" महाराजा साहब समझ गए कि यह मेरी ही बात का उत्तर है और दिल में बड़े शर्मिन्दा हुए। इसके बाद महाराजा ने इनसे कहा, "वह वाक्य मेरे मुँह से अनायास ही निकल गया था। उसका आप बुरा न मानें।" इसके बाद महाराजा साहब ने इन्हें एक हाथी और पाँच घोड़े तथा अन्य सामान और इनाम में दिए।

बहादुर ख़ाँ और दिलावर ख़ाँ

बहादुर ख़ाँ के पिता का नाम हैदर ख़ाँ था, मगर इन्हें मुराद ख़ाँ ने गोद ले लिया था और इन्हें अपने बेटे की तरह पालकर बड़ी मेहनत से गाना सिखाया था। यह ख़याल-अस्थायी बहुत अच्छी तरह गाते थे। इनकी तान बहुत ही बलदार, पेचीदा मगर सुरीली होती थी जिसका नाम सारे हिन्दुस्तान में था। हर सुनने वाला इनकी तारीफ़ करता था। यह पहले जम्मू रियासत में नौकर रहे, पर वहाँ कुछ ही दिनों में अकेले-पन से घबराकर घर चले आए। उसके बाद रियासत दुजाना, जूनागढ़ और मुर्शिदाबाद वग़ैरह में भी थोड़े-थोड़े दिन दरबारी गवैये रहे। अपनी उम्र के आख़िरी दिनों में यह कलकत्ते में रहने लगे थे। किन्तु इनका

देहान्त सन् १९०४ में दिल्ली में हुआ। इनकी गायकी के बारे में यह प्रसिद्ध है कि इनकी फिरत बहुत मुश्किल होती थी। यह अपने ज़माने के बड़ी कठिन शैली के गायक के रूप में प्रसिद्ध थे। इनका स्वभाव बड़ा हँसमुख और तबीयत बहुत चुलबुली थी। हर समय हँसते-हँसाते रहते थे और किसी तरह के रंजोग़म को पास नहीं फटकने देते थे।

इनके बेटे का नाम था दिलावर खाँ जो बहुत सुरीला और तैयार गाता था। इनका आना-जाना पंजाब की तरफ़ अधिक था और वहाँ के लोग इनके बड़े प्रशंसक थे। बाद में यह बंगाल की तरफ़ भी गए और कलकत्ते में भी बंगाल के रईस इनसे बहुत प्रसन्न हुए। नारायण बाबू और अन्य धनी व्यक्तियों ने इन्हें अपने पास रोक लिया और कई साल तक यह वहीं रहे। कलकत्ते के और रईस भी इनका बड़ा सम्मान करते थे। सन् १९०९ में दिल्ली में ही इनका देहान्त हुआ। यह सुना गया है कि संगीत विद्या में यह अपने पिता से किसी तरह पीछे न थे और उनकी तरह ही बहुत ही हँसमुख और ज़िन्दादिल आदमी थे।

मीर नासिर अहमद

यह सैयद खानदान के थे और इनका जन्म सन् १८०० के आस-पास दिल्ली में हुआ था। इनकी माता हिम्मत खाँ क़व्वाल-बच्चे की बेटी थी। मीर नासिर को बचपन से ही ननिहाल में रहने का मौक़ा मिलता रहा और सुरीलापन इनके कानों में भरता रहा। संगीत की ओर इनका रुझान अपने ननिहाल से ही हुआ। मीर साहब के पिता ने इनको पाँच-सात बरस की उम्र में मदरसे में दाखिल करा दिया जहाँ इनको फ़ारसी और उर्दू की तालीम मिलने लगी। अपनी यह शिक्षा पूरी करके यह संगीत की तरफ झुके और किसी बुज़ुर्ग से बीन सीखना शुरू किया। इन्होंने बरसों तक तालीम ली और बहुत मेहनत भी की। इस प्रकार अन्त में उच्च कोटि के बीनकारों में इनकी गिनती होने लगी। इनकी तारीफ़ सुनकर दिल्ली के बादशाह को भी इन्हें सुनने का शौक़

हुआ और इन्हें बुलाया और इनका काम सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए। बादशाह ने इनके लिए उचित वेतन भी तय कर दिया था लेकिन कुछ ही दिन बाद अवध के नवाब वाजिद अली शाह ने इनकी तारीफ़ सुनकर इनको बड़े शौक़ और सम्मान से लखनऊ बुला लिया और अपने दरबारी उमराव में इन्हें जगह दी। नवाब इनको बार-बार सुनते मगर तबीयत न भरती थी। उसके बाद से नवाब साहब ने इन्हें फिर कभी लखनऊ से नहीं जाने दिया और इनकी उम्र का बाक़ी सारा हिस्सा लखनऊ में गुज़रा।

पन्नालाल गोसाईं

यह दिल्ली के रहने वाले थे और इन्होंने सितार बजाने में बड़ा कमाल हासिल किया था। दिल्ली शहर में इनके बहुत-से शागिर्द थे। इसके अलावा दिल्ली के बाहर से भी लोग आते और इनके शागिर्द बनते थे। इनका सितार बजाने का ढंग बड़ा लोकप्रिय था। यही वजह है कि बहुत लोग इनके शागिर्द होना पसन्द करते थे। अपने शागिर्दों को यह सिखाते भी बड़े शौक़ से थे। उनका एक दरबार-सा इनके यहाँ लगा रहता और गाना-बजाना सबेरे-शाम हर वक्त चलता ही रहता था। गोसाईं जी सब कलाकारों की ख़ातिर करते थे और उन्हें अपने यहाँ दावत देकर बुलाते थे तथा ख़ुद भी सुनते और अपने शागिर्दों को भी सुनवाते थे। इनका यह विश्वास था कि इस तरह से सुनकर शागिर्द कुछ हासिल कर सकते हैं और स्वयं भी अपने उस्ताद की तरह लायक और निपुण होकर कलाकारों की क़द्र करना सीख सकते हैं। एक प्रकार से गोसाईं जी ने एक बड़ा-सा स्कूल अथवा एक बढ़िया-सा कालेज खोल रक्खा था जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिख सभी जमा होते थे। सब लोग इस कालेज के मेम्बर भी थे और विद्यार्थी भी। लोगों में संगीत का शौक़ पैदा करने के लिए गोसाईं जी की यह पद्धति हमें बहुत अच्छी लगी है, क्योंकि इन्होंने न केवल लोगों में शौक़ पैदा किया, बल्कि

उन्हें सिखाया, तैयार किया और इस विद्या का बहुत प्रचार भी करवाया। इन्होंने संगीत के ऊपर एक किताब भी लिखी है जिसमें बहुत-सी सामग्री है। यह पुस्तक हिन्दी में 'संगीत विनोद' नाम से प्रकाशित हुई थी। सन् १८८५ के लगभग गोसाईं जी का स्वर्गवास हुआ।

नूर ख़ाँ

यह दिल्ली में ही पैदा हुए थे और इन्होंने शाही ढंग से सारा जीवन बिताया था। यह हमेशा एक चौगोशिया टोपी पहना करते थे, इसलिए इनका चोगोशिये नूर ख़ाँ नाम सब जगह मशहूर हो गया था। संगीत की शिक्षा इन्होंने अपने बड़े-बूढ़ों से हासिल की थी और अपनी मेहनत और अभ्यास से बड़े ऊँचे दर्जे को पहुँच गए थे। मैंने अपने बुज़ुर्गों से सुना है कि जब यह अलापते थे तो सुननेवालों का दिल खिंचने लगता था और वे बेचैन हो जाते थे। दिल्ली के अलावा यह बाद में गुजरात चले गए और वहीं इनकी ज़िन्दगी का बाक़ी समय बीता। वहाँ के शौक़ीन लोग इनका बड़ा आदर करते थे। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में यह रतलाम के महाराजा के दरबार में थे और वहीं १८९० में इनका देहान्त हुआ।

यूसुफ़ ख़ाँ और वज़ीर ख़ाँ

ये दोनों हापुड़ के निज़ाम ख़ाँ के बेटे थे। पर इनकी तालीम का सिलसिला दिल्ली में ही शुरू हुआ। आलाप, ध्रुपद, होरी, धमार की तालीम इन्हें बहुत अच्छी हासिल हुई और दोनों भाइयों ने मेहनत भी ऐसी की कि हिन्दुस्तान भर में यह जोड़ी मशहूर हो गई। मैंने अपने बड़े-बूढ़ों से, विशेषकर अपने उस्ताद करामत ख़ाँ साहब से, इनके गाने की बड़ी ही तारीफ़ सुनी है। मैं अक्सर सोचा करता हूँ कि ऐसे-ऐसे कामिल लोग जब इनकी तारीफ़ करते हैं तो ये लोग कैसे होंगे। सचमुच इनके गाने में जादू का-सा ही असर रहा होगा। इन दोनों भाइयों ने सारे देश का दौरा किया। नागपुर और बम्बई में बहुत घूमे-फिरे और लोगों को

अपना भक्त बना लिया। बहुत-से लोग इनके शागिर्द भी थे और इनसे जो कुछ मिला हासिल किया। मैंने इनके शागिर्द पंडित पांडु बुआ को देखा है और सुना है। इन्हें पंडित भातखंडे भी बहुत मानते थे। जब मैंने इनको देखा उस समय इनकी अवस्था बहुत अधिक थी, पर यह यूसुफ़ ख़ाँ और वज़ीर ख़ाँ की बहुत-सी चीज़ें जानते थे और बड़े मज़े से गाते थे। पांडु बुआ से यह भी मालूम हुआ कि इन दोनों ने और भी कितने ही महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों को आलाप, होरी और ध्रुपद की तालीम दी थी, पर उनके नाम सही तौर पर हमें मालूम नहीं हो सके।

सदरुद्दीन ख़ाँ

यूसुफ ख़ाँ और वज़ीर ख़ाँ के भाइयों में एक सदरुद्दीन ख़ाँ भी थे। यह रहने वाले तो दिल्ली के ही थे पर बाद में जयपुर में महाराजा रामसिंह के दरबार में नौकर हो गए थे। इनके आलाप में स्वर बड़े सच्चे लगते थे और जो भी इनको सुनता वह तड़प जाता और बेचैन होकर दिल से वाह-वाह करने लगता था। यह ध्रुपद और होरी भी बहुत अच्छा गाते थे। इनका गाना जिसने भी एक बार सुना वह उम्र भर उसे न भूल सका। यह इनको प्रकृति की एक देन थी। मगर आख़िरी उम्र तक इन्होंने मेहनत और अभ्यास नहीं छोड़ा। सुना है कि रोज़ चार-पाँच घण्टे गाये बिना इन्हें चैन नहीं मिलता था। एक प्रकार से कहा जाय तो सही मानों में संगीत का आनन्द वह स्वयं सबसे अधिक उठाते थे और बाद में सुनने वालों को भी पहुँचाते थे। सन् १८८० में जयपुर में ही इनका देहान्त हुआ।

अलीबख़्श ख़ाँ

हापुड़ के घराने के एक अलीबख़्श ख़ाँ भी थे। ख़याल-अस्थायी गाने वालों में इनकी भी हिन्दुस्तान के नामी गवैयों में गिनती होती थी। तानरस ख़ाँ इनके बड़े भारी मित्र थे और दोनों में बहुत मुहब्बत थी।

इसीलिए साथ ही साथ रहते और अक्सर साथ ही साथ गाते भी थे। इन्हें भी संगीत में अपने बुज़ुर्गों से बहुत-सी ख़ूबियाँ हासिल हुई थीं।

मुहम्मद सिद्दीक़ ख़ाँ

यह अलीबख़्श ख़ाँ के पुत्र थे और इनका जन्म १८५० में दिल्ली में ही हुआ। पिता ने इनको संगीत विद्या की पूरी-पूरी शिक्षा दी थी और ख़याल-अस्थायी पर तो इन्हें बहुत ही भारी अधिकार था। यह स्वभाव से बड़े शान्त और गंभीर थे। इनके गाने में भी इसी से एक बड़ी विशेषता उत्पन्न हो गई थी। सुनने वालों के ऊपर इससे बड़ा असर होता था। इसका विशेष कारण यह था कि यह हर राग को बड़ी गंभीरता और स्थिरता के साथ सुर-साँच का मज़ा लेकर बहलावे दे-देकर गाते और सुर के लगाव से बोलों को बनाकर अदा करते थे जिससे सुनने वालों के दिल पर बड़ा गहरा असर पड़ता था। मैंने इनके मुँह से देसकार, बिलासखानी तोड़ी राग जैसे सुने हैं, वैसे आज तक और किसी से सुनने में नहीं आये। इन्हें अलवर, जयपुर, टोंक जैसे संगीत-प्रेमी राजाओं से बहुत कुछ सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए थे। सन् १८८० में यह हैदराबाद पहुँच गये और तानरस ख़ाँ के साथ ही वहाँ दरबारी गवैये नियुक्त हुए। इनका संगीत का ज्ञान बहुत ही गहरा और सच्चा था। साथ ही इन्हें संगीत के प्रचार का भी बहुत शौक़ था। इन्होंने अपने घर पर ही एक स्कूल क़ायम कर रखा था जिसमें विद्यार्थी आकर सीखा करते थे। इनके कुछेक शागिर्द इस प्रकार हैं :

(१) अहमद ख़ाँ सारंगिये, जिनको ख़ाँ साहब ने बहुत-सी राग-रागिनियों का सबक़ दिया था;

(२) इनायत ख़ाँ पंजाबी जो अस्थायी-ख़याल अच्छा गाते हैं और उनकी याददाश्त भी अच्छी है। यह बम्बई राज्य में और विशेषकर पूना में अधिक रहते हैं;

(३) बाबा रामप्रसाद जिन्हें ख़ाँ साहब ने अच्छे-अच्छे रागों की चीज़ें बताई थीं। बाबाजी बड़े गुणी व्यक्ति हुए हैं। यह हैदराबाद में मूसा नदी के किनारे पुराने पुल के नज़दीक एक बड़े मन्दिर के महन्त थे। जो भी गुणी हैदराबाद पहुँचते, बाबाजी उनकी दावत क़रते, गाना सुनते और कुछ नज़राना भी पेश करते थे।

इन लोगों के अतिरिक्त मुहम्मद सिद्दीक़ ख़ाँ ने अपने कुनबे के कुछ आदमियों को भी अच्छी तालीम दी है जिनमें शब्बू ख़ाँ, अब्दुल करीम ख़ाँ, उनके बड़े बेटे निसार अहमद ख़ाँ और छोटे बेटे नसीर अहमद ख़ाँ उर्फ़ बाबा उल्लेखनीय हैं।

नसीर अहमद ख़ाँ उर्फ़ बाबा

यह मुहम्मद सिद्दीक़ ख़ाँ के छोटे बेटे थे। इन्होंने हैदराबाद में ही अपने पिता की छत्रछाया में होश सँभाला और उन्हीं से संगीत विद्या में अच्छी तालीम पाई। यह बचपन से ही होनहार थे और हर महफ़िल में इनको गाने के लिए बिठाया जाता था। उस समय यह उम्र में छोटे होने पर भी अच्छी तालीम के असर से बड़े क़ायदे के साथ गाते थे और झिझक इन्हें तनिक भी नहीं महसूस होती थी। इसी तरह इन्होंने दिनों-दिन उन्नति की। जिस समय इनके पिता की मृत्यु हुई, यह आयु और कला दोनों की दृष्टि से अपने भरपूर यौवन में थे। उसके बाद यह हैदराबाद छोड़कर दिल्ली चले आए जहाँ इनके बुज़ुर्गों के बनाये हुए मकान मौजूद थे। कुछ दिन यह दिल्ली में रहे, फिर यहाँ भी तबीयत न लगी तो आगरे पहुँचे और कुछ दिन वहाँ भी मुक़ाम किया। अन्त में लखनऊ पहुँचे और इस स्थान को ही अपना स्थायी निवास बना लिया। वहीं यह मैरिस कालेज में संगीत के प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए और कई साल तक कालेज के काम को अच्छी तरह चलाते रहे। पर बहुत दिन तक इस काम में इनका मन नहीं लगा और आखिरकार उकताकर उससे इस्तीफ़ा दे दिया और आज़ादी के साथ रहने लगे। लखनऊ के बहुत-से

ताल्लुक़ेदार और दूसरे रईस इनसे बहुत प्रसन्न थे। इसके अलावा लखनऊ केन्द्रीय स्थान होने की वजह से सारे उत्तर प्रदेश में इनका नाम हो गया। अक्सर संगीत के प्रेमी इन्हें बुलवाते जिससे इन्हें प्रशंसा भी मिलती और धन भी। लखनऊ यह पन्द्रह बरस तक रहे। इसके बाद फिर इन्हें अपने वतन की याद ने बेचैन किया। इसलिए यह दिल्ली चले गए और बाद में फिर दिल्ली से हैदराबाद चले आए। हैदराबाद से यह कुछ दिनों बाद फिर दिल्ली लौट आए जहाँ १९४४ में इनका देहान्त हो गया। यह ख़याल, ध्रुपद, तराना बहुत अच्छा गाते थे और निस्सन्देह इनका काम बहुत प्रशंसनीय था। इन चीज़ों के अतिरिक्त पूरब ढंग की ठुमरी इनकी एक अपनी विशेषता थी जिसके लिए सारे हिन्दुस्तान में इनका नाम था।

दिल्ली के आस-पास के कलाकार

क़ादिरबख़्श

यह डासना नामक क़स्बे के रहने वाले थे। इनके घराने में बहुत दिनों से ख़याल-अस्थायी गाया जाता था। इनके पूर्वजों में कौड़ियाले मस्तक नाम के एक गवैये बहुत प्रसिद्ध हुए थे, मगर आज उनके बारे में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं है। क़ादिरबख़्श दिल्ली के शाही दरबार में सन् १८०० ईस्वी के आस-पास नौकर थे। इनके तीन बेटे थे—कुतुबबख़्श, मदार खाँ और हैदर खाँ।

कुतुबबख़्श

यह क़ादिरबख़्श खाँ के बेटे थे। इन्हीं को बाद में तानरस खाँ की पदवी मिली थी जिस नाम से यह भारतीय संगीत के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं। संगीत की शिक्षा इन्हें पहले घर ही में अपने पिता से मिली। पर इन्हें संगीत विद्या को और भी गहराई से अध्ययन करने का बड़ा शौक़ था। इसलिए यह शाही दरबार के मशहूर गवैये मियाँ अचपल के शागिर्द हो गए और इन्होंने उस्ताद की बहुत सेवा की। सुना है कि यह दिल्ली से कुतुब तक रोज़ पैदल जाते और आते थे और इनके उस्ताद घोड़े पर सवार चलते थे। बरसों तक इस तरह दस-बारह मील रोज़ चलने का क्रम रहा। इसीलिए इनके उस्ताद भी इनके ऊपर ऐसे प्रसन्न हुए कि इनको अपने घर पर घण्टों तक तालीम देते और रोज़ाना रास्ते में जो कुछ भी याद आता बताते जाते। कुतुबबख़्श ने अपने उस्ताद से ख़ूब अच्छी तरह तालीम हासिल की और मेहनत भी जैसी चाहिए थी, वैसी ही की। अन्त में यह ख़ुद भी हिन्दुस्तान के बेहतरीन गवैयों में

तानरस ख़ाँ

शुमार हुए। दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र ने जब इन्हें सुना तो वह भी बहुत ख़ुश हुआ। उसने इन्हें बहुत सारे इनाम दिए और तानरस ख़ाँ की पदवी भी प्रदान की। यही नहीं, सारे हिन्दुस्तान के राजा और नवाब इनसे बहुत प्रसन्न थे और इनका बड़ा सम्मान करते थे। मैंने अपने बुज़ुर्गों और दूसरे वयोवृद्ध गवैयों से सुना है कि इनकी दिलचस्प गायकी और लयदारी का हिन्दुस्तान भर में कोई जवाब नहीं था।

अस्थायी-ख़याल के अलावा यह तराने पर भी बहुत हावी थे। तराने में बोलों की काट-तराश का इन्हें विशेष अभ्यास था। इनकी तमाम तानें आमद की होती थीं। और आमद की तान में यह तराने के जिस बोल से चाहते, उठते और सम पर आ जाते जिससे सुनने वाले हैरत में रह जाते थे और हरेक के दिल से दाद निकलती थी। ख़ाँ साहब ने बहुत-से तराने ख़ुद भी बनाए हैं जो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उनमें से तीन-चार तराने हम इस पुस्तक के अन्त में दे रहे हैं।

शाही दरबार में नौकर होने और अक्सर गाने-बजाने ही में लगे रहने के साथ-साथ ख़ाँ साहब हिन्दुस्तान भर में घूमने-फिरने और नाम पैदा करने के लिए बड़े उत्सुक रहते थे। अपने प्रशंसकों को सुनने-सुनाने का भी इन्हें बेहद शौक़ था। इसीलिए रामपुर, जयपुर, ग्वालियर, अलवर अक्सर जाते रहते थे। कभी-कभी राजा और नवाब इन्हें बुलवाते और सुनते और कभी-कभी ख़ाँ साहब ख़ुद ही इन रियासतों में पहुँच जाते। दिल्ली के शाही गवैये होने के कारण हर जगह रईस और राजा इनका बड़ा सम्मान और अदब करते थे। इसके अलावा इनको सुनकर आनन्द भी उठाते थे। गायकी के उस्ताद होने के अलावा इन्हें मजलिस के इल्म में भी कमाल हासिल था और यह बड़े ही हाज़िर-जवाब और वाक्पटु थे। एक बार का ज़िक्र है कि जयपुर में महाराज रामसिंह के यहाँ एक विशेष जलसे में तानरस ख़ाँ भी मौजूद थे। मज-लिस में अच्छे-अच्छे गायक और तंतकार आए हुए थे। महाराज ने पूछा

"ख़ाँ साहब, राग ख़यालियों से रहता है या ध्रुपदियों से ?" ख़ाँ साहब ने फ़ौरन जवाब दिया, "सरकार, बिलम्पत में दोनों से राग क़ायम रहता है और द्रुत में सही रागिनी दोनों के लिए कठिन पड़ती है।" यह जवाब सुनकर महाराज बहुत ख़ुश हुए और बाकी उपस्थित लोगों ने भी इस उत्तर की बहुत ही प्रशंसा की। इस जलसे में मुबारक अली ख़ाँ, बहराम ख़ाँ, इमरत सेन, रजब अली आदि सभी लोग मौजूद थे। महाराजा साहब इनके गाने से बहुत प्रसन्न हुए और बहुत कुछ भेंट-पुरस्कार देकर इन्हें बिदा किया। दूसरे रोज़ यह दिल्ली जाने का इरादा कर रहे थे, लेकिन उसी समय रजब अली ख़ाँ इनसे मिलने आए और अपने यहाँ दावत खाने पर मजबूर कर दिया। तानरस ख़ाँ भी उन्हें अप्रसन्न नहीं करना चाहते थे, इसलिये दो-तीन दिन ठहरने को राज़ी हो गए। इस दावत में रजब अली ख़ाँ ने गुणीजनख़ाने के तमाम गाने-बजाने वालों को बुलाया था। इस दावत में ही अली बख़्श और फ़तह अली ख़ाँ तानरस ख़ाँ के शागिर्द हुए और उन्हें तम्बूरा लेकर गवैयों की महफ़िल में बैठने की इजाज़त मिली।

असल में पूरी घटना इस प्रकार है। उन दिनों गवैयों की महफ़िल में चाहे जिस व्यक्ति को बैठकर गाने की इजाज़त तब तक नहीं मिलती थी जब तक कोई ख़ानदानी गवैया उसे तैयार करके गाने की अनुमति न दे दे। अली बख़्श और फ़तह अली के पिता कालू मियाँ ने इस अवसर से लाभ उठाकर दोनों बेटों को इसी दावत में तानरस ख़ाँ का शागिर्द करा दिया था। ख़ाँ साहब ने इनको शागिर्द बनाकर महफ़िल में गाने की अनुमति दे दी और इन दोनों ने महफ़िल में बैठकर अपने पिता से सीखी हुई चीज़ें अच्छी तैयारी के साथ गाकर सारी महफ़िल को ख़ुश किया। इसके बाद तानरस ख़ाँ ने इनकी ओर विशेष ध्यान दिया और इन्हें अच्छी तरह सिखाया। उन्होंने ताड़ लिया था कि ये दोनों शागिर्द बहुत ही होनहार हैं। हुआ भी यही कि दोनों ने खूब तालीम भी हासिल की

और मेहनत भी जान तोड़कर की। उनका फल भी इन दोनों को ऐसा मिला कि सारे हिन्दुस्तान में इन दोनों के गाने की धूम मच गई।

इन दो शागिर्दों के अलावा तानरस ख़ाँ के शागिर्दों में अब्दुल्ला ख़ाँ, ज़हूर ख़ाँ, महबूब ख़ाँ, इनायत ख़ाँ आदि को भी अच्छे गवैयों में गिना जाता है। मैंने अपने बुज़ुर्गवार ग़ुलाम अब्बास ख़ाँ साहब से तानरस ख़ाँ के बारे में कई बातें सुनी हैं जिनमें से कुछेक यहाँ लिख रहा हूँ।

एक बात तो यह थी कि यह जब भी गाने बैठे तो रंग जमाकर और लोगों को खुश करके ही उठे। हर अवसर पर और हर समय ख़ाँ साहब की तबीयत गाने के लिए तैयार रहती। दूसरी विशेषता यह थी कि यह हर रंग का गाना गा सकते थे और गाते थे। महफ़िल पर एक नज़र डालते ही ताड़ जाते थे कि किस प्रकार की रुचि वाले लोग बैठे हैं और उसके अनुसार ही गाते तथा इस प्रकार जानने वाले और अनजान दोनों को ही खुश करके उठते। इनकी क़व्वाली का भी बड़ा नाम था और उससे बहुत लोग प्रसन्न होते थे। अजमेर-शरीफ़, कलिंजर-शरीफ़ और दिल्ली के तमाम दरगाहों के सज्जाद और पीरज़ादे इनकी क़व्वाली सुनकर खुश होते और इनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। संक्षेप में, तानरस ख़ाँ संगीत की हर शैली के मर्मज्ञ थे। बुज़ुर्गों से सुना है कि बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र भी इनको अपना उस्ताद मानता था और इनको हर तरह से प्रसन्न करने की कोशिश करता था। इसीलिए इन्हें रहने के लिए दो हवेलियाँ और इनके दूसरे सम्बन्धियों को भी कई मकान चाँदनी महल में मिले हुए थे। एक बार ख़ाँ साहब को नेपाल के महाराजा वीर शमशेर जंग बहादुर ने बुलाया और दिल्ली के बादशाह को एक पत्र लिखा कि ख़ाँ साहब को नेपाल जाने की आज्ञा दे दें। बादशाह ने इनकी यात्रा के लिए सारा प्रबन्ध करवाया और यह बड़े आराम से नेपाल पहुँचे। महाराज नेपाल ने इन्हें अपने पास ही ठहराया और बहुत ही ख़ातिर की। दो-तीन रोज़ के बाद ख़ाँ साहब का गाना सुना और बहुत

खुश हुए। इसके बाद दुबारा एक ख़ास दरबार बुलाया गया जिसमें तमाम अमीर-उमराव को गाना सुनने के लिए दावत दी गई। ख़ाँ साहब जब गाने के लिए बैठे तो ऐसा रंग जमा कि सारे दरबार में एक जादू-सा छा गया और हर व्यक्ति हैरत में था कि गाने में इतना असर होता है। महाराजा साहब ने इसी तरह कई बार इनका गाना सुना और बहुत ही प्रसन्न हुए। आख़िरी जलसे में महाराजा साहब ने तानरस ख़ाँ को एक हीरे का कंठा अपने हाथ से पहनाया और पन्ने का एक बाजूबन्द भी बाँधा और सोने के तमग़े के साथ हर तरह का सम्मान और पुरस्कार देकर इन्हें बिदा किया। इसी तरह रियासत जयपुर, अलवर, ग्वालियर, रामपुर, रीवाँ, दतिया वग़ैरह से भी इन्हें बेशुमार पुरस्कार और सम्मान मिला था। दिल्ली में मुग़ल राज्य के पतन के बाद, यानी १८५७ के बाद, ख़ाँ साहब को हैदवाबाद के निज़ाम ने बुलवा लिया और अपनी रियासत में बड़े आराम और सम्मान के साथ एक हज़ार रुपया वेतन देकर रक्खा। रहने के लिए इन्हें एक मकान दिया गया और सवारी का भी इन्तज़ाम किया। सन् १८९० के लगभग हैदराबाद में ही ख़ाँ साहब का स्वर्गवास हुआ और शाह ख़ामोश साहब की दरगाह के बाग़ में दफ़नाये गये।

तानरस ख़ाँ के कुछ शागिर्दों के नाम हम पहले लिख चुके हैं। उनके अलावा दो अन्य शागिर्दों का ज़िक्र भी उचित होगा। एक तो मेवात के रहने वाले उजागरसिंह थे जो प्रसिद्ध सारंगी बजाने वाले थे। तानरस ख़ाँ ने इनको बहुत-सी चीज़ें बड़े प्रेम से सिखाई थीं। दूसरा नाम है नन्हींबाई खेतड़ी वाली का। सुना है कि नन्हींबाई बहुत ही सुन्दर और आकर्षक स्त्री थी। मगर इनकी शागिर्द होने के पहले बहुत ही मामूली गाना गाती थी। एक रोज़ किसी महफ़िल में उसका और गोकी बाई का गाना निश्चित हुआ। उसका मामूली गाना गोकीबाई की नज़र में कब आ सकता था। उसने इसको सुनकर बहुत मज़ाक उड़ाया और कुछ ऐसी बातें भी कह दीं जिससे इसे बड़ी लज्जा हुई और इसने दिल

में ठान लिया कि अब मैं गाना सीख कर ही रहूँगी। उसने यह भी पक्का निश्चय किया कि मेहनत करके जब किसी योग्य बन जाऊँगी, तभी उनको मुँह दिखाऊँगी। यह दिल में ठान कर वह फ़ौरन दिल्ली के लिए रवाना हुई। दिल्ली पहुँचकर खाँ साहब की सेवा में उपस्थित हुई और पाँव पकड़कर बहुत रोने के बाद अपने आने का अभिप्राय प्रकट किया। खाँ साहब को उसकी बात सुनकर बड़ा तरस आया और उसे शागिर्द बनाकर गाना शुरू करा दिया। नन्हींबाई ने कई बरस तक उस्ताद से तालीम हासिल की और खूब मेहनत भी की। अन्त में उस्ताद ने उसे महफ़िल में गाने की अनुमति दे दी। उसके बाद नन्हींबाई जयपुर और जोधपुर गई। अब तो इसका रंग ही और था। गोकीबाई ने जब सुना तो फ़ौरन गले से लगा लिया और बोली, "बहन, ग़ैरत हो तो तुम्हारी जैसी हो।" इसके बाद नन्हींबाई का नाम भी हिन्दुस्तान में खूब हुआ। बड़े-बड़े राजे-महाराजे इनका गाना सुनकर खुश होते थे। महाराजा जोधपुर ने तो इनका बहुत ही सम्मान किया, नौकरी भी दी और जागीर भी प्रदान की।

तानरस खाँ में सचमुच ही बहुत-सी खूबियाँ थीं। यह बहुत ही नेक तबीयत के, चरित्रवान और उदार प्रकृति के व्यक्ति थे। अपने निकट के सगे-सम्बन्धियों की सदा सहायता करते रहे। कहा जाता है कि हैदराबाद से कई विधवाओं के नाम मासिक सहायता मनीआर्डर द्वारा भेजा करते थे। यह बड़े धार्मिक स्वभाव के व्यक्ति थे और हज भी गए थे।

इनके दो बेटे थे। बड़े गुलाम ग़ौस खाँ जो मुंशी फ़ाज़िल थे। दूसरे उमराव खाँ जिन्होंने अपने पिता से गाने की तालीम हासिल की और देश भर में नाम पाया। तानरस खाँ की मृत्यु के बाद इनका चहल्लुम इनके पुत्रों ने बड़ी धूमधाम से दिल्ली में किया था और तीन दिन तक रात-दिन जलसा होता रहा था। इस मौके पर बहुत-से बड़े-बड़े गवैये जमा हुए थे। इनके अलावा खाँ साहब के तमाम दोस्त और शागिर्दों का भी

काफ़ी मजमा था। इन सबकी ख़ातिरदारी का बहुत अच्छा इन्त-ज़ाम किया गया था और हज़ारों की दावत का सामान इकट्ठा हुआ था। सुना है कि इस अवसर पर रोज़ गाने-बजाने का जलसा होता था।

उमराव ख़ाँ

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, यह तानरस ख़ाँ के छोटे पुत्र थे। संगीत विद्या की शिक्षा इन्हें अपने पिता से भली भाँति प्राप्त हुई थी और परिश्रम तथा अभ्यास भी यह जीवन भर करते रहे। यही कारण था कि यह जब भी गाने बैठते तो हमेशा इनका रंग जमता था। बहुत दिनों तक उमराव ख़ाँ हैदराबाद दक्षिण में निज़ाम के दरबार में रहे। स्वर्गीय नवाब मीर महबूब अली ख़ाँ के दिनों से लगाकर मीर उसमान अली ख़ाँ के राज्याभिषेक तक, और शायद इससे कुछ दिनों बाद तक भी, यह हैदराबाद के दरबार में शाही गवैये थे। इसके बाद इन्दौर के महा-राजा तुकोजीराव होल्कर ने अपनी रियासत में इन्हें बुलवाया। जब यह इन्दौर पहुँचे तो होली के दिन थे और वहाँ हिन्दुस्तान के अच्छे-से-अच्छे गाने-बजाने वाले जमा थे। महाराज इनके गाने से बहुत ही प्रसन्न हुए और कई बार सुना। इनकी गायकी की उन्होंने बेहद तारीफ़ की और बहुत सम्मान और पुरस्कार इत्यादि प्रदान किए। उसके बाद ग्वालियर के महाराज माधोराव सिंधिया ने इन्हें अपने यहाँ बुलाया और अपने राज्य में विशेष दरबारी गवैया नियुक्त किया। यहाँ यह कुछ ही वर्ष रह पाये। उसके बाद जब महाराजा माधोराव सिंधिया का पेरिस में देहान्त हो गया तो ख़ाँ साहब की तबीयत नौकरी में नहीं लगी और यह हैदराबाद दक्षिण वापस आ गए। उमराव ख़ाँ ने कितने शागिर्दों को सिखाया, यह तो मुझे नहीं मालूम, मगर अपने पुत्रों को बड़ी अच्छी शिक्षा दी थी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सरदार ख़ाँ

यह उमराव ख़ाँ के पुत्र हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, इनके पिता ने इन्हें संगीत की शिक्षा बहुत अच्छी तरह से दी थी। इनके गाने में एक विशेषता है। यह बहुत ठहराव और गम्भीरता के साथ स्वर का आनन्द उठाते हुए गाते हैं और सुननेवालों को मस्त बना देते हैं। तैयारी भी इनकी कम नहीं है मगर सुर के लगाव और बढ़त की तरफ़ इनकी प्रवृत्ति ज़्यादा है। यह एक बहुत ही अपूर्व विशेषता है। हम आजकल के नौजवानों को सुनते हैं तो उनमें ज़्यादातर तैयारी की तरफ़ रुझान पाते हैं और वे लोग शुरू से आख़ीर तक तान और फिरत पर ही ज़ोर देते हैं जिससे सुनने वालों को मज़ा तो आ जाता है मगर दिल को चैन नहीं मिलता। सुर की बढ़त एक बड़ा भारी काम है। सरदार ख़ाँ के गाने से दिल को शान्ति और आत्मा को सन्तोष मिलता है। वास्तव में यह भगवान की देन है जो सबको नहीं मिलती। यहाँ मैं विशेष रूप से नौजवान गानेवालों का ध्यान इस बात की ओर खींचना चाहता हूँ कि उन्हें पहले स्वर में सच्चाई पैदा करनी चाहिए जिससे गाने में असर हो। वास्तविक उन्नति का रहस्य यही है। सरदार ख़ाँ १९३५ से लाहौर में ही रहते हैं जहाँ इनके और इनके बुज़ुर्गों के बहुत-से शागिर्द हैं।

तानरस ख़ाँ के परिवार के अन्य गवैये

तानरस ख़ाँ के पोते और ग़ुलाम ग़ौस ख़ाँ के बड़े बेटे अब्दुल रहीम ख़ाँ भी अच्छे गानेवाले माने जाते थे। इन्हें अपने परिवार के बुज़ुर्गों से बड़ी अच्छी तालीम मिली थी। प्रकृति ने इनके गले में और आवाज़ में बड़ा दर्द दिया था। इनकी तान में बड़ी रवानी थी और यह बड़ा खुला हुआ गाना गाते थे। इनकी लयदारी का दूर-दूर जवाब नहीं था और यह अस्थायी-ख़याल, तराना, तिरवट हर ढंग के उस्ताद थे। इन्हें बचपन से ही उर्दू शायरी का भी शौक़ था और यह महाकवि दाग़ के शागिर्द थे। इनका उपनाम था 'नादिर' था और यह बहुत अच्छी ग़ज़लें कहते थे। यह

हैदराबाद रियासत में बहुत दिनों तक नौकर रहे। सन् १९३० के लगभग, सत्तर साल की उम्र में इनका स्वर्गवास हुआ। इनके शागिर्द बहुत कम नज़र आते हैं क्योंकि उन दिनों हैदराबाद में क़व्वाली का ज़्यादा रिवाज़ था और संगीत विद्या की तरफ़ ज़्यादा लोगों का रुझान न था। यही कारण है कि कई बार इन संगीत के उस्तादों को भी क़व्वाली गाने पर मजबूर होना पड़ता था।

अब्दुल करीम ख़ाँ ग़ुलाम ग़ौस ख़ाँ के मँझले बेटे थे। इन्हें भी अपने ख़ानदान के बुज़ुर्गों से अच्छी तालीम मिली थी। पुराने लोगों की चीज़ें इन्हें बहुत ही याद थीं और अक्सर जलसों में बैठते ही अपना रंग जमा लेते थे। इनकी गायकी बहुत ख़ूबसूरत थी, ख़ासकर बोलतान बड़ी आकर्षक और बरजस्ता निकलती थी जिसे सुनकर श्रोता वाह-वाह किये बिना नहीं रहते थे। हैदराबाद में क़व्वाली का अधिक प्रचार होने के कारण अब्दुल क़रीम ख़ाँ क़व्वाली की मजलिसों में भी जाते थे और उर्दू-फ़ारसी की सुन्दर कविताएँ सुनाकर लोगों को प्रसन्न कर देते थे। यह स्वयं भी फ़ारसी के अच्छे विद्वान थे।

हैदर ख़ाँ के पुत्र और तानरस ख़ाँ के भतीजे शब्बू ख़ाँ ने भी संगीत विद्या सीखी थी। इनकी तबीयत बड़ी मुश्किलपसन्द थी और अपने ख़ानदान की कुछ कठिन गायकी गानेवाले लोगों से भी इन्होंने शिक्षा ली थी। इनके गले से पेचीदा तानें और कठिन फंदे बड़ी आसानी के साथ निकलते थे जिससे इनकी फिरत का अन्दाज़ अपने ख़ानदान से निराला मालूम होता था। बहुत बार इनकी तानों के बल सुनने वालों की समझ में भी न आते थे। यह जीवन भर हैदराबाद में ही रहे और सन् १९३९ के लगभग इनका देहान्त हुआ। इन्होंने अपने भानजे प्यारे ख़ाँ को अच्छा तैयार किया था।

उमराव ख़ाँ के अन्य शागिर्दों में अब्दुल अजीज़ ख़ाँ भी एक थे। यह शाहदरे के ख़ानदानी गवैये महमूद ख़ाँ के पुत्र थे। तानरस ख़ाँ से इनकी रिश्तेदारी भी थी और यह दिल्ली में ही रहते थे। इन्होंने

उमराव ख़ाँ के अलावा मुहम्मद सिद्दीक़ ख़ाँ से भी शिक्षा पाई थी। गायकी इनकी अस्थायी-ख़याल की ही थी, मगर ध्रुपद, धमार भी बहुत अच्छा गाते थे। लयकारी बहुत अच्छी थी। यह हिन्दुस्तान की बहुत-सी रियासतों में घूमे-फिरे थे। सन् १९२८ में यह रियासत धरमपुर गुजरात में नौकर हुए और वहीं बहुत दिन तक रहे। १९३८ में यह बम्बई आ गए और वहीं १९४० में इनका देहान्त हुआ।

महमूद ख़ाँ के दूसरे बेटे मसीद ख़ाँ थे। इनका ठीक नाम मशीयत ख़ाँ था, पर आम तौर पर इनको मसीद ख़ाँ ही के नाम से जाना जाता है। यह अस्थायी-ख़याल ख़ूब गाते थे। कुछ चीज़ें इन्होंने बनाई भी हैं जिनमें अपना उपनाम 'मगनपिया' रक्खा है। आज भी इनकी चीज़ें लोग अक्सर गाते हैं। इनका रहना अतरौली में ज़्यादा रहा। इनको हिकमत का भी शौक़ था, इसलिए १९१५ में जब यह हैदराबाद पहुँचे तो वहाँ हिकमत करने लगे थे। इनका देहान्त हैदराबाद में ही हुआ।

फ़तह अली और अली बख़्श

यह दोनों मुँहबोले भाई थे और १८५० ईस्वी में पटियाला में पैदा हुए थे। पहले दोनों ने अली बख़्श के पिता मियाँ कालू से संगीत की शिक्षा ली थी। ये दोनों ही बड़े तीक्ष्ण-बुद्धि, परिश्रमी और ग़ैरतमन्द थे। इन्होंने जयपुर में बहुत-से ऊँचे गवैयों को सुना था और उनके ढंग पर मेहनत की थी। इस समय तक ये किसी नामी उस्ताद के शागिर्द नहीं हुए थे पर मियाँ कालू चाहते थे कि इन्हें किसी बड़े बुज़ुर्ग के शागिर्द कराएँ ताकि कलाकारों की सभा में भी इन्हें उचित आदर मिले। संयोगवश 'उन्हीं दिनों दिल्ली से तानरस ख़ाँ जयपुर आए हुए थे और उनकी दावत का जलसा हो रहा था। मियाँ कालू ने यह अवसर उचित समझा और दोनों को एक बड़े जलसे में तानरस ख़ाँ का शागिर्द करा दिया। उसी जलसे में मियाँ कालू ने इन दोनों को सब कलाकारों को सुनवाया और यह कहा कि जो कुछ मैंने बताया है, वह सुन लीजिए,

आगे अब खाँ साहब बताएँगे। तानरस खाँ इन दोनों की तीक्ष्ण बुद्धि से बहुत प्रभावित हुए और इन्हें बड़े चाव से सिखाया। इन लोगों ने भी जी तोड़ मेहनत करने में कोई कसर न उठा रखी और बड़ी लगन से तानरस खाँ साहब की कला सीखी। इन दोनों की तैयारी की मिसाल उन दिनों भी बहुत कम मिलती थी। इसीलिए सारे हिन्दुस्तान में राजा-महाराजा और संगीत के गुणी लोग इनकी बड़ी आवभगत करते थे। टोंक-नरेश नवाब इब्राहीम खाँ ने तो, जो गायन कला के बड़े पारखी थे, इन्हें 'जनरल-कर्नल' की पदवी दी थी और तब से आज तक ये लोग इसी नाम से पुकारे जाते हैं। ये दोनों टोंक दरबार में बहुत दिनों तक रहे। बाद को पटियाला-नरेश के बहुत अनुरोध पर नवाब ने इन्हें वहाँ रहने की आज्ञा दे दी। इन दोनों की विशेषता यह थी कि सभी घरानों के बड़े-बूढ़ों का आदर करते थे और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करते थे। साथ ही हिन्दुस्तान में कोई ऐसा शहर या क़स्बा न था जहाँ इनकी कीर्ति नहीं पहुँची। ये दोनों अपने शरीर का बड़ा ख़याल रखते थे और रोज़ व्यायाम करते थे। सन् १९२० के लगभग इन दोनों की मृत्यु हुई।

तानरस खाँ के समकालीन प्रसिद्ध गायकों में ज़हूर खाँ सिकन्दराबाद वाले, नत्थन खाँ, रहमत खाँ ग्वालियर वाले, अतरौली के अल्लादिया खाँ, महमूद खाँ 'दर्स', पुत्तन खाँ जोधपुर वाले, नज़ीर खाँ और तानरस खाँ के सुपुत्र उमराव खाँ आदि थे।

मियाँ जान खाँ

अली बख़्श खाँ के भानजे मियाँ जान खाँ भी अच्छे गवैये हुए। यह बचपन से ही बहुत होनहार थे पर इनकी शिक्षा पर अली बख़्श खाँ ने कोई ध्यान नहीं दिया था। बल्कि इनके नाना मियाँ कालू ने बड़ी मेहनत के साथ इनको संगीत सिखाया था। यह अस्थायी-ख़याल बहुत अच्छा गाते थे। इनका गाना बहुत ही मज़ेदार और खुला हुआ था। पंजाबी गायकों में ऐसे बहुत कम हुए हैं। मैसूर, बड़ौदा, टोंक, पटि-

याला, इन्दौर आदि रियासतों में इनका बड़ा मान हुआ और महाराजा होल्कर ने तो इन्हें अपने दरबार में जगह दी जहाँ यह जीवन भर रहे।

आशिक़ अली ख़ाँ

फतह अली ख़ाँ के पुत्र आशिक़ अली ख़ाँ थे। अपने पिता से इन्होंने बड़े ऊँचे दर्जे की तालीम हासिल की थी और स्वयं परिश्रम भी पूरा-पूरा किया था। यह बहुत तैयार गाते थे और पंजाब के प्रसिद्ध गायक थे। मैंने इन्हें कई बार सुना है। यह बड़े भोले और साधु प्रकृति के आदमी थे। घमंड इन्हें छू भी नहीं गया था। साठ साल की आयु में पंजाब में इनका देहान्त हुआ।

काले ख़ाँ

काले ख़ाँ फ़तह अली ख़ाँ के शागिर्द थे। यह बहुत दबंगा गाना गाते थे पर इनकी गायकी बड़ी साफ़-सुथरी थी और सुर तथा लय के ये बहुत सच्चे थे। इनकी फिरत बहुत तैयार तथा पेचदार थी। इन्होंने हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े शहरों में जाकर लोगों को प्रसन्न किया। बम्बई में भी कुछ दिन रहे जहाँ लोग इनसे बहुत प्रसन्न थे। इनका देहान्त सन् १६१५ में कानपुर में हुआ।

गुलाम अली ख़ाँ

गुलाम अली ख़ाँ, जो 'बड़े' गुलाम अली ख़ाँ के नाम से मशहूर हैं, काले ख़ाँ के भतीजे और अली बख़्श कसूर वाले के सुपुत्र हैं। तालीम इन्हें अपने पिता से ही मिली और अस्थायी-ख़याल यह बहुत अच्छा गाते हैं। इनका गाना बहुत तैयार और असरदार है। विभाजन के पहले हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े शहरों में बुलवाये जाते थे और इनका बड़ा आदर-सत्कार होता था। उसके बाद यह पाकिस्तान चले गए। हाल ही में यह फिर हिन्दुस्तान लौट आए हैं और सुना जाता है कि अब यहीं रहेंगे।

यह अपने सुपुत्र को भी संगीत की शिक्षा दे रहे हैं। आशा है कि वह भी अच्छे गवैये होंगे। इनके भाई बरक़त अली भी अच्छा गाते हैं।

ग़ुलाम मुहम्मद ख़ाँ

लाहौर के ग़ुलाम मुहम्मद ख़ाँ भी बहुत अच्छे गवैये हुए हैं। शुरू में यह सारंगी बजाते थे और अली बख़्श की शिष्या प्रसिद्ध गायिका सरदार-बाई के यहाँ नौकर थे। तालीम के वक्त ग़ुलाम मुहम्मद ख़ाँ सारंगी बजाया करते थे। यह सिलसिला कुछ रोज़ चलता रहा, पर जब सरदार-बाई ने देखा कि उसकी तालीम के साथ यह सारंगीवाला भी सीख रहा है तो उसने तालीम के समय इन्हें किसी न किसी काम से बाहर भेजना शुरू कर दिया। यह बात कुछ दिन तो इन्होंने सहन की पर एक दिन आख़िर कह ही बैठे, "बाई, तुम रोज़ तालीम के वक्त मुझे बाहर भेज देती हो। इसमें मेरा नुकसान होता है। कुछ मुझे भी हासिल करने दो।" इस पर सरदारबाई ने ताना दिया, "अगर ऐसा ही संगीत का शौक़ है तो सारंगी क्यों बजाता है, गाता क्यों नहीं।" यह सुनकर ग़ुलाम मुहम्मद को बड़ी शर्म महसूस हुई और उसने उसी समय सारंगी उसके सामने ही ज़मीन पर दे मारी और कहा, "अब मैं तुम्हें गाकर ही दिखाऊँगा।" इतना कहकर यह अपने घर चल दिये। इतने दिन सुनने के कारण तालीम तो इनके मन में बसी ही हुई थी। बस मेहनत की ही कसर थी। इसके बाद यह तीन बरस तक घर से नहीं निकले और अपनी माँ के ज़ेवर बेच-बेच कर गुज़र करते रहे। इस बीच इन्होंने स्वयं भी जी तोड़ मेहनत की और अपने दोनों भाई रमजान ख़ाँ और अता मुहम्मद को भी मेहनत कराते रहे। उसके बाद दिल्ली वाले उमराव ख़ाँ के शिष्य होने के ख़याल से दिल्ली पहुँचे। इनकी लगन देखकर उमराव ख़ाँ ने इन्हें अपना शागिर्द बना लिया और लगभग छह महीने तक इन्हें सिखाया। इसके बाद यह आज्ञा दी कि हिन्दुस्तान में घूमो। घूमते-घूमते यह बनारस पहुँचे जहाँ छह महीने तक एक सराय में टिककर

और चने चबा-चबा कर रियाज़ करते रहे। जब बनारस के लोगों को इनका पता चला और इनका गाना सुना तो वे इन पर एकदम लट्टू हो गए। फिर तो बनारस में कोई संगीत सभा ही इनके बिना नहीं होती थी। इन्होंने बनारस वालों का ऐसा मन मोहा कि पहले के सारे रंग फीके पड़ गए और इनका नाम बच्चे-बच्चे की ज़बान पर हो गया। यहाँ से घूमते-घामते यह फिर नागपुर पहुँचे और वहाँ नागपुर के प्रसिद्ध बाबा ताजुद्दीन ख़ाँ के दरबार में हाज़िर हुए। वह इनसे इतने प्रसन्न हुए कि रात-दिन इनका गाना सुनते थे। यहाँ भी यह लगभग छह महीने तक रहे। इसके बाद इनकी इच्छा हुई कि कलकत्ता जाएँ। इसके लिए इन्होंने दो बार बाबा से आज्ञा माँगी तो उन्होंने मना कर दिया। लेकिन जब तीसरी बार ज़ोर दिया तो बाबा बोले, "जाओ।" ग़ुलाम मुहम्मद ख़ाँ ने बाबा से कहा, "बाबा जी, ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि कलकत्ते में मेरा काम हो जाय।" बाबाजी बोले, "कलकत्ते जाते ही तुम्हारा काम हो जायगा।" ग़ुलाम मुहम्मद वहाँ से चलकर कलकत्ते पहुँच गए, पर वहाँ पहुँचते ही हैजा हुआ और इस तरह इनका काम तमाम हुआ। बड़े दुःख की बात है कि यह बहुत ही कम उम्र में स्वर्गवासी हो गये। इसमें कोई संदेह नहीं कि अगर यह जीवित रहते तो भारत के संगीत-संसार में बहुत ऊँचा स्थान पाते। इनके भाई अता मुहम्मद और रमज़ान ख़ाँ अब भी जीवित हैं।

आगरे का पहला घराना

श्यामरंग और सरसरंग

हाजी सुजान ख़ाँ के ख़ानदान में सन् १७८० में श्यामरंग नामक एक गवैये हुए थे। इनकी नौहार बानी बड़ी मशहूर थी। आलाप, ध्रुपद, होरी, धमार का गाना इनके घराने में बादशाह अकबर के ज़माने से चला आ रहा था। यह विद्यार्थियों को अपना संगीत बड़े प्रेम से सिखाते थे और इनके शागिर्द कई जगह फैले हुए थे। यह काशी-नरेश महाराज वीरभद्र सिंह के पास, जो उन दिनों आगरे ही रहते थे, बहुत दिनों तक बड़े सम्मान के साथ रहे। इनके भाई सरसरंग ने भी अच्छी तालीम पाई थी और मेहनत भी ख़ूब की थी। आलाप, होरी और ध्रुपद यह भी बहुत अच्छा गाते थे। यह अपने भाई के साथ ही काशी-नरेश के यहाँ नौकर रहे और कभी आगरे से बाहर नहीं गये। इन्हें हिन्दी भाषा का ज्ञान बहुत अच्छा था और उसमें यह बड़ी अच्छी कविता करते थे। इन्होंने अपनी बनाई हुई चीज़ें बहुत-से शागिर्दों को सिखाईं जो आज भी सुनने में आती हैं।

घग्घे ख़ुदाबख़्श

यह श्यामरंग के छोटे पुत्र थे और इनका जन्म सन् १८०० में आगरे में हुआ था। यह हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध गायकों में बड़े उच्च कोटि के माने जाते हैं। सबसे पहले इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से ही आलाप, होरी, ध्रुपद आदि की तालीम मामूली तौर पर पाई थी। परन्तु इनकी आवाज़ घग्घी थी, इसलिए इनके बुज़ुर्ग इनकी ओर ज़्यादा ध्यान नहीं देते थे। इस बात का इन्हें हमेशा रंज रहता था। इसी सिलसिले में एकाएक

इनके दिल में ग्वालियर जाने का विचार आया और यह आगरे से ग्वालियर के लिए रवाना हो गए। यह वह ज़माना था जब रेलगाड़ी शुरू भी नहीं हुई थी। कहीं दूसरे स्थान पर जाने के लिए यात्रियों का क़ाफ़िला पहले तैयार होता था और हर मुसाफ़िर अपनी जान-माल की हिफ़ाज़त के लिए तलवार-भाला वग़ैरह हथियार लेकर क़ाफ़िले के साथ शामिल होता था। ऐसे क़ाफ़िले निश्चित समय पर पूरे बन्दोबस्त और इन्तज़ाम के साथ अपनी यात्रा के लिए चला करते थे। आगरे से ग्वालियर तक का रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ और ऊँचे-नीचे टीलों से भरा पड़ा था। उसमें ठग अक्सर मुसाफ़िरों को लूट लिया करते थे। जिस क़ाफ़िले में घग्घे ख़ुदाबख़्श ग्वालियर के लिए चले, उस पर रास्ते में हमला हुआ मगर क़ाफ़िले वालों ने मिलकर बड़ी हिम्मत के साथ ठगों का मुक़ाबला किया और आख़िरकार सही-सलामत ग्वालियर पहुँच गए। ग्वालियर पहुँचते ही मियाँ ख़ुदाबख़्श ने दरगाह में पहुँचकर प्रार्थना की और सही-सलामत पहुँच जाने के लिए ख़ुदा का शुक्रिया अदा किया।

इसके बाद यह फ़ौरन ही मियाँ नत्थन खाँ और पीरबख़्श की सेवा में हाज़िर हुए और उन्हें अपनी सारी कहानी शुरू से आख़ीर तक सुना दी। वे दोनों इनकी बात सुनकर बड़े प्रभावित हुए और इन्हें बहुत दिलासा देकर बड़ी मुहब्बत के साथ अपने पास ठहराया। मियाँ नत्थन ख़ाँ और पीरबख़्श ने आगरे के घराने से कुछ होरी और ध्रुपद की तालीम पाई थी और उसी तालीम की ताक़त से अस्थायी-ख़याल में भी बड़ा ऊँचा दर्जा हासिल किया था। इसलिए इन लोगों ने ख़ुदाबख़्श से कहा, "तुम तो हमारे उस्ताद के ख़ानदान के हो। अगर तुम्हें अस्थायी-ख़याल सीखना पसन्द है तो हम तुम्हें बहुत ख़ुशी से सिखाएँगे। मगर तुम्हारी आवाज़ सुधारने के लिए हमें बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। साथ ही उससे भी अधिक मेहनत और रियाज़ तुम्हें करना पड़ेगा। अगर तुम इसके लिए तैयार हो तो तुम्हारी तालीम शुरू कर दी जाएगी।" मत-

लब यह है कि खूब ठोक-बजाकर मियाँ घग्घे खुदाबख्श की तालीम शुरू हुई और यह उस्ताद से अस्थायी का सबक़ लेने लगे तथा उस्ताद के बताये हुए तरीक़े पर अपनी आवाज़ बनाने के लिए मेहनत करने लगे। इस तरह से मेहनत करते-करते इन्हें बरसों बीत गए। यह सबेरे उस्ताद से तालीम लेते और बाक़ी वक्त मेहनत करते या उस्ताद की सेवा में लगे रहते। अन्त में गुरु की शिक्षा और शिष्य की मेहनत और अभ्यास का पूरा-पूरा फल भगवान ने इन्हें दिया। अब इनकी आवाज़ भी बहुत साफ़ और गोल हो गई जिसमें सुरों की सचाई से बेहद असर पैदा हो गया। साथ ही मियाँ नत्थन और पीरबख्श की पूरी-पूरी गायकी उनके गले में उतर आई। धीरे-धीरे ऐसा भी वक्त आ गया कि उस्ताद अपने इस सेवक और मेहनती शागिर्द का गाना सुनकर बहुत खुश होते और इनके लिए उनके दिल से दुआएँ निकलती थीं। इस प्रकार हर तरह से इन्हें सँवार कर और सुनकर उस्ताद ने इन्हें आगरा जाने की और सारे हिन्दुस्तान में दौरा कर गाना सुनने-सुनाने की अनुमति दे दी।

जब मियाँ घग्घे खुदाबख्श आगरा पहुँचे और वहाँ के लोगों ने इनका गाना सुना तो वे दंग रह गए। अब तो यह हालत थी कि दुश्मन भी इनका गाना सुनते तो तारीफ़ किये बिना न रह सकते थे। कुछ दिन घर रहकर यह रियासत अलवर पहुँचे जहाँ महाराजा शिवदानसिंह गाने-बजाने वालों की बड़ी ख़ातिर करते थे। इनका गाना सुनकर महाराजा भी तड़प गए और इनकी बहुत ही तारीफ़ की। इसके अतिरिक्त उन्होंने इन्हें बहुत कुछ पुरस्कार-भेंट इत्यादि भी दिए। अलवर से ख़াँ साहब जयपुर पहुँचे जहाँ के राजा सवाई रामसिंह संगीत के बड़े भारी प्रेमी थे और जिनके दरबार में रजब अली ख़ाँ, इमरतसेन, मुबारक अली ख़ाँ बहराम ख़ाँ जैसे बहुत ही उच्च कोटि के गुणीजन इकट्ठे थे। महाराजा रामसिंह भी इनके पुरअसर गाने को सुनकर बहुत ही प्रभावित हुए और इन्हें अपने दरबारी गवैयों में स्थान दिया जिसे इन्होंने बड़ी खुशी-खुशी

स्वीकार कर लिया और जयपुर में रहने लगे। इसके बाद ख़ाँ साहब की शोहरत सारे हिन्दुस्तान में फैल गई और हर स्थान के गायन विद्या के प्रेमी इन्हें अपने यहाँ बुलाने और सुनने के लिए बहुत उत्सुक रहते लगे। इस भाँति ग्वालियर, धौलपुर, झालावाड़, टोंक, रामपुर, काशी, सुरसान, बल्लभगढ़, रीवाँ, भरतपुर आदि सभी स्थानों के राजा और रईस इनके बड़े प्रेमी थे और इन्हें अपने यहाँ बुलाते रहते थे।

इनके रामपुर जाने की कहानी तो बड़ी ही दिलचस्प है। एक बार रामपुर के नवाब क़ल्बे अली ख़ाँ ने जब इनकी बहुत तारीफ़ सुनी तो इन्हें अपने यहाँ बुलवाना चाहा और इसलिए महाराजा रामसिंह को पत्र लिखा कि मियाँ घग्घे खुदाबख़्श को कुछ रोज़ के लिए रामपुर भेज दें तो हम भी उनका गाना जी भरकर सुनें। महाराजा साहब ने बहुत खुशी-खुशी ख़ाँ साहब को रामपुर जाने की आज्ञा दे दी और रामपुर तक के लिए सवारी वगैरह का पूरा-पूरा इन्तज़ाम कर दिया। जब ख़ाँ साहब रामपुर पहुँचे तो नवाब ने उनकी बड़ी खातिर की और कहा, "दो-एक रोज़ आराम कीजिए। सफ़र की थकान दूर हो जाने पर मैं आपको गाने के लिए तकलीफ़ दूँगा।" दो-तीन दिन बाद नवाब साहब ने इनको सुनने के लिए अपने महल में बुलवाया। ख़ाँ साहब अपने साज़ और साथियों को लेकर महल में उपस्थित हुए। वहाँ इन्हें एक कमरे में बिठा दिया गया जहाँ यह साज़ वगैरह मिलाकर नवाब साहब के पास बुलाये जाने का इंतज़ार करने लगे। कुछ देर के बाद नवाब साहब ने इन्हें याद किया। वे दिन बड़ी सख़्त गरमी के थे और उस समय नवाब साहब और उनके ख़ास-ख़ास दरबारी ख़सख़ाने में बैठे हुए थे जहाँ गुलाब और केवड़े से दिमाग़ तर हुआ जाता था। पंखों की हवा से सर्दी-सी महसूस होती थी। ख़ाँ साहब ने वहाँ पहुँचकर नवाब साहब को सलाम किया और बैठकर गाना शुरू कर दिया। मगर ख़सख़ाने की सर्दी का इनके गले पर बड़ा बुरा असर पड़ा और इनकी आवाज़ बैठ गई। उसके बाद यह बहुत कोशिश करते रहे मगर आवाज़

रास्ता ही न देती थी और बहुत-से कण इनसे अदा नहीं हो रहे थे। जब नवाब साहब ने यह हाल देखा तो पीछे मुड़कर बहादुर हुसैन खाँ से कहने लगे, "तुम तो इनकी बड़ी तारीफ़ करते थे, यह तो कुछ भी नहीं हैं।" ये बातें सुनकर ख़ुदाबख़्श को उस सर्दी में भी शर्म के मारे पसीना आ गया। इसी समय यह एक तान लेने की कोशिश कर रहे थे जो आवाज़ बैठ जाने के कारण इनसे अदा नहीं हो रही थी। इसलिए इनके बड़े बेटे मियाँ ग़ुलाम अब्बास खाँ ने, जो इनके पीछे बैठकर गा रहे थे, उस तान को काटकर अपनी सूझ से एक नई ही तान लगा दी। इस बात से भी खाँ साहब को बड़ी शरमिन्दगी हुई। तब उनसे न रहा गया और फ़ौरन ही पक्का निश्चय करके गाने के लिए जुट गए। इसके बाद टीप के स्वर पर पहुँचते ही उनकी आवाज़ एकाएक साफ़ हो गई और ऐसा मालूम हुआ जैसे बदली में से चाँद निकल आया हो। फिर तो खाँ साहब ने बड़ी लाग-डाँट के साथ स्वर की बढ़त शुरू की। नवाब साहब के दिल पर फ़ौरन इस चीज़ का असर हुआ और बेसाख़्ता खाँ साहब की तरफ़ घूमकर वाह-वाह करने लगे। उन दिनों रामपुर राज्य में यह नियम था कि नवाब साहब जैसे ही किसी गवैये की तारीफ़ करें उसी वक्त उसको इनाम दिया जाय। इसलिए उसी समय पाँच सौ रुपये की थैली खाँ साहब को मिली। उसके बाद तो ऐसा समा बँधा कि खाँ साहब अपने गाने में मस्त थे और नवाब साहब गाना सुनने में और बार-बार नवाब साहब इनके गाने की तारीफ़ करते और हर तारीफ़ पर खाँ साहब को एक थैली इनाम मिलती। दो-तीन घंटे तक लगातार इसी ढंग से नवाब साहब इनका गाना सुनते रहे। गाना समाप्त होने के बाद बोले, "इतना पुरअसर गाना हमने पहले कभी नहीं सुना।" उसके बाद नवाब साहब ने दो हफ़्ते तक इनको अपने पास रखा और कई बार इनका गाना सुनकर बहुत खुश हुए। चलते समय इन्हें बहुत कुछ पुरस्कार इनाम वग़ैरह भी दिया।

बिदा होने के पहले खाँ साहब ने नवाब साहब से अर्ज़ किया,

"मैंने सरकार के गाने की बड़ी तारीफ़ सुनी है, अगर इनायत फ़रमायें तो बड़ी ख़ुशनसीबी हो।" नवाब साहब बोले, "भई, मैं तुमको ज़रूर सुनाऊँगा और आज ही शाम को बैठेंगे।" शाम को नवाब साहब ने पाँच बजे इन्हें अपने महल में याद किया। इनके पहुँचने पर उन्होंने अपने तानपूरे की जोड़ी मँगवाकर अपने हाथ से मिलाई। तम्बूरे इतने सच्चे मिले थे कि मालूम होता था कि मानो स्वर की फुहार पड़ रही हो। उसके बाद नवाब साहब ने गाना शुरू किया तो सुननेवालों को सचमुच हैरत में डाल दिया। ख़ाँ साहब भी उनका गाना सुनकर तड़प गए और सच्चे दिल से उनकी तारीफ़ की। ख़ाँ साहब के जयपुर लौट आने के बाद नवाब साहब ने जयपुर-नरेश को पत्र लिखा जिसमें ख़ाँ साहब को रामपुर भेजने के लिए उनका बहुत आभार माना।

घग्घे ख़ुदाबख़्श साहब ने कई अच्छे-अच्छे शागिर्दों को तैयार किया था जिनमें से चार के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं: (१) ख़ाँ साहब के बड़े सुपुत्र ग़ुलाम अब्बास ख़ाँ, (२) इनके भतीजे शेर ख़ाँ, (३) अलीबख़्श ख़ाँ भरतपुर वाले और (४) पण्डित विश्वनाथ के सुपुत्र पण्डित शिवदीन, प्रधान मंत्री, जयपुर राज्य। इनका देहान्त सन् १८५० और १८६० ईस्वी के बीच में हुआ।

शेर ख़ाँ

यह जंघू ख़ाँ के सुपुत्र और मियाँ घग्घे ख़ुदाबख़्श के भतीजे थे। संगीत की तालीम इन्होंने अपने चचा से ही पाई। अस्थायी-ख़याल की गायकी पर इनको पूरा-पूरा अधिकार था और बड़ा ही पुरअसर गाना गाते थे। इनके गले की तान और फिरत बड़ी दमदार होती थी जिसकी शोहरत दूर-दूर तक थी। एक बार यह ग्वालियर गए। वहाँ पहुँच कर यह एक सराय में ठहरे। जब यह ख़बर हद्दू ख़ाँ को हुई तो फ़ौरन हाथी पर सवार होकर सराय में चले आये और वहाँ से अपने साथ घर ले जाकर ठहराया। इनका गाना सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न

हुए और इनकी तारीफ़ महाराज जीवाजी राव सिंधिया से भी की। इस पर महाराज ने भी इनका गाना सुना और वह भी बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें भरपूर पुरस्कार और सम्मान देकर विदा किया। आगरे लौटने के बाद यह कुछ ही दिन घर रहे। उसके बाद संयोग से इनका एक शागिर्द, जिसका कारोबार बम्बई में था, इन्हें अपने साथ बम्बई ले गया। बम्बई पहुँच कर ख़ाँ साहब अपने शागिर्दों को सिखाने के काम में जुट गये और जमकर वहीं रहे। बम्बई में इन्होंने कितने ही शागिर्दों को सिखाया और तैयार किया। यह लगभग तीस बरस बम्बई में रहे मगर इस अरसे में कभी अपने परिवार के लोगों के पालन से न चूके। जिस तरह हो सका वहाँ से रुपये भेजते रहे। सत्तर साल की उम्र में यह आगरे वापस लौटे और १८६२ ईस्वी के आस-पास पचहत्तर साल की उम्र में आगरे में ही इनका देहान्त हुआ। इन्होंने अपने चचेरे भाई गुलाम अब्बास ख़ाँ साहब को बड़ी अच्छी तालीम दी और बहुत मेहनत करके तैयार किया।

गुलाम अब्बास ख़ाँ

यह घग्घे ख़ुदाबख़्श साहब के बड़े सुपुत्र थे और सन् १८१८ से १८२० के दरम्यान आगरे में पैदा हुए थे। इनकी संगीत की तालीम इनके चचेरे भाई शेर ख़ाँ ने शुरू की थी और बरसों सिखाकर इन्हें तैयार किया था। यह अस्थायी-ख़याल बहुत ही ऊँचे दर्जे का गाते थे। साँस इनकी बहुत बड़ी थी और जब यह सुरों पर ठहर जाते तो सुनने वाला मंत्रमुग्ध-सा रह जाता था और दिल तड़प उठता था। मैंने ख़ुद इन्हें अपनी तालीम के ज़माने में और फिर बड़े होकर भी ख़ूब सुना है। जब भी यह किसी सुर पर ठहरते और बार-बार एक अन्दाज़ के साथ वही सुर लगाते थे तो दिल पर ऐसा गहरा असर पड़ता था जो इतने बरस बीत जाने पर भी आज तक बाक़ी है। इनके ज़माने के तमाम समझदार संगीत-प्रेमी रईस इनका बड़ा आदर करते थे और इन्हें अपने

यहाँ रखने के लिए उत्सुक रहते थे। खास कर अलवर, जयपुर, टोंक आदि राज्यों में तो इनकी बहुत ही माँग रहती थी। पर यह कहीं भी नौकर होकर नहीं रहे। सन् १९०७ में मैसूर के महाराजा ने इन्हें दशहरे के जलसे में बुलाया और सुनकर बहुत खुश हुए और सोने के तमग़े के अलावा भी बहुत-से पुरस्कार इन्हें दिए। इसी तरह यह कई बार मैसूर बुलाये गए थे।

मैंने इनसे इनके तालीमी ज़माने से लगाकर ज़िन्दगी के आख़ीर तक के सारे हालात सुने हैं। वह कहा करते थे कि उन्होंने तीस साल तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर सुरों की साधना की थी। पहले उन्होंने अपने बड़े भाई से अस्थाई-ख़याल की तालीम अच्छी तरह हासिल की। उसे पूरा करने के बाद अपने ममेरे भाई घसीट ख़ाँ से बहुत-सी धमारें और होरियाँ सीखीं। इसके बाद अमल के मैदान में क़दम रखा और सारे हिन्दुस्तान में नाम मशहूर हुआ। यह अपने ख़ानदान के बच्चों की तालीम में बहुत दिलचस्पी लेते थे। इसलिए इन्होंने अपने भतीजे नत्थन ख़ाँ को, अपने छोटे भाई कल्लन ख़ाँ को और इसके बहुत दिन बाद फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ को बड़ी मेहनत के साथ तालीम देकर तैयार किया।

इनके बारे में एक और दिलचस्प बात का उल्लेख करना यहाँ बड़ा ज़रूरी है। इन्हें अपने शारीरिक बल को बनाये रखने का बड़ा ध्यान रहता था और अक्सर कहा करते थे कि गवैया खायेगा नहीं तो गायेगा क्या! इसलिए अच्छे से अच्छा भोजन और नियत समय पर करते थे। बेवक्त तो मैंने इन्हें कोई चीज़ खाते ही कभी नहीं देखा। यह चलते भी बहुत धीरे-धीरे थे और मैंने कभी इन्हें भागते-दौड़ते या तेज़ चलते नहीं देखा। इसका कारण यह था कि यह अपनी साँस के ऊपर कोई बोझ नहीं डालना चाहते थे। इनसे कभी खाँसी-ज़ुक़ाम की शिकायत नहीं सुनी। इस बात का इनकी साँस के लिए बड़ा भारी फ़ायदा था। यह रोज़ सवेरे इक्कीस डंड लगाकर इक्कीस बादामों की ठंढाई, जिसमें पाँच

काली मिर्चें और साथ में मिश्री भी डाली जाती थी, पी लिया करते थे और रात को सोते समय आधा सेर दूध भी अवश्य पीते थे। इसमें मरते वक्त तक कोई फ़र्क़ नहीं आया। यह चीज़ आज के गवैयों के विशेष ध्यान देने की है। इस बात का जिक्र हम पहले ही कर चुके हैं कि मजलिस के इल्म का इन्हें अच्छा ज्ञान था। यह बातचीत में हिन्दी और फ़ारसी के दोहे और शेर ऐसे उपयुक्त ढंग से प्रयोग करते थे कि सुनने वाला वाह-वाह करता ही रह जाता। इनका देहान्त सन् १९३२ में हुआ।

कल्लन ख़ाँ

इनका असली नाम ग़ुलाम हैदर ख़ाँ था और यह घग्घे ख़ुदाबख़्श के छोटे बेटे थे। इनका भी जन्म आगरे में ही हुआ था। इनकी तालीम इनके बड़े भाई ग़ुलाम अब्बास ख़ाँ की देख-रेख में हुई और लगातार दस बारह साल होती रही। इनकी आवाज़ स्वभाव से ही साफ़ और अच्छी थी। यह अपने पिता के रंग का गाना बहुत अच्छा गाते थे और अपने ज़माने के श्रेष्ठ गवैयों में इनकी गिनती होती थी। इन्होंने अपने पिता के शागिर्द पंडित विशम्भरदीन से भी बहुत-सी जानकारी प्राप्त की। पंडित जी ने इन्हें घराने की बहुत सारी चीज़ें सिखाईं जिनमें होरी और ध्रुपद भी शामिल थे। महाराज माधोसिंह के ज़माने में इन्हें जयपुर राज्य में अपने भतीजे की जगह मिल गई। वहाँ नौकर होने के बाद इन्होंने गायन विद्या का प्रचार किया। दस-पाँच शागिर्द रोज़ इनके मकान पर आते और इनसे तालीम पाते थे। इनमें इनके भतीजे, पोते और नवासे भी शामिल हैं। फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ, इनके लड़के तसद्दुक़ हुसैन ख़ाँ, ख़ादिम हुसैन ख़ाँ, अनवर हुसैन, नन्हें ख़ाँ, बशीर ख़ाँ और मुझे भी तालीम इन्हीं से मिली। कल्लन ख़ाँ साहब बहुत ही सीधे-सच्चे बुज़ुर्ग थे और शागिर्दों को बड़े प्रेम से सिखाते थे। अपने परिवार के लोगों के अतिरिक्त इन्होंने मुरादाबाद के नज़ीर ख़ाँ, गफ़ूर ख़ाँ को भी अपनी जवानी के दिनों में ख़याल-अस्थायी की अच्छी गायकी सिखाई थी। इनके

आगरे के शागिर्दों में फिरदौसीबाई और जयपुर वाली बिब्बोबाई भी मशहूर हैं।

जयपुर में इनका जीवन बड़े ठाठ और आनन्द से बीता। वहाँ कोई भी नया गाने-बजाने वाला आता तो ख़ाँ साहब उसकी दावत ज़रूर करते। खाने-पीने के बाद जलसा शुरू होता जो रात-रात भर चलता रहता। इन जलसों में गवैये, तंतकार, साज़िन्दे सभी लोग जमा होते थे। मैंने ऐसे बहुत-से जलसे देखे हैं जो मुझे अभी तक याद हैं। इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि ख़ाँ साहब आगरा घराने के बड़े मशहूर उस्ताद थे। आप बाहर बहुत कम आते-जाते थे। एक बार पंडित भातखंडे ने अपनी आल इंडिया कान्फ्रेंस में शामिल होने पर मजबूर किया तो यह लखनऊ गए थे। सन् १९२५ के लगभग जयपुर में ही इनका देहान्त हुआ।

नत्थन ख़ाँ

इनका असली नाम निसार हुसैन ख़ाँ था और यह शेर ख़ाँ के इकलौते बेटे थे। इनके खानदान की नौहार बानी मशहूर थी। गाने की तालीम इन्हें अपने चचा गुलाम अब्बास ख़ाँ से मिली थी, पर उनके अलावा अपने घराने के दूसरे बुज़ुर्गों से भी इन्होंने बहुत-सी जानकारी प्राप्त की थी जिनमें घसीट ख़ाँ और ख़्वाजाबख़्श भी शामिल हैं। जब इनकी तालीम पूरी हुई तो इन्होंने हिन्दुस्तान के बड़े बड़े शहरों का दौरा किया और वहाँ के मशहूर गवैयों को सुना और सुनाया। इस तरह इनकी मेहनत भी ख़ूब होती रही और काम भी ख़ूब तैयार होता रहा जिससे इनकी ख्याति हिन्दुस्तान में दूर-दूर तक हो गई। इनकी गायकी में अस्थायी अन्तरे का भरना, बढ़त, बोलतान, लयदारी आदि बातें बड़ी विशेष थीं। ख़ाँ साहब बहुत ही 'बिलम्पत' लय में गाते थे, इतना कि तबले वाले को ठेका क़ायम रखना मुश्किल हो जाता था। दिलचस्प बात यह है कि इतनी गढ़ी हुई लय में भी 'बिलम्पत', मध्य, द्रुत, आड़

वगैरह, लय के तमाम हिस्से तान की फिरत में दिखाते थे और सम पर ऐसे आते थे जैसे निशाने पर तीर, जिसे सुनकर महफिल दंग रह जाती थी। इनके समकालीन गवैयों में अलीबख़्श ख़ाँ, फ़तह अली पटियाले वाले, ज़हूर ख़ाँ, क़ुदरत उल्ला ख़ाँ सिकन्दराबाद वाले, उमराव ख़ाँ दिल्ली वाले, नजीर ख़ाँ जोधपुर वाले, अल्लादिया ख़ाँ, महबूब ख़ाँ 'दर्स' अतरौली वाले, रहमत ख़ाँ ग्वालियर वाले और इनायत हुसैन ख़ाँ सहसवान वाले बहुत उल्लेखनीय हैं। इन सभी में आपस में बड़ा प्रेम था और ये सब एक-दूसरे के प्रशंसक थे। गाने-बजाने को लेकर कभी इनमें मन-मुटाव नहीं हुआ।

शुरू में यह कुछ बरस वतन में ही रहे और आस-पास की रियासतों में दौरा लगाकर वहाँ के रईसों को अपना गाना सुनाकर उन्हें खुश करते रहे। इसके बाद यह बड़ौदा आए। यहाँ के महाराजा और महारानी इनका गाना सुनकर बड़े प्रभावित हुए और यह जब तक वहाँ रहे, उन्होंने कई बार इनका गाना सुना और इनका सदा बड़ा सम्मान करते रहे। बड़ौदा में यह फ़ैज़ मुहम्मद ख़ाँ के मकान में ठहरे हुए थे जो स्वयं ख़ानदानी गवैये और बड़े गुणी आदमी थे। उनके मकान पर रोज़ बहुत से शागिर्द तालीम पाते थे। इनमें भास्करराव भखले नामक एक बहुत ही होनहार नौजवान था। फ़ैज मुहम्मद ख़ाँ ने अपने शागिर्द की आवाज़ और गले के गुणों और बुद्धि की प्रखरता को ताड़ लिया। उन्हें महसूस हुआ कि यह नौजवान आगे चलकर अवश्य बड़ा नाम पैदा करेगा। यह सब कुछ समझने के बाद उन्होंने नत्थन ख़ाँ से कहा, "भाई, इस लड़के को मैं आपके सुपुर्द करता हूँ। आप मेरे ही सामने इसे गंडा बाँध दें।" ख़ाँ साहब ने बहुत खुशी से यह स्वीकार किया और भास्करराव को अपना शागिर्द बनाकर तालीम देना शुरू कर दिया। कुछ दिनों बाद जब ख़ाँ साहब बम्बई आए तो भास्करराव इनके साथ ही साथ आ गए और तालीम पाते रहे। आगे चलकर भास्करराव सचमुच ही बहुत मशहूर

गवैये हुए जिसका ज़िक्र हम आगे करेंगे। बम्बई में ही गोआ की बावली-बाई इनकी शागिर्द हुई। उसने ख़ाँ साहब को बम्बई में ही ठहरा दिया और दस-बारह बरस वहीं रहने पर मजबूर किया। उसने ख़ाँ साहब से खूब सीखा और इनकी सेवा भी खूब की। बावलीबाई ख़ाँ साहब का सारा ख़र्च स्वयं बरदाश्त करती थी और उसने कभी ख़ाँ साहब को इस बात की तकलीफ़ नहीं दी कि वह कोई और दूसरा काम करें। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान भर में उसके जोड़ के गानेवाले बहुत ही कम नज़र आते थे। रामपुर, मैसूर, कोल्हापुर और कितने ही राज्यों के राजा उसे बार-बार बुलाते, सुनकर खुश होते और बहुत हीरे-जवाहरात इनाम में देते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नत्थन ख़ाँ साहब ने अपने शागिर्दों को अपने ही बच्चों की तरह सिखाया था।

सन् १८९० में मैसूर के महाराजा ने बम्बई में इनका गाना सुना और सुनते ही इतने प्रभावित हुए कि इन्हें अपने साथ ही मैसूर ले गए और अपना दरबारी गवैया बनाकर रक्खा। महाराजा साहब ने उनके आराम के लिए हर तरह का प्रबन्ध किया था जिसमें मकान, सवारी आदि सभी कुछ शामिल था। इसके अतिरिक्त महाराजा साहब जब भी इन्हें सुनते कुछ न कुछ इनाम ज़रूर देते। एक बार इन्हें एक सोने का कंगन दिया जिस पर रियासत की मोहर थी और हीरे-मानिक भी जड़े हुए थे। महाराजा ने कंगन देते समय कहा कि इसे दरबार वग़ैरह के मौक़े पर पहना करें। ख़ाँ साहब कुछ दिन तक तो उसे पहनते रहे पर बाद में आगे चलकर जब कुछ आर्थिक कठिनाई हुई तो उसे बेच डाला। जब महाराजा साहब ने एक बार दशहरे के दरबार में ख़ाँ साहब के हाथ ख़ाली देखे तो दरबार के बाद अकेले में इन्हें बुलाकर इसके बारे में कुछ पूछताछ की। ख़ाँ साहब ने बड़ी सादगी से जवाब दिया कि वह तो बच्चों के पेट में चला गया। महाराजा साहब इस वाक्य के ऊपर बड़े ज़ोर से हँस पड़े और फ़ौरन नया कंगन मँगवा कर अपने ही हाथ से ख़ाँ

साहब को पहनाया, और कहा, "यह दरबार की चीज़ है। इसे दरबार में ही पहनने को रख छोड़ो। अगर कभी कोई ज़रूरत हो तो मुझसे कहना।" इसी तरह एक बार दरबार में गाना सुनने के बाद अपनी हीरे की अँगूठी इनाम में दे दी थी। इस बात से यह अवश्य प्रकट होता है कि उस ज़माने के रईस गायन विद्या की कैसी क़द्र करते थे और कलावन्तों को कितना प्रसन्न रखते थे।

नत्थन ख़ाँ साहब के गाने के बारे में ऊपर लिखा ही जा चुका है। लेकिन बम्बई की एक घटना का उल्लेख करूँगा जो बहुत दिलचस्प है। एक बार बम्बई में खाँ साहब के गाने का जलसा था जिसमें इन्हें सुनने के लिए कुछ ऐसे गुणीजन भी आए थे जिन्होंने पहले कभी इनका गाना नहीं सुना था। उस रोज़ ख़ाँ साहब ने एकदम निराला ही रंग अख़्तियार किया। शुरू आलाप से किया और उसके बाद ध्रुपद और होरी गाते रहे। दो घण्टे तक वह सुर-मुद्रा बानी गाते रहे और गले से ज़रा-सी गिटकरी भी अदा नहीं की। जिन लोगों ने उस दिन पहली बार ही इन्हें सुना उन्होंने समझा कि ख़ाँ साहब के गले में फिरत नहीं है और सीधा-सच्चा तथा सुरीला गाना बहुत अच्छा गाते हैं। ये लोग अभी इसी सोच-विचार में थे कि ख़ाँ साहब ने ख़याल-अस्थायी शुरू कर दिया और दो-चार मिनट 'बिलम्पत' की बढ़त करके मध्य और द्रुत की लय शुरू कर दी। इसके बाद तो इनकी फिरत को सुनकर सब लोग दंग थे और इस बात को मान गए कि इस जोड़ का गवैया उन्होंने आज तक नहीं सुना।

इनकी लयदारी के भी बहुत-से किस्से हैं जिनमें से एक-दो का ज़िक्र हम करना चाहते हैं। एक बार ख़ाँ साहब दिल्ली गए हुए थे। वहाँ अपने ज़माने के मशहूर गवैये बहादुर हुसैन खाँ साहब ने इनकी दावत की जिसमें शहर के गुणी आदमी जमा हुए। खाने-पीने के बाद गाना-बजाना शुरू हुआ। जब नत्थन ख़ाँ साहब गाने बैठे तो इनके साथ दिल्ली के मश-

हूर ग्रौर ख़ानदानी तबलिये मुज़फ़्फ़र ख़ाँ संगत के लिए तैयार हुए। ख़ाँ साहब ने तिलवाड़े में एक अ्रस्थायी शुरू की, मगर लय इनकी मर्ज़ी के मुताबिक़ नहीं थी। इसलिए इन्होंने ठेका ज़रा 'ठा' बजाने के लिए कहा। यह सुनते ही मुज़फ़्फ़र ख़ाँ ने ठेके को एकदम इतना 'ठा' में शुरू किया कि लोगों को सम पर गर्दन हिलाना मुश्किल हो गया। नत्थन ख़ाँ साहब को तो पहले से ही इस लय में गाने की ग्रादत थी। इसलिए बड़े ज़ोर-शोर से इसी लय में गाते रहे। स्वाभाविक था कि मुज़फ़्फ़र ख़ाँ इस समय सीधा ग्रौर सच्चा ठेका लगा रहे थे। नत्थन ख़ाँ साहब ने इनसे कहा, "ग्राप भी ज़रा बजाते रहें, मैंने तो ग्रापकी बहुत तारीफ़ सुनी है।" यह सुनकर मुज़फ़्फ़र ख़ाँ बोले, "ख़ाँ साहब, इस लय में ठेका बजाना ही मुश्किल हो रहा है। सिर्फ ठेका लगा रहा हूँ, इसी को सब कुछ समझ लीजिए। यह ग्राप ही का काम है कि इतनी 'विलम्पत' लय में इस तरह बेथकान गा रहे हैं।"

दूसरी घटना इस प्रकार है कि ख़ाँ साहब एक बार धारवाड़ में भास्करराव के मकान पर ठहरे हुए थे। उसी ग्रवसर पर एक नौजवान तबलिया कामताप्रसाद भी यहाँ पहुँचा। ख़ाँ साहब का यह पक्का नित्य-नियम था कि रोज़ तालीम के बाद ख़ुद मेहनत के लिए बैठते थे ग्रौर इस मौक़े पर उनके दो-एक दोस्त ग्रौर कुछ शागिर्द भी मौजूद होते थे। कामताप्रसाद भी इसी वक्त ग्राया करते थे। एक रोज़ ख़ाँ साहब गा रहे थे ग्रौर तबला कामताप्रसाद के हाथ में था। दोनों साहब गाने-बजाने में मस्त थे। झूमरा ताल बहुत ही 'बिलम्पत' लय में बजाया जा रहा था। इसी समय गाते-गाते एकाएक ख़ाँ साहब को कोई बड़ा ज़रूरी काम याद ग्राया ग्रौर उसके बारे में वह भास्करराव को कुछ समझाने लगे। इधर कामताप्रसाद ने एक बड़ी लम्बी-चौड़ी गत शुरू कर दी। सुनने वाले ग्रौर ख़ुद कामताप्रसाद भी यह समझ रहे थे कि ग्रब ख़ाँ साहब के लिए इसमें सम पकड़ना मुश्किल है। मगर जब गत का एक-चौथाई

हिस्सा बाक़ी रह गया तो ख़ाँ साहब ने एक तान शुरू की और कई बल-पेच लगाते हुए बहुत ख़ूबसूरती के साथ सम पर आ गए। कामता-प्रसाद हैरत में पड़ गए और तबला हाथ से छोड़कर ख़ाँ साहब से कहने लगे, "आप लय के बादशाह हैं, और लय आपकी ग़ुलाम है। जब आप बातों में लगे थे तो मैंने गत शुरू कर दी थी और मैं समझता था कि अब आपका लय पकड़ना मुश्किल है। मगर मेरा यह खयाल एकदम ग़लत निकला। आप तो इस तरह सम पर आ गए जैसे कोई बात ही नहीं हुई हो।" इनकी लयदारी के बारे में इस तरह की बहुत-सी घटनाएँ सुनी जाती हैं। ख़ाँ साहब का देहान्त सन् १६०१ में मैसूर में ही हुआ।

मुहम्मद ख़ाँ

नत्थन ख़ाँ के कई पुत्र थे जो सभी अच्छे संगीतज्ञ हुए। उनके सबसे बड़े बेटे का नाम था मुहम्मद ख़ाँ। सन् १८७० के क़रीब आगरे में ही इनका जन्म हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा पिता के हाथों ही हुई और अपने पिता से इन्हें बहुत अच्छी तालीम मिली। लेकिन इनको अच्छी से अच्छी चीज़ें और रागिनियाँ हासिल करने का बहुत शौक़ था। इसलिए अपने पिता के अलावा इन्होंने अपने तमाम ख़ानदानी बुज़ुर्गों और रिश्तेदारों से भी सैकड़ों चीज़ें याद कीं जिनमें होरी, ध्रुपद, सरगमें, तराने, अस्थाइयाँ, ख़याल सभी कुछ शामिल था। सन् १६०१ में यह आगरे से बम्बई आ गए। इसी जमाने में इनके पिता का भी देहान्त हुआ। इसी कारण कुछ रोज़ के लिए यह आगरे गये भी पर फिर कुछ ही महीनों में घर के काम-धन्धे से निपट कर बम्बई वापस चले आए। बम्बई में इनसे गाना सीखने के लिए बहुत-से लोग बड़े उत्सुक थे। इनके पास भी बहुत लोग सीखने आए जिन्हें इन्होंने सदा बड़े प्रेम से सिखाया और किसी से भी किसी तरह का परदा नहीं रक्खा। यह एकदम अपनी औलाद की तरह उन्हें सिखाकर तैयार करते थे। इन्होंने

बहुत-सी 'अछोप' रागिनियाँ, जिनकी जानकारी लोगों को नहीं थी, अपने शागिर्दों को सिखाईं और उनका ख़ूब प्रचार किया। इस बात से इनका बड़ा नाम हुआ। यह तबीयत के बहुत ही साफ़ थे और इनका कोई भी शागिर्द इनसे कुछ पूछता तो फ़ौरन बता देते थे। इनके प्रसिद्ध शागिर्दों में बाँकाबाई, ताराबाई सिरोलकर, चम्पाबाई कवलेकर आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त भाई शंकर, भाई प्राणनाथ, इनके पुत्र बशीर अहमद ख़ाँ और अन्य छोटे भाइयों को भी तालीम मिली जिनमें मैं भी शामिल हूँ।

इनको उर्दू शायरी का भी शौक़ था और यह शेर अच्छे कहते और समझते थे। भतीजे के देहान्त के बाद सबसे बड़े होने के कारण घर का बोझ इन्हीं के कन्धों पर पड़ा जिसे इन्होंने बड़ी खुशी-खुशी निभाया। इनका देहान्त सन् १९२२ में आगरे में हुआ।

अब्दुल्ला ख़ाँ

नत्थन ख़ाँ के दूसरे सुपुत्र अब्दुल्ला ख़ाँ थे। इनका जन्म १८७३ के लगभग आगरे में हुआ था। इन्हें बचपन से ही अपने पिता से तालीम मिली जिसमें मेहनत और अभ्यास ने चार चाँद लगा दिए और यह दिनों दिन उन्नति करते गए। अपने पिता के साथ ही यह मैसूर पहुँचे और कुछ रोज़ बाद ही महाराजा ने इनका गाना अलग से सुना। सुनकर महाराजा बहुत प्रसन्न हुए और इनके नाम अलग वेतन देने लगे। रियासत की नौकरी मिलने के बाद भी यह अपने पिता से संगीत विद्या सीखते रहे। पिता की मृत्यु के बाद सन् १९०१ में इन्होंने रियासत से छुट्टी लेकर देश भर में दौरा किया। यह हुबली, धारवाड़, कोल्हापुर, पूना, बागलकोट, बीजापुर, शोलापुर आदि स्थानों में गये और वहाँ के संगीत-प्रेमियों को प्रसन्न करके उनसे सम्मान प्राप्त किया। इनके बोलों का बनाव, लयदारी, तान की सफ़ाई और शुरू से आख़ीर तक एक साँस में बड़ी से बड़ी तान लेकर सम पर ख़ूबसूरती के साथ आना आदि

ऐसी विशेषताएँ हैं जिन्हें इनके सुनने वाले आज तक याद करते हैं। यह कई बार दिल्ली, जालन्धर, काश्मीर आदि स्थानों पर भी गए और हर जगह अपने गाने से लोगों को खुश करके बहुत ही प्रशंसा और पुरस्कार प्राप्त करते रहे। सन् १९२२ के आरम्भ में इनका देहान्त आगरे में हुआ।

मुहम्मद सिद्दीक़ ख़ाँ

नत्थन ख़ाँ के तीसरे सुपुत्र थे मुहम्मद सिद्दीक़ ख़ाँ। इन्होंने अपने बड़े भाई मुहम्मद ख़ाँ से गाने की तालीम पाई थी। भगवान ने इन्हें बड़ा ज़ोरदार गला दिया था और इनकी तान में ऐसी कड़क और चमक होती थी कि सुनने वाले हैरत में रह जाते थे। सन् १९१७ में एक बार होली के जलसे में यह इन्दौर गए। वहाँ दरबार में रोज़ जलसे होते थे। उन्हीं दिनों एक दिन साइकिल पर छावनी की ओर जाते-जाते अचानक रास्ते में इनके दिल की धड़कन बन्द हो गई और इनका देहान्त हो गया।

नन्हें ख़ाँ

नन्हें ख़ाँ नत्थन ख़ाँ के सबसे छोटे बेटे थे और सन् १८९९ में मैसूर में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने अपने खानदानी बुज़ुर्ग कल्लन ख़ाँ से गाने की शिक्षा पाई थी। तालीम पूरी करके यह बम्बई आए और वहीं ठहरे। वहाँ इन्होंने बहुत-से शागिर्दों को तालीम दी जिनमें से सीताराम फाथर्फेकर, यल्लापुरकर, रत्नकान्त रामनाथकर और ग़ुलाम अहमद ख़ाँ आदि प्रसिद्ध हैं। इन्हें कविता का भी बहुत शौक़ था और उर्दू तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखा करते थे। यह मौलाना सीमाब अकबराबादी के शिष्य थे और इनका उपनाम 'शकील' था। इनकी लिखी हुई कुछ चीज़ें आगे दी जाएँगी। संगीत विद्या का इनका ज्ञान बहुत गहरा था और पुराने बुज़ुर्गों से बहुत-सी चीज़ें इन्हें मिली थीं

जिनका प्रचार यह बड़े खुले दिल से करते थे और शागिर्दों से बड़ा प्रेम रखते थे। सन् १९४५ में आगरे में इनका देहान्त हुआ।

फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ

यह सफ़दर हुसैन ख़ाँ के सुपुत्र और मुहम्मद अली ख़ाँ सिकन्दराबाद वाले के पोते थे। यह रमजान ख़ाँ रंगीले की परम्परा के हैं। फ़ैयाज हुसैन ख़ाँ बचपन से ही अपने बाबा ग़ुलाम अब्बास ख़ाँ के पास आगरे में रहते थे और उन्हीं से इन्होंने संगीत की शिक्षा भी पाई। पहले इन्हें आलाप, ध्रुपद, धमार की शिक्षा मिली और बाद में अस्थायी-ख़याल वगैरह सीखने का अवसर मिला। इनकी आवाज़ जन्म से ही साफ़-सुथरी और सुरीली थी और इनकी मेहनत ने तो उसमें चार चाँद लगा दिए थे। इनका गाना ऐसा प्रभावशाली था कि सुनने वाले रो दिया करते थे। संगीत सभाओं में जाना इन्होंने बचपन से ही शुरू कर दिया था और तभी से ही इनकी प्रशंसा भी होने लगी थी। रियासतों में सबसे पहले मैसूर के महाराजा ने दशहरे के मौक़े पर इन्हें बुलाकर सुना और प्रसन्न होकर सोने का तमग़ा और वस्त्र प्रदान किए। उसी समय यह हैदराबाद भी गये और निज़ाम को अपना गाना सुनाया जिससे प्रसन्न होकर निजाम ने इन्हें एक हीरे की अँगूठी दी थी। सन् १९१५ में इन्हें बड़ौदा-नरेश ने बुलाया और होली के जलसे में इनका गाना सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। इनके बड़ौदा बुलाये जाने का क़िस्सा बहुत ही दिलचस्प है।

उस ज़माने में बड़ौदा राज्य के दरबार में कुछ अच्छे गवैये न थे। इसलिए महाराजा ने फ़ैज़ मुहम्मद ख़ाँ से कहा कि वह हिन्दुस्तान का दौरा करें और नौजवान गवैयों को सुनकर जो पसन्द आए उसे उनके पास लाएँ। इस काम के लिए महाराजा ने ख़ाँ साहब को बहुत-सा धन भी दिया। ख़ाँ साहब इस उद्देश्य से घूमने के लिए निकल पड़े और कई जगहों का दौरा करते हुए आगरे भी आये। यहाँ इन्होंने फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ का

गाना सुना और बहुत खुश हुए। बड़ौदा वापस लौटकर इन्होंने महा-राजा से भी इसका ज़िक्र किया और होली के मौक़े पर बुलवाकर इनका गाना सुनवाया। गाना सुनकर महाराजा ने तय किया कि इन्हें दरबार में नौकर रख लेंगे। उन्होंने सेक्रेटरी से कहा कि इनसे पता कर लें कि यह नौकरी के लिए राज़ी हैं या नहीं और वेतन क्या लेंगे। फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ ने कहा कि सौ रुपये से कम नहीं लेंगे। महाराजा ने इनकी माँग स्वीकार कर ली और इन्हें अपने यहाँ रख लिया। वह हर ख़ुशी के मौक़े पर फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ का गाना सुनते और वेतन बढ़ाते रहते। दो-चार साल के बाद ही इनका वेतन साढ़े तीन सौ रुपये माहवार हो गया और दरबार में इनको सरदारों की पंक्ति में कुर्सी दी गई।

सन् १८१८-२० में इन्दौर के महाराजा तुकोजीराव होल्कर ने इन्हें अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया। यह होली का अवसर था और इन्दौर में सारे भारतवर्ष के गानेवाले इकट्ठे हुए थे। महाराजा ने फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ को दरबार में बिल्कुल अपने पास बैठाया और इनका गाना सुनकर बहुत ही खुश हुए। पुरस्कार के रूप में उन्होंने एक हीरे का कंठा अपने हाथ से इन्हें पहनाया और एक हीरे की अँगूठी तथा दस हज़ार रुपये नक़द भेंट किए। उसके बाद से यह हमेशा इन्दौर दरबार आते-जाते रहे। सन् १९२५ में इन्हें मैसूर के महाराजा ने दुबारा बुलाया और सुनकर प्रसन्न हुए। इसी समय इन्हें मैसूर रियासत का राजचिन्ह, हीरे-जवाहरात से जड़ा हुआ कंगन, पहनाया गया और 'आफ़ताबे मौसीक़ी' की उपाधि मिली। महाराजा ने इन्हें दशहरे और सालगिरह के अवसर पर हमेशा आते रहने के लिए मजबूर किया और इसका भी प्रस्ताव किया कि वह वहीं उनके दरबार में रह जाएँ। ख़ाँ साहब ने यह बात तो अस्वीकार कर दी पर महाराजा का दूसरा अनुरोध स्वीकार कर लिया।

उसी साल यह लखनऊ में आल इण्डिया म्यूज़िक कान्फ्रेंस में बड़ौदा सरकार की ओर से शामिल हुए जहाँ इन्हें सोने का तमग़ा और

'संगीत चूड़ामणि' की उपाधि मिली। उसके बाद से तो इनकी ख्याति सारे भारतवर्ष में फैल गई। यह पंडित भातखण्डे द्वारा संयोजित पाँचों कान्फ्रेंसों में शामिल हुए और अपने संगीत से श्रोताओं को मुग्ध करते रहे। इसी तरह की एक कान्फ्रेंस इलाहाबाद में भी हुई जहाँ इन्हें 'संगीत भास्कर' और 'संगीत सरोज' की उपाधियाँ मिलीं। उसी साल ख़ाँ साहब कलकत्ते के दौरे पर भी गए और वहाँ भी अपने संगीत से सुननेवालों को वश में कर लिया। इसके अतिरिक्त इन्हें जयपुर, जोधपुर, अलवर, पालनपुर, ईडर, चम्पानगर, बनैली, महिषादल आदि अनेक राज्यों से सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए थे।

मैं बड़ी कठिनाई से ख़ाँ साहब के विषय में संक्षेप में लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ क्योंकि इनके संगीत के गुणों की चर्चा करने के लिए तो एक पूरे ग्रन्थ की आवश्यकता पड़ेगी। तो भी इस बात का उल्लेख बहुत आवश्यक है कि फ़ैयाज़ हुसेन ख़ाँ शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त ठुमरी, दादरा, भजन, ग़ज़ल इतना सुन्दर गाते थे कि सुननेवाले तड़प जाते और यह सोचने लगते कि शायद ख़ाँ साहब सारी उम्र इन्हीं के गाने का अभ्यास करते रहे हों। इस रंग में लखनऊ और बनारस वाले तक इनका लोहा मानते थे और सच्चे दिल से इनकी तारीफ़ करते थे। इसी तरह इन्हें सोज़ख़्वानी में भी बड़ा कमाल हासिल था और इस मैदान के भी मर्द थे। लखनऊ में सोज़ख़्वानी के बड़े-बड़े उस्ताद हैं पर वे भी ख़ाँ साहब का लोहा मानते थे और उनसे बड़े प्रसन्न होते थे। एक प्रकार से संगीत का कोई भी अंग इनसे अछूता नहीं बचा था।

संगीत के प्रचार में भी ख़ाँ साहब ने बड़ा भाग लिया और बहुत ही योग्य तथा प्रसिद्ध शिष्य तैयार किए जिनमें से दिलीपचन्द्र बेदी, एस० एन० रातंजनकर, अता हुसेन ख़ाँ, बन्दे अली ख़ाँ, लताफ़त ख़ाँ, सुशीलकुमार चौबे तथा जयपुर वाले ग़ुलाम क़ादिर आदि प्रसिद्ध हैं। स्वर्गीय सहगल भी इन्हें अपना उस्ताद मानते थे। इनका देहांत सन् १९५० में ही हुआ।

बशीर अहमद ख़ाँ

आगरा घराने के इनके अलावा और भी कई एक प्रसिद्ध और योग्य गायक हुए और इस समय भी मौजूद हैं। मुहम्मद ख़ाँ के बड़े पुत्र बशीर अहमद ख़ाँ का जन्म १९०३ में आगरे में हुआ था। यह बचपन से अपने नाना कल्लन ख़ाँ के पास जयपुर में रहे और उन्हीं से तालीम और समझ हासिल की। यह अस्थायी-ख़याल, होरी, ध्रुपद बहुत अच्छा गाते हैं। बोलों का बनाव-शृंगार इनकी अपनी विशेषता है। इनको शायरी का भी बहुत शौक़ है और रेख़ती में अच्छा लिखते हैं। यह अपने शागिर्दों को बड़ी मेहनत से सिखाते हैं। शुरू में यह कुछ दिन बम्बई रहे और वहाँ बहुत-से शागिर्दों को सिखाते रहे। उसके बाद अपने वतन आगरे में जाकर रहने लगे। वहाँ भी कितने ही शागिर्दों को सिखाया। आज-कल यह कलकत्ता रहते हैं और वहाँ भी इनके गाने का बड़ा प्रचार है। इनके मशहूर शागिर्दों में दीपाली नाग (ताल्लुकदार) का नाम उल्लेखनीय है।

तसद्दुक़ हुसैन ख़ाँ

यह कल्लन ख़ाँ के सुपुत्र थे और इनका जन्म १८७९ में आगरे में हुआ था। संगीत की शिक्षा इन्होंने अपने पिता से ही पाई। यह उर्दू फ़ारसी के भी बहुत अच्छे विद्वान् थे और संगीत शास्त्र का भी इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था। इन्होंने राग-रागिनियों में संशोधन भी किया और इस विषय पर एक ग्रन्थ भी लिखा जो अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका। इनके शिष्यों में स्वर्गीय पण्डित काशीनाथ और असद अली ख़ाँ हैं। यह बड़ौदा संगीत हाई स्कूल में बाईस बरस तक अध्यापक रहे और वहाँ भी कई एक अच्छे शागिर्द तैयार किये। इन्हें हिन्दी में कविता लिखने का भी शौक़ था और अपना उपनाम 'विनोद' रक्खा था।

असद अली ख़ाँ

आगरे वाले काले ख़ाँ के सुपुत्र और तसद्दुक़ हुसैन ख़ाँ के एक शिष्य असद अली ख़ाँ हैं। इन्होंने अच्छी मेहनत करके अपना नाम पैदा किया और हिन्दुस्तान के बहुत-से जलसों और संगीत कान्फ्रेंसों में गा चुके हैं। कुछ दिनों इनका सम्बन्ध आल इण्डिया रेडियो दिल्ली से भी रहा है।

ख़ादिम हुसैन ख़ाँ

यह अलताफ़ हुसैन ख़ाँ के सुपुत्र हैं। इन्होंने संगीत विद्या कल्लन ख़ाँ से प्राप्त की। यह अस्थायी-ख़याल अच्छा गाते हैं और इन्होंने बहुत-से शिष्य तैयार किए हैं। इनमें वत्सला कुमठेकर, कृष्णा उदयावरकर, कुमुद वागले, ज्योत्स्ना भोले, श्यामला मजगाँवकर आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। फिल्म उद्योग में सुरेन्द्र, सुरैया, मधुबाला को भी इन्होंने संगीत सिखाया। यह सन् १९२५ से ही बम्बई में रहे।

अनवार हुसैन ख़ाँ

यह अलताफ़ हुसैन ख़ाँ के मँझले बेटे थे। इन्हें भी संगीत की शिक्षा जयपुर में कल्लन ख़ाँ से मिली। उस्ताद की मृत्यु के बाद यह बम्बई चले आए और वर्षों अपने बड़े भाई ख़ादिम हुसैन ख़ाँ और मामा विलायत हुसैन ख़ाँ से बहुत कुछ सीखा। इन्होंने बम्बई में कई शागिर्द तैयार किए हैं जिनमें गोविन्दराव आग्रे, सगुणा कल्याणपुरकर, मीरा वाडकर, सरोज वाडकर, रामजी भगत, शंकरराव बड़ौदावाले आदि प्रमुख हैं। सन् १९३७ में बम्बई में जो एक बड़ी म्यूजिक कान्फ्रेंस आगरा घराने की ओर से की गई थी, यह उसके सेक्रेटरी थे। यह कवि भी हैं और हिन्दी-उर्दू में कविता लिखते हैं। कविता में इनके गुरु सीमाब अकबराबादी हैं। और उर्दू में इनका नाम 'ख़ुमार नियाजी' तथा हिन्दी में 'रसरंग' है।

लताफ़त हुसैन ख़ाँ

यह अलताफ़ हुसैन ख़ाँ के सबसे छोटे बेटे हैं। इनकी संगीत शिक्षा तसद्दुक़ हुसैन ख़ाँ की देखरेख में हुई और उसके बाद बम्बई आकर अपने बड़े भाई ख़ादिम हुसैन ख़ाँ से भी इन्हें अच्छी तालीम मिली। कुछ चीज़ें इन्होंने फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ और अपने मामा विलायत हुसैन ख़ाँ से भी याद की हैं। इन्होंने अपने परिश्रम से खूब उन्नति की है और दूर-दूर तक जलसों में बुलाये जाते हैं।

अकील अहमद ख़ाँ

यह आगरे वाले बशीर अहमद ख़ाँ के सुपुत्र हैं। इन्हें अपने पिता से अस्थायी-ख़याल की भी शिक्षा मिली और होरी, ध्रुपद की भी। मगर यह ख़याल बहुत अच्छा गाते हैं और अभी भी अपने पिताजी से शिक्षा ले रहे हैं। इन्होंने आगरे में अपने घर पर एक छोटी-सी संगीत पाठशाला खोल रक्खी है जहाँ थोड़े-से शिष्य सीखने आते हैं।

शफ़ीकुल हसन

यह ऐज़ाज़ हुसैन ख़ाँ अतरौली वाले के सुपुत्र हैं। इन्होंने अता हुसैन ख़ाँ से संगीत की शिक्षा पाई है और इसके अलावा ख़ादिम हुसैन ख़ाँ, अनवार हुसैन ख़ाँ और विलायत हुसैन ख़ाँ से भी बहुत-सी चीज़ें याद की हैं। आजकल यह अलीगढ़ में एक संगीत पाठशाला चला रहे हैं।

रामजी भगत

यह बड़ताल मठ के बड़े गुसाईं जी के शिष्य हैं। पहले इन्होंने अता हुसैन ख़ाँ से बड़ौदा में सीखा और फिर अनवार हुसैन ख़ाँ से भी बहुत-सी चीज़ें याद कीं। इनकी आवाज़ बहुत सुरीली और ज़ोरदार है तथा यह आशा की जाती है कि वह और भी पुरअसर होगी। इन्होंने आज-

कल बम्बई में मलाड में एक छोटी-सी संगीत की पाठशाला खोल रक्खी है और उसे बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं।

स्वामी वल्लभदास

यह अहमदाबाद में स्वामीनारायण मन्दिर की सेवा में रहते थे और अता हुसैन ख़ाँ से संगीत सीखने बड़ौदा आया करते थे। स्वामीजी ने पन्द्रह वर्ष तक संगीत सीखा और इतना कष्ट उठाकर संगीत सीखने का फल भगवान ने यह दिया है कि आज यह भारत के श्रेष्ठ गायकों में गिने जाते हैं। इन्हें रेडियो तथा अन्य जलसों के लिए भी निमन्त्रण आते हैं। इनकी एक विशेषता यह है कि जो कुछ भी संगीत द्वारा उपार्जन करते हैं, उसे संगीत प्रचार के निमित्त ही ख़र्च कर देते हैं। स्वामीजी ने बम्बई के सींग स्थान में श्री संगीत वल्लभाश्रम बनवाया है जिसमें लगभग एक लाख रुपया लगा है। इस आश्रम का उद्घाटन करने के लिए फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ आए थे और इस अवसर पर बड़े-बड़े गायकों को निमन्त्रण दिया गया था। इस जलसे में फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ, स्वामी वल्लभ-दास तथा इस पुस्तक के लेखक ने गाना गाया था। फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ साहब का अन्तिम गाना इसी जलसे में हुआ। इसके कुछ दिन बाद ही उनका देहान्त हो गया। स्वामीजी को फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ साहब ने भी कुछ चीज़ें सिखाई थीं। आजकल स्वामीजी स्थायी रूप से बम्बई में ही रहते हैं।

गोविन्दराव टेम्बे

आगरा घराने के अन्य गायकों में गोविन्दराव टेम्बे का नाम बड़ा महत्वपूर्ण है। यह कोल्हापुर के एक ब्राह्मण परिवार के थे। इन्हें बचपन से ही गायन कला का शौक़ था और इन्होंने बी० ए० एल-एल० बी० पास करके भी वकालत नहीं की, बल्कि संगीत की सेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया। पहले इन्होंने हारमोनियम पर ख़ूब मेहनत की और

फिर भास्कर बुआ भखले के शिष्य हो गए और उनसे बहुत-सी राग-रागिनियाँ सीखीं। साथ ही गायकी भी पैदा की और अच्छे गायक प्रमाणित हुए। किर्लोस्कर नाटक मंडली तथा बाल-गन्धर्व मंडली में अभिनय भी इन्होंने किया और प्रमुख भूमिकाएँ करके इस क्षेत्र में भी बहुत नाम कमाया। इन्हें लिखने का भी शौक़ था और इन्होंने कई उच्च कोटि के नाटक लिखे थे। यह प्रभात फिल्म कम्पनी के संगीत निर्देशक भी रहे और 'अमृत मन्थन' फिल्म में भी सफल अभिनय कला का प्रदर्शन किया। वृद्धावस्था होने पर भी यह संगीत पत्रिकाओं के लिए लेख आदि लिखते रहते थे। हाल ही में इनका देहान्त हुआ।

दिलीपचन्द्र बेदी

आगरा घराने के शागिर्दों में पंजाब के पंडित दिलीपचन्द्र बेदी का नाम उल्लेखनीय है। इन्हें बचपन से ही हिन्दी, उर्दू और अँग्रेज़ी की अच्छी शिक्षा मिली, पर संगीत कला का प्रेम इन्हें बम्बई खींच लाया और यहाँ आकर यह भास्कर बुआ भखले के शिष्य हो गए। पंजाब से यह हारमोनियम तैयार बजाते आये थे, मगर जब भास्कर बुआ से शिक्षा मिलने लगी तो हारमोनियम कम होने लगा और गायन बढ़ने लगा। भास्कर बुआ ने इन्हें प्रेम से शिक्षा दी, आगे बढ़ाया और हारमोनियम बजानेवाले से एक अच्छा गवैया बना दिया। भास्कर बुआ के अन्तिम दिनों तक यह उनसे कुछ न कुछ सीखते रहे और उनके स्वर्गवास के बाद फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ की सेवा में चले आये। फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ ने भी इन्हें खुले दिल से गाना सिखाया।

भास्कर बुआ भखले

पंडित भास्कर बुआ भखले आगरा घराने के गायकों में बहुत ही प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। यह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे और इनकी संगीत की शिक्षा सबसे पहले बड़ौदा के फ़ैज़ मुहम्मद ख़ाँ की देखरेख में हुई थी।

उनसे बहुत-सी राग-रागिनियाँ सीखने के बाद यह नत्थन ख़ाँ आगरे वाले के शागिर्द हुए। इसका बहुत बड़ा श्रेय ख़ुद फ़ैज मुहम्मद ख़ाँ को है। उन्होंने ही अनुरोध करके इन्हें नत्थन ख़ाँ का शागिर्द बनवाया था। भास्करराव ने नत्थन ख़ाँ से अस्थायी-ख़याल, तराने बहुत-से याद किए और साथ ही कमर कस के मेहनत खूब की। इसी का फल है कि यह एक उच्च कोटि के सफल गायक हुए। इनके गाने में राग का मजा और रागदारी का लुत्फ़ दोनों चीज़ें इकट्ठी हो गई थीं। सबसे बड़ी बात यह थी कि यह स्वर का आनन्द लेकर गाते थे। इन्हें मैसूर, बड़ौदा, इन्दौर, काश्मीर और दूसरी तमाम रियासतों से बहुत पुरस्कार इत्यादि मिले। जालन्धर के वार्षिक संगीत जलसे में भी यह हमेशा बुलाये जाते थे जहाँ से इन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुए थे। विशेष रूप से सिंध के शिकारपुर राज्य से इन्हें बहुत-से पदक मिले थे। किन्तु इनका अधिकतर रहना बम्बई और पूना में ही होता था और यहाँ के रसिक इनका गाना सुनना अपना बड़ा भारी सौभाग्य मानते थे। संगीत प्रचार का शौक़ भी इन्हें बहुत था। इस उद्देश्य से इन्होंने पूना में 'भारत गायन समाज' नामक संगीत का एक स्कूल खोला था और उसमें संगीत के कई अध्यापक नियुक्त करने के अतिरिक्त स्वयं भी देखरेख करते रहते थे। यह स्कूल आज भी सफलतापूर्वक चल रहा है। इन्होंने शागिर्द भी बहुत-से तैयार किए हैं जिनमें से मास्टर कृष्णराव, पण्डित दिलीपचन्द्र बेदी, गोविन्दराव टेम्बे, बाल-गन्धर्व, केतकर बुआ, चिन्तू बुआ, ताराबाई शिरोडकर आदि प्रमुख हैं। अपने अन्तिम दिनों में यह स्थायी रूप से बम्बई आकर रहने लगे थे। वहाँ यह जलसों में भी हिस्सा लेते और विद्यार्थियों को भी सिखाते। इन्हें ज्ञान और विद्या से बड़ा प्रेम था। इसलिये कोल्हापुर वाले अल्लादिया ख़ाँ से भी कुछ चीज़ें याद की थीं और उन्हें अपना गुरू मानते थे तथा उनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। भास्कर बुआ का कोई पुत्र न था, पर इनके शिष्यों ने इनकी परम्परा को आज तक जीवित रक्खा है। इनका देहान्त सन् १९३२ में पूना में हुआ।

मास्टर कृष्णराव

ऊपर हमने भास्कर बुआ भखले के शिष्यों में मास्टर कृष्णराव का उल्लेख किया है। इनका पूरा नाम कृष्णराव फुलम्बरीकर है। इन्हें भी बचपन से ही गाने का बहुत शौक़ था। एक बार जब यह गुरू की खोज में थे तो एक दिन पंडित भास्कर बुआ से इनका साक्षात्कार हुआ और यह तभी से उनके शिष्य हो गए और नियमित रूप से शिक्षा लेने लगे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह बड़े होनहार थे और बहुत जल्दी हर चीज़ सीख लेते थे। भास्कर बुआ इन्हें हमेशा अपने साथ रखते और जलसों में तम्बूरा देकर अपने साथ बैठाते थे। इस तरह इनका दिल बढ़ता था और जब यह जवान हुए तो दंगली गवैये साबित हुए। मैंने इनका गाना पूना, जालन्धर, बड़ौदा आदि शहरों में भास्कर बुआ के साथ सुना है। उस ज़माने में महाराष्ट्र में बहुत-सी नाटक-संगीत मंडलियाँ थीं जिनमें गन्धर्व नाटक मंडली बहुत प्रसिद्ध थी। और उसमें बड़े-बड़े कलाकार काम करते थे। इसके संचालक और मालिक नट-सम्राट बाल-गन्धर्व थे जो स्वयं भी अभिनय करते थे। इन्होंने मास्टर कृष्णराव का गाना सुना तो बड़े प्रसन्न हुए और इन्हें अपनी मंडली में शामिल कर लिया। बाल-गन्धर्व स्वयं भी भास्कर बुआ के शिष्य थे और इनके नाटकों के गानों में भास्कर बुआ की दी हुई अच्छी राग-रागिनियों में बँधी तर्ज़ें थीं। इसलिए बाल-गन्धर्व ने अपने गुरुभाई को ही मंडली में रखना बहुत अच्छा समझा। मास्टर कृष्णराव बरसों इनके साथ काम करते रहे और नाटकों में भाग लेते रहे और रंगभूमि की दुनिया में धूम मचा दी। सिंध के एक सेठ ने इनके गायन-अभिनय से प्रसन्न होकर इन्हें लाखों रुपये इनाम दिये थे। गायक के रूप में आज भी यह बड़े-बड़े संगीत सम्मेलनों और गोष्ठियों में बुलाये जाते हैं और सब जगह इनका बड़ा आदर-सत्कार होता है। बम्बई में भी कई बार इनका आदर-सत्कार हुआ। एक बार ऐसे जलसे में भारत-कोकिला स्वर्गीया श्रीमती सरोजिनी नायडू

भी पधारी थीं और उन्होंने अपने हाथों इन्हें मानपत्र भेंट किया था। इसके अतिरिक्त मैसूर, कोल्हापुर, बड़ौदा और अन्य कई बड़ी-बड़ी रियासतों में यह आते-जाते रहे और बड़ा सम्मान पाते रहे। बहुत दिनों तक यह पूना में 'भारत गायन समाज' के प्रिंसिपल रहे और उसकी देख-रेख आज भी करते हैं।

श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर

संगीत के क्षेत्र में पंडित रातंजनकर का नाम सुपरिचित है। बचपन से ही इनके पिता ने इन्हें ऊँची शिक्षा दी और इन्होंने बी० ए० पास किया। साथ ही घर पर इन्हें संगीत की शिक्षा भी मिली। शुरू में कई महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों से स्वर का ज्ञान मिला। बाद में इनके पिता ने इन्हें पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे का शिष्य करा दिया जिन्होंने इन्हें संगीत शास्त्र के सिद्धान्तों की शिक्षा भली प्रकार दी। यह शिक्षा भातखण्डे जी से यह कई वर्ष तक प्राप्त करते रहे और जब इनके गुरू ने यह समझ लिया कि इन्हें संगीत विद्या का बहुत काफ़ी ज्ञान हो गया है तो वह इन्हें बड़ौदा ले गए और वहाँ इन्हें फ़ैयाज़ हुसैन खाँ के सुपुर्द करके कहा, "खाँ साहब, इन्हें संगीत शास्त्र तो मैंने पढ़ा दिया, पर गाना आप बताइये, जो आपका काम है।" पंडित रातंजनकर कई वर्ष तक वहाँ रहे और फ़ैयाज़ हुसैन खाँ से अस्थायी-ख़याल के अलावा इस घराने की गायकी भी अच्छी तरह सीखी। इस प्रकार जब यह गाने-बजाने में बहुत योग्य हो गए तो भातखंडे जी ने इन्हें लखनऊ के मैरिस म्यूज़िक कालेज का प्रिंसिपल बना दिया। इस कालेज के विषय में विस्तार से चर्चा हम भातखंडे जी के संस्मरणों के साथ अन्यत्र करेंगे। यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि रातंजनकर जी ने बहुत ही योग्यता से इस कार्य को चलाया। आज कल यह इंदिरा संगीत विश्वविद्यालय के उप-कुलपति हैं। कालेज के विद्यार्थियों के अतिरिक्त इनके कई एक अन्य योग्य

शिष्य भी हैं जिनमें चिदानन्द नगरकर, नन्दू भट्ट, श्रीमती सुमति मुटाटकर आदि उल्लेखनीय हैं ।

इन्हें हिन्दुस्तान के बड़े से बड़े संगीत सम्मेलन में बुलाया जाता है जहाँ इनके भाषण और संगीत दोनों से ही अधिवेशनों में जान पड़ जाती है। इसी तरह रेडियो पर इनके भाषण और संगीत दोनों ही प्रसारित होते हैं जिससे संगीत के विद्यार्थियों को बहुत लाभ होता है । रातंजनकर जी आल इंडिया रेडियो की ऑडिशन समिति के अध्यक्ष हैं और इस काम को भी सफलतापूर्वक कर रहे हैं । ऊपर कहा गया है कि यह अस्थायी-ख़याल गाते हैं, पर इन्होंने आलाप, होरी, ध्रुपद का भी पूरी तरह अभ्यास किया है और इसी तरह संगीत की छोटी-बड़ी हर चीज़ पर इन्हें अधिकार प्राप्त है । बहुत-सी चीजें इन्होंने अपनी भी बनाई हैं और उन्हें भिन्न-भिन्न रागिनियों में बैठाया है । इन्होंने संगीत पर कई पुस्तकें भी लिखी हैं जिनमें रागों के भेद, स्वरूप, अदायगी का ढंग, चलन, पकड़, आरोह-अवरोह इत्यादि का सविस्तार वर्णन है । संगीत-सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं में भी इनके लेख अक्सर निकलते रहते हैं ।

मुहम्मद बशीर ख़ाँ

आगरा घराने के और भी कई गायक हुए हैं । इनमें एक मुहम्मद बशीर ख़ाँ थे । यह उमराव ख़ाँ के सुपुत्र थे । इनके घराने में सितार, जलतरंग वगैरह बजाया जाता था। पर इनकी आवाज़ सुरीली और बुलन्द होने के कारण इनके पिता ने इन्हें फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ के सुपुर्द कर दिया जिनसे इन्हें बचपन से ही संगीत की शिक्षा मिली और यह अच्छे गवैये साबित हुए। एक बार यह अपने उस्ताद के साथ जाबरा रियासत गए जहाँ नवाब इनके गाने से प्रसन्न हुए और इन्हें अपने पास ही रख लिया । जाबरा में यह बारह बरस तक नवाब इफ़्तिख़ार अली के दरबार में रहे, मगर इसके बाद इनकी तबीयत वहाँ से उकता गई और यह अपने वतन

अलीगढ़ वापस लौट आए और वहाँ से बम्बई के लिए रवाना हो गए। बम्बई में यह कई बरस रहे और वहाँ यशवन्त राव लोलेकर, हरषे बुआ आदि कई शागिर्द भी तैयार किए। सन् १९३६ में जाबरा जाकर इनका देहान्त हो गया।

जगन्नाथ बुआ पुरोहित

कोल्हापुर के जनार्दन पुरोहित के सुपुत्र जगन्नाथ बुआ भी आगरा घराने के गवैये हैं। संगीत कला की शिक्षा इन्होंने बचपन से ही प्राप्त की। सबसे पहले इन्होंने मुहम्मद अली ख़ाँ सिकन्दरे वाले से हैदराबाद में तालीम पाई। उसके बाद तानरस ख़ाँ के भानजे शब्बू ख़ाँ दिल्ली वाले से बहुत-सी चीज़ें याद कीं। बशीर ख़ाँ गुड़यानी वाले को भी यह अपने गुरू की भाँति मानते हैं। एक दिन इनके उस्ताद मुहम्मद अली ख़ाँ ने इनसे कहा, "तुम अब आगरे वाले विलायत हुसैन ख़ाँ के पास जाकर गाना सीखो। उनके पास तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।" तब से यह मुझ से ही सीखते हैं और मैं अपने बेटे की तरह ही इन्हें सिखाता हूँ। इन्होंने अज़मत हुसैन ख़ाँ से भी कुछ चीज़ें याद की हैं। यह अच्छा गाते हैं और दूर-दूर तक जलसों में इन्हें बुलाया जाता है। कोल्हापुर और बम्बई में इनका विशेष रूप से नाम है। इन्हें संगीत प्रचार का भी काफ़ी शौक़ है। इन्होंने कोल्हापुर में भी एक संगीत स्कूल खोला है और यह पन्द्रह दिन वहाँ और अपने शिष्यों को सिखाने के लिए पन्द्रह दिन बम्बई में रहते हैं। इनके मुख्य शिष्यों में गुलाबबाई आकोडकर, गुलाबबाई बेल-गामकर, मोहन तारा, राम मराठे, सुरेश हलदनकर, गजाननराव जोशी, मदन गोंगड़े, गुण्डू बुआ अतयालकर, जितेन्द्र धनाल, केशव धर्मा-धिकारी और बालकराम इत्यादि हैं। जगन्नाथ बुआ को कविता का भी शौक़ है और संगीत रचना भी करते हैं तथा कविता में अस्थायी-ख़याल वग़ैरह भी बाँधते हैं। इनकी बनाई हुई कुछ चीज़ें बहुत अच्छी हैं और दूर-दूर तक गाई जाती हैं। कविता में इनका नाम गुणीदास है।

गुलाम अहमद

आगरा घराने के शागिर्दों में मथुरा वाले गुलाम रसूल ख़ाँ के सुपुत्र गुलाम अहमद भी हैं। बचपन में इन्हें हिन्दी-अँग्रेज़ी की थोड़ी शिक्षा मिली। बाद में यह अपने बहनोई आगरे वाले नन्हें ख़ाँ के पास रहकर उनसे संगीत की शिक्षा लेने लगे। इनकी आवाज़ सुरीली और गाना सरस है तथा अस्थायी-ख़याल, तराना इत्यादि अच्छा गाते हैं। संगीत सभाओं में दूर-दूर से इन्हें निमन्त्रण मिलते हैं। यह नौजवान आदमी हैं और इन्हें संगीत प्रचार का भी बड़ा शौक़ है तथा कई शिष्य भी तैयार किए हैं जिनमें सिंधु शिरोडकर, लता देसाई और आर० एन० पराडकर उल्लेखनीय हैं।

विलायत हुसैन ख़ाँ

अन्त में मैं यह वाजिब समझता हूँ कि आगरा घराने का वर्णन करने के सिलसिले में कुछ अपनी भी संगीत शिक्षा का उल्लेख यहाँ कर दूँ। वैसे स्वयं अपने बारे में कुछ कहना बहुत उचित नहीं लगता, तो भी पाठकों की जानकारी के लिए कुछेक बातें अपने बारे में पेश कर रहा हूँ। मैं स्वर्गीय नत्थन ख़ाँ आगरे वालों का चौथा बेटा हूँ और मेरा जन्म सन् १८९५ में आगरे में हुआ था। छह बरस की आयु तक मैं अपने पिता जी के साथ मैसूर में रहा। किन्तु १९०१ में ही उनका देहान्त हो गया और उसके बाद से मैं अपने छोटे दादा कल्लन ख़ाँ साहब और जय-पुर वाले मुहम्मद बख्श साहब के पास चला आया। मेरी शुरू की संगीत शिक्षा और उर्दू, हिन्दी, फ़ारसी की पढ़ाई इन्हीं के पास हुई। इसके बाद मैंने बहुत-से बुज़ुर्गों से संगीत की शिक्षा पाई है जिनका उल्लेख मैं नीचे कर रहा हूँ।

मेरे विचार से मेरे बयालीस उस्ताद हैं जिनमें से पहले दो ने मुझे स्वर-ज्ञान, ताल-ज्ञान, कई राग और उनकी गायकी की समझ दी और

मेरी आँखों के ऊपर से सबसे पहले अज्ञान का परदा हटाया। बाक़ी उस्तादों से मुझे नये-नये रागों की चीज़ें हासिल हुई हैं जिनका उल्लेख मैं विस्तार से करना चाहता हूँ।

(१) मेरे सबसे पहले उस्ताद करामत हुसैन ख़ाँ साहब थे जो दिल्ली के शाही गवैयों के वंशज थे और जयपुर राज्य में नौकर थे। उनसे मुझे स्वर और ताल का ज्ञान हासिल हुआ। उन्होंने मुझे पहले भैरव राग में आलाप सिखाया और इसी राग में ध्रुपद भी बताये। इसके बाद तोड़ी, आसावरी, भीमपलास, ऐमन-कल्याण, बिहाग, दरबारी, मालकौंस आदि रागों में आलाप और ध्रुपद सिखाते रहे। इनके अलावा जौनपुरी, मुल्तानी, सारंग, पूरिया आदि की जानकारी भी मुझे इनसे हासिल हुई। इन्होंने तालीम के ज़माने में ही मुझे महफ़िलों में गवाना शुरू कर दिया था और उन दिनों जब भी मैं महफ़िल में बैठकर अलापना शुरू करता तो तमाम गाने-बजाने वाले प्रसन्न होकर मेरी प्रशंसा करते और मुझे दुआएँ भी देते।

(२) मेरे दूसरे उस्ताद मेरे छोटे दादा कल्लन ख़ाँ साहब आगरेवाले थे जो जयपुर राज्य में नौकर थे। इन्होंने मुझे अस्थायी-ख़याल की तालीम देनी शुरू की। जो राग इन्होंने मुझे सिखाये वे इस प्रकार हैं: भैरव, रामकली, ललित, देसकार, विभास, आसावरी, दरबारी, तोड़ी, बिलासखानी-तोड़ी, अलैया-बिलावल, शुद्ध-बिलावल, जयजयवन्ती-बिलावल, देसी-तोड़ी, गूजरी-तोड़ी, भैरवी, वृन्दावनी-सारंग, बड़हंस-सारंग, गौड़-सारंग, मुलतानी, भीमपलासी, पूरबी, पूरिया, धनासरी, श्री, पूरिया, ऐमन-कल्याण, शुद्ध-कल्याण, हमीर, केदारा, कामोद, बागेश्री, छायानट, जयजयवन्ती, मालकौंस, सोहनी, परज, लच्छासाख, मारवा, बिहागड़ा, लंकेश्वरी, देस, सोरठ, सुघराई, हुसैनी-कानड़ा, शिवमत-भैरव, सावन्त-सारंग, सिन्दूरा, मालगुंजी, हेम-कल्याण इत्यादि। इसके अलावा कितने ही रागों में मुझे होरी-धमार की तालीम भी दी। इनकी तालीम

से मुझे बहुत फ़ायदा पहुँचा। अस्थायी-अन्तरे की बढ़त और हर राग की गायकी मुझे मिली। इससे लयकारी का भी ज्ञान अच्छा पैदा हुआ। मेरे उस्ताद मुझे हर राग सिखाते समय सरगम भी सिखाते और सरगम के ज़रिये ही उपज की तरकीब भी बताया करते थे। उन दिनों मुझे सरगमों का इतना अभ्यास हो गया था कि मैं हरेक तान की सरगम आसानी से कर लिया करता था। अक्सर भाई तसद्दुक़ हुसैन ख़ाँ और फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ के साथ और कभी-कभी भाई अब्दुल्ला ख़ाँ के साथ मैं तम्बूरा बजाता और गाता, मगर मेरा यह गाना सब सरगम में होता था यानी उन लोगों की तानें और मेरी सरगमें साथ-साथ चलती थीं।

(३) मेरे तीसरे उस्ताद मेरे मँझले दादा मुहम्मद बख़्श उर्फ़ "सोनजी' थे जिन्होंने मुझे गोद लिया था। यह भी जयपुर राज्य के गुणीजनख़ाने में नौकर थे। इन्होंने भी मुझे अलापने की तालीम दी और ध्रुपद सिखाये। इनसे मैंने तोड़ी, जौनपुरी, भीमपलास, मुलतानी, पूरबी, ऐमन, पूरिया, भूपाली, बिहाग, दरबारी, मालकौंस, मालश्री, अड़ाना, सोहनी, बिहागड़ा, मियाँ की मल्हार, पटदीपकी, सिन्दूरा आदि राग सीखे और कई रागों में ध्रुपद-होरियाँ भी याद कीं।

(४) मेरे बड़े दादा ग़ुलाम अब्बास ख़ाँ साहब ने मुझे मियाँ की तोड़ी, छायानट, मेघ, बागेश्री, रामकली, ललित, गूजरी, बहार, बरारी आदि रागों में चीज़ें सिखाईं।

(५) अपने बड़े भाई मुहम्मद ख़ाँ साहब से मैंने सुन्दरकली, गुण-कली, चैती-गुणकली, लाचारी-तोड़ी, बहादरी-तोड़ी, हुसैनी-तोड़ी, देव-साख, भवसाख, बरवा, सावनी-कल्याण, गारा, अड़ाना, शाहाना, बिहारी-कल्याण, रागेश्वरी, सोरठ, कुकुभ-बिलावल, गौड़-मल्हार, मीरा-बाई की मल्हार, श्याम-कल्याण, अहीरी-तोड़ी, लक्ष्मी-तोड़ी, देसकार, जैत, नट-नारायण, परज, मंगला-भैरव, भटियार, भंकार, मालीगौरा,

रामगौरी, हिंडोल, हेम-कल्याण झिंझोटी, दुर्गा और बिलासखानी-तोड़ी वग़ैरह रागों के अस्थायी-ख़याल याद किये।

(६) अपने बड़े भाई अब्दुल्ला ख़ाँ साहब से मैंने शंकरा, बसन्त, गूजरी-तोड़ी, ऐमन-कल्याण, जयजयवन्ती, लाचारी-तोड़ी, भामपलास, बंगाल, बिहाग, नट, नन्द, आदि की कई चीज़ें सीखीं।

(७) अपने बड़े मामा महमूद ख़ाँ साहब से मुझे जिन रागों की बेहतरीन चीज़ें मिलीं उनके नाम ये हैं : हिंडोल, पंचम, पटमंजरी, जैत-कल्याण, पटदीप, चन्द्रकौंस, सावनी, जोग, सावनी-नट, खम्भावती, रागेश्वरी।

(८) मँझले मामा पुत्तन ख़ाँ साहब से ये चीजें याद कीं : हुसैनी-तोड़ी, ललित, जलधर-केदार, सरपरदा-बिलावल, शंकरा, बरवा, सुन्दरकली, मालती-बसन्त।

(९) मेरे छोटे मामा मुंशी जमाल अहमद ख़ाँ ने, जो अवागढ़ रियासत में नौकर थे, मुझे शुक्ल-बिलावल, हमीर, छायानट, बिलास-खानी-तोड़ी और गौड़-सारंग रागों की चीज़ें याद कराईं।

(१०) पूज्य वयोवृद्ध इनायत ख़ाँ साहब अतरौलीवालों ने मुझे जैतश्री, चैती-गौरी, बिभास आदि रागिनियाँ सिखाईं।

(११) ख़ाँ साहब क़ुदरतउल्ला हैदराबादी से मैंने हमीर, सूहा, कानड़ा, मुद्रिक-कानड़ा, पूरबा आदि राग याद किए।

(१२) कोटे वाले फ़िदा हुसैन ख़ाँ साहब ने मुझे मलुहा-केदार और नायकी-कानड़ा रागों में अस्थाइयाँ सिखाईं।

(१३) भाई तसद्दुक़ हुसैन ख़ाँ ने मुझे शुद्ध-बिलावल, शुद्ध-कल्याण, आसावरी आदि राग सिखाये।

(१४) उस्ताद अल्लादिया ख़ाँ साहब से भी मुझे कुछ चीज़ें हासिल हुईं जिनके नाम इस प्रकार हैं : काफी-कानड़ा, नायकी-कानड़ा,

विहागड़ा, गौरी, बहादुरी-तोड़ी, पूरबा, शुद्ध-सारंग, शुद्ध-नट, शुद्ध-कल्याण, गूजरी-तोड़ी, श्री, लाचारी-तोड़ी, रूपकली, सावनी, रायसा कानड़ा, लंकादहन-सारंग । इन सब रागों में ख़ाँ साहब ने मुझे अस्थाइयाँ और कई होरियाँ भी सिखाईं ।

(१५) अतरौली वाले अल्लादिया ख़ाँ के भाई हैदर ख़ाँ साहब से मुझे धनाश्री रागिनी की पूरी जानकारी हासिल हुई ।

(१६) उमराव ख़ाँ साहब दिल्लीवालों से मुझे सूरदासी-मल्हार का सबक़ मिला । उन्होंने मुझे भूपाली का एक तराना भी सिखाया ।

(१७) अब्दुल करीम ख़ाँ साहब ने मुझे मियाँ की तोड़ी, गूजरी-तोड़ी और दरबारी-कानड़ा के तराने सिखाये ।

(१८) बदरुज़्ज़मा ख़ाँ साहब से मैंने लाचारी-तोड़ी की अस्थायी याद की और बहार, भीमपलास, मारवा, पूरबी आदि रागों के तराने याद किये ।

(१९) हैदराबाद वाले निसार अहमद ख़ाँ साहब से मैंने हेम-कल्याण याद किया ।

(२०) खुर्जा वाले जनाब अलताफ़ हुसैन ख़ाँ से मुझे मारवा, जैत, श्री, भीम, सूहा, तिलककामोद, भूपाली, बहार के अस्थायी-ख़याल हासिल हुए ।

(२१) भाई फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ साहब से मुझे जयजयवन्ती, गारा, ललित, पूरबी, बरवा आदि बहुत-से प्रचलित रागों में कुछ निपुणता प्राप्त हुई और इनके साथ गाते-गाते जलसों में गाने का अभ्यास भी ख़ूब हुआ । इसके अलावा इनके साथ बिहारी-कल्याण, परज, झिंझोटी, बरवा, बहार, बसन्त, कामोद, बागेश्री, देसी-तोड़ी, मालकौंस, दरबारी आदि रागों का भी ख़ूब अभ्यास हुआ ।

(२२) पंडित बिशम्भरदीन उर्फ़ विश्वनाथ जी ने, जो जयपुर राज्य में मुंसिफ थे, मुझे भैरव का ध्रुपद सिखाया और एक ध्रुपद लच्छासाख का भी याद कराया।

(२३) जयपुर में संस्थान गलना के महन्त और महाराजा साहब के धर्मगुरु महन्त श्री हरिवल्लभजी आचार्य ने मुझको हिंडोल, अलैया-बिलावल, भीमपलासी, मुलतानी, ऐमन-कल्याण, बिहाग, जयजयवन्ती, श्री, गौड़-मल्हार आदि रागों के ध्रुपद सिखाये।

(२४) मास्टर गणपतराव मनेरीकर से मैंने सिन्दूरा, शुद्ध-मल्हार और नायकी-कानड़ा की जानकारी हासिल की। इन्हीं से मैंने गोरख-कल्याण भी सीखा और बागेश्री-बहार भी।

(२५) भैया भास्करराव भखले ने मुझको मालकौंस, अड़ाना, पूरबी, काफी और एक कर्नाटकी राग सिखाया।

(२६) रामपुर के फ़िदा हुसैन ख़ाँ साहब से मैंने एक छायानट का ख़याल याद किया।

(२७) रामपुर के जनाब मुश्ताक हुसैन ख़ाँ ने मुझे देस का एक तराना सिखाया।

(२८) फ़तहपुर सीकरी वाले छोटे खाँ साहब से मुझे कुकुम-बिलावल, देसी-तोड़ी, कामोद और शुद्ध-मल्हार के ध्रुपद व धमार मिले।

(२९) फ़तह दीन ख़ाँ साहब पंजाबी से मैंने पंचम और श्री राग की चीज़ें याद कीं।

(३०) आगरे वाले काले ख़ाँ साहब ने मुझे शुद्ध-सारंग का एक सादरा सिखाया।

(३१) गुलाम रसूल ख़ाँ साहब से मैंने तोड़ी का एक ध्रुपद याद किया।

(३२) जोधपुर वाले इस्माईल ख़ाँ साहब से मैंने सिन्दूरा का एक ध्रुपद याद किया।

(३३) अब्दुल अजीज़ ख़ाँ साहब ने मुझे मंगला-भैरव, जौनपुरी, मुलतानी, अलैया-बिलावल की चीजें सिखाईं।

(३४) अतरौली वाले नसीर ख़ाँ साहब से मैंने बागेश्री का ख़याल याद किया।

(३५) जोधपुर वाले नत्थन ख़ाँ साहब से मुझे मारू-बिहाग की चीज़ मिली।

(३६) फ़तहपुर सीकरी वाले इनायत अब्बास ख़ाँ साहब से मैंने झिंझोटी की होरी सीखी।

(३७) नाथा भाई कच्छी ने मुझे भीमपलासी का एक ध्रुपद फ़रोदस्त ताल में सिखाया।

(३८) शेर ख़ाँ साहब ने मुझे अड़ाने का ध्रुपद सिखाया।

(३९) फ़तहपुर सीकरी वाले ग़ुलाम नजफ़ ख़ाँ साहब से मुझे सुघरई का एक ध्रुपद और सोहनी का एक तराना मिला।

(४०) अतरौली वाले मुंशी ऐजाज़ हुसैन ख़ाँ साहब 'वामिक' से मुझे भैरव की एक अस्थायी याद करने का मौक़ा मिला।

(४१) रामपुर वाले अहमद ख़ाँ साहब से मैंने गुणकली का एक ख़याल सीखा।

अपने इन सभी उस्तादों के बारे में विस्तार से ज़िक्र मैंने इसीलिये किया कि सबका आभार स्वीकार कर सकूँ। इस प्रकार जो कुछ भी योग्यता मैंने प्राप्त की उसे दूसरों को सिखाने में मैंने कभी कोई संकोच नहीं किया। इसीलिए यों तो मेरे शिष्य बहुत-से हैं, पर उनमें से कुछेक उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं : शरीन डाक्टर, क़ौमी

लकड़ावाला, गुलबाई टाटा, हीरा मिस्त्री, इन्दिरा वाडकर, सरस्वतीबाई फातरफेकर, मोगूबाई कुर्डीकर, वत्सला परवतकर, अंजनीबाई जम्बोलीकर, श्रीमतीबाई नारवेकर, श्यामला मजगाँवकर, रागिनी फड़के, सुशीला वर्धराजन, दुर्गा खोटे मालती पाण्डे, सुशीला गानू, वासन्ती शिरोडकर, मेनका शिरोडकर, बालाबाई बेलगामकर, तुंगाबाई बेलगामकर, गिरिजाबाई केलकर, जगन्नाथ बुआ पुरोहित, दत्तू बुआ इचलकरंजीकर, रत्नकांत रामनाथकर, सीताराम फातरफेकर, तारा कल्ले, अब्दुल अज़ीज़ बेलगामकर, गजाननराव जोशी, राम मराठे, मुकुन्दराव घातेकर, ए० वी० अभयंकर, महाराज कुमारी बापू साहब रतलाम और काश्मीर के सदरे-रियासत कर्णसिंह इत्यादि ।

इनके अलावा मैं अपने दो पुत्रों का भी ज़िक्र करना चाहता हूँ। बड़ा लड़का शरफ़ हुसैन आगरे में पैदा हुआ था और उसने मुझसे तथा दूसरे खानदानी बुज़ुर्गों से तालीम ली थी। वह बहुत होनहार था और अस्थायी-ख़याल बहुत सुन्दर गाता था। वह अभी पूरी तरह जवान भी न हो पाया था कि सन् १९४५ में उसका देहान्त हो गया। दूसरा बेटा यूनुस हुसैन है। उसने मुझसे भी सीखा है और अपने मामा अज़मत हुसैन खाँ तथा घराने के दूसरे बुज़ुर्गों से भी। मुझे इससे बहुत कुछ उम्मीद है।

आगरे का दूसरा घराना

इमदाद ख़ाँ

यह सन् १८०० में आगरे में पैदा हुए थे और अपने जमाने के नामी गायकों में से थे। संगीत विद्या इनके घराने में एक ज़माने से चली आती थी और अपने ख़ानदान के बुज़ुर्गों से भी इन्होंने अच्छी तालीम पाई थी। इन दिनों काशी के महाराजा भी आगरे में ही रहा करते थे और उन्हें गायन विद्या का बहुत शौक़ था। वह ख़ाँ साहब के शागिर्द हो गये थे और इनसे संगीत सीखा करते थे। उन्होंने ख़ाँ साहब को अपनी कोठी के अहाते में ही एक अच्छा-सा मकान रहने के लिये बनवा दिया था और इन्हें हर तरह का आराम पहुँचाने की कोशिश करते थे। इनकी तबीयत में दुनिया का लालच अधिक नहीं था और इसीलिये यह कभी आगरे से बाहर नहीं गए। शायद सन् १८६० के लगभग इनका देहांत हो गया।

हमीद ख़ाँ

इनका जन्म आगरे में सन् १८४० में हुआ था। इन्हें इनके नाना नन्हें ख़ाँ ने गायन विद्या की पूरी-पूरी शिक्षा दी और इनसे बहुत मेहनत करवाई। इसीलिए यह अपने ज़माने में बहुत ही प्रसिद्ध गवैये हुए। बुन्देलखण्ड की रियासतों में इनका विशेष मान था और वहाँ यह अक्सर जाया करते थे। पन्ना के महाराज इनसे बहुत प्रसन्न थे और हर साल बसन्त के मौक़े पर इन्हें अपने यहाँ बुलवाते थे। सन् १९०९ में दशहरे के अवसर पर यह मैसूर गए जहाँ इनका देहान्त हो गया।

नन्हें ख़ाँ सलेम ख़ाँ

इनकी पैदाइश सन् १८०० के आस-पास आगरे में ही हुई। इनके बीच आपस में साले-बहनोई का रिश्ता था। मगर हर समय साथ रहने और साथ-साथ गाने से ये लोग दुनिया भर में भाई-भाई की तरह मशहूर हो गए थे। ये दोनों ही अस्थायी-ख़याल बहुत ऊँचे दर्जे का गाते थे और मैंने अपने कई बड़े-बूढ़ों से इनके काम की तारीफ़ सुनी है। जयपुर, जोधपुर, अलवर, भरतपुर, पन्ना तथा अन्य कई राज्यों में इनका बहुत सम्मान और आदर-सत्कार होता था। रतनगढ़ के महाराजा ने तो इन्हें एक गाँव जागीर में दिया था। इन दोनों ने कई शागिर्द तैयार किये थे मगर अब उनके सही नामों का पता नहीं चलता। साथ ही इन्होंने अपनी बच्चों को भी अच्छी शिक्षा दी थी। सन् १८९५ के क़रीब इनका देहान्त हुआ।

प्यार ख़ाँ

यह सलेम ख़ाँ के बेटे थे। गायन विद्या इन्होंने अपने पिता से ही सीखी। यह अस्थायी-ख़याल कम और ठुमरी ज़्यादा गाते थे। मगर इनके ठुमरी गाने से लोग बहुत प्रसन्न होते थे। जलतरंग बजाने का भी इनको बहुत अभ्यास था और जब किसी भी महफ़िल में यह जलतरंग बजाते तो सुननेवाले मस्त हो जाते थे। यह जयपुर रियासत में गुणी-जनख़ाने में नौकर थे और जयपुर-नरेश महाराजा माधोसिंह इनसे बहुत प्रसन्न थे तथा अक्सर अपने मेहमानों को इनका जलतरंग सुनवाया करते थे। एक बार जब प्रिंस आफ़ वेल्स, जो बाद में पाँचवें जार्ज के नाम से इंगलैण्ड के बादशाह हुए, हिन्दुस्तान आये तो वह जयपुर भी आये थे। उनकी रानी मेरी भी उस समय उनके साथ थीं। महाराजा माधोसिंह ने दरबार के अवसर पर प्यार ख़ाँ से जलतरंग बजाने के लिए कहा। उस दिन इन्होंने इतना अच्छा जलतरंग बजाया कि सब मेहमान

अपनी जगह से उठकर इनके सामने आकर खड़े हो गए और बड़े ग़ौर से इनका बजाना सुनते और ख़ुश होते रहे। उस अवसर पर महाराजा साहब ने इन्हें बहुत पुरस्कार प्रदान किये। इन्होंने अपने बेटों को भी बहुत अच्छी तालीम दी थी। सन् १९१५ में जयपुर में ही इनका देहांत हो गया।

लतीफ़ ख़ाँ

यह प्यार ख़ाँ के मँझले बेटे थे और इनका जन्म १८७५ में आगरे में हुआ। इन्हें अपने घराने के बुज़ुर्गों से अस्थायी-ख़याल की तालीम मिली थी, मगर इनका भी अपने पिता की भाँति ही ठुमरी की तरफ़ अधिक रुझान था और यह ठुमरी, दादरा आदि चीज़ें बड़ी ख़ूबी से अदा करते थे। इनकी आवाज़ बड़ी बुलन्द, सुरीली और भावपूर्ण थी और साथ ही इनकी गायकी का अन्दाज़ ऐसा निराला था जैसा साधारणतः नहीं पाया जाता। लयदार भी यह इतने अच्छे थे कि तारीफ़ किये बिना रहना कठिन था। इनका लालन-पालन जयपुर में अपने पिता के पास हुआ और राजस्थान के राजाओं-जागीरदारों में इनकी बड़ी क़द्र थी। शाहपुरा के ठाकुर साहब तो इनसे इतने प्रभावित थे कि कभी कहीं दूर जाने ही नहीं देते थे। अगर कहीं यह हफ़्ते-दो हफ़्ते के लिए चले भी जाते तो ठाकुर साहब आदमी भेज कर फ़ौरन इन्हें बुला लेते। ठाकुर साहब से पहले यह दुजाने के नवाब के यहाँ कई साल नौकर रहे। इन्दरगढ़ के राजा भी इनसे बहुत प्रसन्न थे और इनके बुज़ुर्गों को दी हुई जागीर इनके लिए भी बहाल रक्खी थी। सन् १९२५ में कुछ पागलपन की-सी हालत में यह घर छोड़कर चले गए और ऐसे गये कि फिर इनका कोई पता नहीं चला।

महमूद ख़ाँ

यह प्यार ख़ाँ के तीसरे बेटे थे। इनको भी इनके पिता ने अस्थायी-ख़याल का सबक दिया था और यह भी अपने पिता और भाई की भाँति

ही ठुमरी आदि रंगीन गाने की तरफ़ ज़्यादा आकर्षित थे। इन्होंने एक नया साज़ भी बनाया था जिसका नाम रखा था 'वीणा रागस्वरूप'। इस साज़ की सूरत वीणा जैसी थी जिस पर सिर्फ़ एक तार चढ़ा हुआ था और कोई परदे वग़ैरह न थे। इसको बजाने के लिए बायें हाथ से तार को छेड़ते, तार के दबाव से सुरों के दरजे यानी स्वर और श्रुतियाँ पैदा होतीं और जो राग चाहते, उसे यह अदा कर देते थे। इनके दोनों हाथ अपनी-अपनी जगह क़ायम रहते—एक हाथ से तार छेड़ना और दूसरे से बजाना। राजस्थान के संगीत-प्रेमी इनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे। यह पहले रियासत शाहपुरा में और बाद में भदावर राज्य में नौकर रहे। सन् १९२० में इनका देहान्त हुआ।

रज़ा हुसैन

यह प्यार ख़ाँ के छोटे सुपुत्र हैं। इनका जन्म सन् १८९१ में आगरे में हुआ। पिता से इन्हें अच्छी शिक्षा-दीक्षा मिली और इन्होंने गाने-बजाने का अच्छा अभ्यास किया। यह भी जलतरंग बहुत अच्छा बजाते हैं। सन् १९०९ से यह बड़ौदा राज्य में दरबारी संगीतज्ञ हैं और आजकल वहीं रहते हैं।

फ़तहपुर सीकरी का घराना

ज़ैनू ख़ाँ और ज़ोरावर ख़ाँ

जहाँगीर बादशाह के जमाने में ज़ैनू ख़ाँ और ज़ोरावर ख़ाँ दो सगे भाई थे जो संगीत विद्या के तो बड़े भारी जानकार थे ही, इसके अतिरिक्त क़व्वाली गाने में भी विशेष रूप से दक्ष थे। हज़रत शेख़ सलीम चिश्ती की दरगाह से इन्हें जागीर वगैरह भी दी गई थी। ये दोनों भाई शेख़ साहब के दरबार में ख़ास क़व्वाल नियुक्त हुए थे। इन दोनों ने ध्रुपद, होरी, अस्थायी-ख़याल का अभ्यास भी जारी रखा था और अपने बेटों को सिखाते रहे थे।

घसीट ख़ाँ

शेख़ साहब के दरबार में दूल्हे ख़ाँ नाम के भी एक बड़े उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे। इन्हें भी दरबार का ख़ास क़व्वाल नियुक्त किया गया था। इनके दो बेटे हिन्दुस्तान के बड़े नामी गवैयों में हुए हैं। बड़े बेटे का नाम था घसीट ख़ाँ। यह आगरा ज़िले के फ़तहपुर सीकरी नामक स्थान में सन् १८०० ईस्वी में पैदा हुए। इनके घराने में होरी और ध्रुपद गाया जाता था और इन्हें अपने ख़ानदान की तालीम अच्छी तरह से मिली थी। इसके बाद इनका संगीत प्रेम इन्हें लखनऊ ले आया जहाँ हैदरी ख़ाँ जैसे उच्च कोटि के संगीतज्ञ मौजूद थे। घसीट ख़ाँ इनकी सेवा में पहुँचे और इन्हें अपना उस्ताद बना लिया तथा इनकी सेवा को ही अपनी उन्नति का द्वार समझा। वहाँ से घसीट ख़ाँ को होरी-ध्रुपद की और भी अच्छी तालीम मिली। उस्ताद ने बड़े उत्साह और चाव से इन्हें सिखाया। साथ ही इन्होंने भी जैसी ज़रूरत थी वैसी मेहनत की। घसीट

ख़ाँ यह अभ्यास बरसों करते रहे और फिर ऐसा अवसर आया कि इनके जैसा होरी-धमार का गानेवाला हिन्दुस्तान में दूसरा न था। अच्छी तरह विद्या सीख लेने के बाद उस्ताद ने इन्हें देश भर में घूमने और गाना सुनने-सुनाने की आज्ञा दे दी। उस समय पहले यह अपने घर लौटे और और कुछ दिन वहीं रहे। फिर सबसे पहले ग्वालियर का सफ़र किया और वहीं से इनकी ख्याति सारे हिन्दुस्तान में फैलनी शुरू हुई।

इनके ग्वालियर पहुँचने की कहानी बड़ी ही दिलचस्प है। घसीट ख़ाँ अपने दो-एक शागिर्दों को लेकर ग्वालियर पहुँचे और एक सराय में ठहर गए। वहाँ इनकी जान-पहचान किसी से नहीं थी। इसलिए यह कुछ परेशान थे कि अपना परिचय लोगों को किस प्रकार से दें। संयोगवश इसी सराय में दो एक गाने-बजाने वाले और भी ठहरे हुए थे। उनसे घसीट ख़ाँ को मालूम हुआ कि दो-एक दिन बाद ही बाई चन्द्रभागा बाई के यहाँ गाने-बजाने का एक बड़ा भारी जलसा होने वाला है जिसमें शहर के सब गवैये जमा होंगे और बाहर से भी जो लोग नये आये होंगे, उन्हें बुलाया जायगा। इन्हीं लोगों ने घसीट ख़ाँ का ज़िक्र भी चन्द्रभागा बाई के यहाँ कर दिया और यह कहा कि कहीं से गाने-बजाने का शौक़ रखनेवाले कोई फ़क़ीर आये हुए हैं। इस तरह से इन्हें भी उस जलसे के लिए निमन्त्रण मिला और नियत समय पर यह जलसे में उपस्थित हो गए। मगर यह किसी को जानते न थे, इसलिये महफ़िल में यह कोने में दुबक कर बैठ गए और अपने दोनों शागिर्दों को भी पास बिठा लिया जिनके पास तम्बूरे की एक छोटी-सी जोड़ी थी। बाई शुरू में अपने मेहमानों के आदर-सत्कार में लगी हुई थी, इसलिए इनकी तरफ कोई ख़ास ध्यान नहीं दिया। लेकिन दूसरे अपरिचित नये मेहमानों की भाँति इन्हें भी सम्मान के साथ ही बिठाया। खाना-पीना ख़तम होने के बाद जब संगीत का कार्य-क्रम शुरू हुआ तो एक के बाद एक कई कलाकार आये और अपना गाना-बजाना पेश करते रहे। आखिर में हद्दू ख़ाँ, हस्सू ख़ाँ और नत्थू ख़ाँ की

भी बारी आई। हद्दू ख़ाँ साहब के बैठते ही गाने में बड़ा मज़ा आने लगा और जलसा पूरी तौर से जम गया। हद्दू ख़ाँ साहब ने ढाई-तीन घंटे तक बड़ी मेहनत के साथ गाया और अपनी गायकी के सब रंग श्रोताओं के सामने पेश किये। सारी महफ़िल ख़ाँ साहब की हर तान पर ख़ुश होती और दाद देती थी। उनका गाना ख़त्म होते ही किसी ने कहा कि जलसा ख़त्म हो गया, साज़ उठाने चाहिए। यह सुनते ही घसीट ख़ाँ का एक शागिर्द उठ खड़ा हुआ और बोला, "सब साहब बैठे रहें, जलसा अभी बाक़ी है।" यह बात सुनकर हद्दू ख़ाँ और उनके शागिर्द बहुत बिगड़े और कहने लगे, "अब हमारे बाद और कौन गा सकता है?" यह सुन कर बाई चन्द्रभागा ने कहा, "कोई ग़रीब फ़क़ीर है और अगर उसका दिल चाहता है तो उसे भी क्यों न थोड़ा-सा समय दिया जाय।" इस बात पर सब लोग चुप हो गये और घसीट ख़ाँ गाने के स्थान पर आ बैठे और अपने छोटे-से तम्बूरे की जोड़ी मिलाने लगे। तम्बूरे छोटे अवश्य थे, पर उन्हें घसीट ख़ाँ ने ऐसा मिलाया कि महफ़िल में चारों तरफ़ स्वर गूँजने लगे। घसीट ख़ाँ ने बैठते ही राग परज में होरी-धमार शुरू किया और इस अन्दाज़ से स्थायी-अन्तरा अदा किया कि सुननेवाले बहुत प्रभावित हुए और कुछ ही मिनटों में इतने बेबस हो गये कि कुछ लोग रोने और अपना सिर धुनने लगे। यहाँ तक कि हद्दू ख़ाँ, हस्सू ख़ाँ भी चुप न रह सके और बड़ी हैरत में आपस में बात करने लगे कि यह ऐसा कौन गवैया आ पहुँचा जिसके गाने में इतना असर है कि दिल बेक़ाबू हुआ जाता है? फिर क्या था, चारों तरफ़ से घसीट ख़ाँ साहब के गाने की तारीफ़ होने लगी। जलसा ख़त्म होने के बाद हद्दू ख़ाँ और हस्सू ख़ाँ बड़ी मुहब्बत के साथ इनसे गले मिले और इनके नाम वग़ैरह की जानकारी हासिल की। चन्द्रभागा बाई भी इनके गाने से इतनी प्रभावित हुईं कि इन्हें सराय से बुलवा कर अपने यहाँ ही ठहरा लिया और इनकी मेह-मानदारी और आदर-सत्कार में कोई भी कसर न उठा रक्खी। इनकी तारीफ़ धीरे-धीरे महाराजा सिंधिया के दरबार में भी पहुँची और

उन्होंने भी बुला कर इनका गाना सुना। महाराजा साहब इनके गाने से बहुत ही प्रसन्न हुए और इन्हें बहुत-कुछ पुरस्कार आदि प्रदान किये।

खाँ साहब कुछ दिन ग्वालियर रहे और फिर अपने घर लौट आये। इस बार दस-पाँच रोज घर ठहरने के बाद यह राजस्थान के दौरे पर निकले और भरतपुर, अलवर, जयपुर और कितनी ही छोटी-बड़ी रियासतों में अपने गाने से धूम मचाते हुए घूमते रहे। अब तो सारे हिन्दुस्तान में इनका नाम था और दूर-दूर से इनके पास निमंत्रण आने लगे। देश भर में इनके गाने की चर्चा होने लगी थी और यह आम तौर पर माना जाता था कि इनसे बेहतर होरी-धमार गाने वाला कोई दूसरा नहीं है। यह स्वभाव से बड़े घुमक्कड़ और साधु प्रकृति के व्यक्ति थे और आज़ाद रहना पसन्द करते थे। इसलिए कहीं भी नौकर बनकर नहीं रहे। इनके गाने के बारे में मेरे दादा साहब कहा करते थे कि उसमें ऐसा असर था कि हर सुननेवाला मस्त हो जाता था और यह जी चाहता था कि दुनिया से दूर निकल जाएँ और भगवान से लौ लगाएँ। इनका देहांत सन् १८८० के क़रीब हुआ।

छोटे ख़ाँ

दूल्हे ख़ाँ के छोटे बेटे और घसीट ख़ाँ के भाई छोटे ख़ाँ थे।* इनकी तालीम भी बड़े भाई के साथ-साथ ही हुई थी और ध्रुपद-धमार की गायकी पर इन्हें भी पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त था। मगर इनको यह सूझा कि मैं गाना छोड़ कर पखावज सीखूँ और अपने बड़े भाई के साथ बैठकर पखावज बजाऊँ। इसी विचार से यह दतिया-ग्वालियर की तरफ़ गये और वहाँ जाकर कुदऊसिंह जी के शागिर्द हुए। इन्होंने बरसों गुरू की दिल से सेवा की और पखावज की बहुत उत्तम शिक्षा प्राप्त की। इनकी मेहनत और अभ्यास ने इनको पूरी-पूरी सफलता भी दी और जब यह ख़ूब तैयार बजाने लगे तो गुरू से आज्ञा लेकर आगरे आये और अपने बड़े भाई घसीट ख़ाँ के साथ बैठकर पखावज बजाने लगे।

जिस प्रकार घसीट ख़ाँ गाने में प्रसिद्ध हुए, उसी प्रकार यह पखावज में। उन दिनों कलकत्ते में संगीत-प्रेमियों में होरी, ध्रुपद और पखावज का शौक़ अधिक था। छोटे ख़ाँ कलकत्ता पहुँचे तो इनकी बड़ी क़द्र हुई और वहाँ के लोगों ने इन्हें कलकत्ते में ही ठहरा लिया। बहुत से संगीत-प्रेमी वहाँ इनके शागिर्द भी बने। किसी ने इनसे होरी-ध्रुपद सीखा और किसी ने पखावज की तालीम ली। इसके अतिरिक्त दिनाजपुर तथा दरभंगा के महाराजा और बंगाल के दूसरे समझदार रईस इनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। साल दो साल के बाद यह एक बार अपने वतन की तरफ़ आया करते थे और उसी मौक़े पर यह जयपुर भी आते थे। जयपुर में ही मुझे इनकी सेवा का अवसर मिला और वहीं मैंने इनसे चार चीज़ें भी हासिल कीं जिनका ज़िक्र मैं अपने उस्तादों के सिलसिले में कर चुका हूँ। इनके सुपुत्र ख़ादिम हुसैन भी बहुत अच्छा पखावज बजाते थे। इनका देहान्त सन् १९१२ में आगरे में हुआ, मगर इनकी इच्छा के अनुसार इन्हें फ़तहपुर सीकरी में ही दफ़नाया गया।

ग़ुलाम रसूल ख़ाँ

ग़ुलाम रसूल ख़ाँ का जन्म फ़तहपुर सीकरी में सन् १८४२ में हुआ था और यह मौला अली सुमरन नामक एक प्रसिद्ध गवैये के वंश में पैदा हुए थे। इन्हें अपने घराने से होरी, ध्रुपद और अस्थायी-ख़याल की बाक़ायदा तालीम मिली थी। यह बड़े सीधे-सच्चे स्वभाव के इन्सान थे और इन्हें अपनी शोहरत ज़्यादा पसन्द न थी। यह कहीं आते-जाते भी न थे और जीवन भर अपने वतन में रहकर ही संगीत-साधना करते रहे। पर शागिर्दों को सिखाने का इनको बड़ा शौक़ था और आगरे और उसके आस-पास इनके बहुत-से शागिर्द अब भी पाये जाते हैं।

शाद ख़ाँ

फ़तहपुर घराने के नामी बुज़ुर्गों में एक शाद ख़ाँ भी थे। आगरा-निवासी काशी-नरेश के दरबार में यह बहुत दिन तक नौकर रहे और

आगरा इनसे उम्र भर नहीं छूटा। इसके अतिरिक्त यह शेख सलीम चिश्ती की दरगाह के ख़ास क़व्वालों में से थे और हर साल उर्स के मौक़े पर हाज़िर होते थे। इसी घराने में एक गवैये फ़िदा हुसैन ख़ाँ भी हुए हैं जो ग्वालियर के महाराजा माधोराव सिंधिया के दरबार में नौकर थे। इन्हें शायरी का भी शौक़ था।

मदारबख़्श

आगरे के आस-पास के संगीतज्ञों में भरतपुर के एक-दो व्यक्तियों का नाम भी उल्लेखनीय है। इनमें एक हैं भरतपुर के मदारबख़्श। इनकी अस्थायी-ख़याल की गायकी बड़ी लोकप्रिय थी। इनका घराना बहुत अरसे से रियासत भरपुर में ही रहता चला आया था और दरबार में इनका बड़ा सम्मान था। महाराजा जसवंतसिंह स्वयं इनके शागिर्द थे और इनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। उन्होंने इन्हें एक गाँव भी जागीर में दिया था और सवारी के लिए हाथी दे रक्खा था। इनका वेतन भी उचित ही था। यह बड़े भोले और सीधे स्वभाव के व्यक्ति थे और इन्हें दुनिया की किसी चीज़ का लालच न था। इनके बारे में एक किस्सा हम पहले ही लिख चुके हैं कि किस तरह से इन्होंने बादशाह के हाथ पर बैठनेवाली चिड़िया को दूसरी तमाम धन-दौलत से अधिक महत्व दिया था। इनका देहांत महाराज जसवन्तसिंह के राज्यकाल में ही हुआ।

भरतपुर में ही नदिया वाले ख़ानदान के नाम से मशहूर एक केसर ख़ाँ भी थे। महाराज जसवन्तसिंह इनके गाने की भी बहुत क़द्र करते थे और इन्हें भी एक गाँव जागीर में दे रक्खा था। इसी घराने में धन्ने ख़ाँ नाम के भी एक गवैये हुए। इसी प्रकार भरतपुर के गायकों में अली-ख़ाँ का नाम भी लिया जा सकता है।

ग्वालियर का घराना

अब्दुल्ला ख़ाँ और क़ादिरबख़्श ख़ाँ

ग्वालियर घराने का निकास अब्दुल्ला खाँ और क़ादिरबख़्श ख़ाँ नाम के दो भाइयों से हुआ। अस्थायी-ख़याल के ये दोनों माने हुए उस्ताद हुए हैं और अपने ज़माने में ये हिन्दुस्तान के बेहतरीन गवैये समझे जाते थे। सुना गया है कि ये दिल्ली के पास के किसी छोटे-से गाँव के रहने वाले थे, मगर इनके पिता और इनका सारा ख़ानदान ग्वालियर में ही रहा और ग्वालियर दरबार से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। ये दोनों स्वयं महाराज झिनकूजी राव सिंधिया के यहाँ नौकर थे। इन दोनों का स्वर्गवास ग्वालियर में ही हुआ।

नत्थन ख़ाँ और पीरबख़्श

क़ादिरबख़्श के दो पुत्र थे--नत्थन खाँ और पीरबख़्श। इन दोनों को अपने पिता से संगीत विद्या का पूरा-पूरा ज्ञान मिला था। इनके अस्थायी-ख़याल में ध्रुपद की गम्भीरता और गहराई थी और लयदारी में भी होरी और ध्रुपद का प्रभाव स्पष्ट था। इनका स्थायी-अन्तरा सारे हिन्दुस्तान में मशहूर था और इनके गाने के असर को सब लोग स्वीकार करते थे। ग्वालियर के महाराज दौलतराव सिंधिया इनके शागिर्द हुए और इनसे संगीत की शिक्षा ली। ये लोग स्थायी रूप से ग्वालियर में ही रहे और वहीं इन्होंने अपने होनहार बेटे हद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थू ख़ाँ को संगीत की उच्च शिक्षा दी थी। आगरे वाले घग्घे ख़ुदाबख़्श भी इन्हीं के शागिर्द थे जो असर की दृष्टि से अपने उस्ताद

के सच्चे शागिर्द समझे गए। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में इनका स्वर्गवास हुआ।

हद्दू खाँ

हद्दू खाँ नत्थन खाँ के सुपुत्र थे और ग्वालियर में पैदा हुए थे। इन्हें संगीत की शिक्षा अपने पिता और चचा पीरबख्श से पूरी-पूरी मिली। हम इस बात का पहले ज़िक्र कर चुके हैं कि किस प्रकार महाराज जीवाजीराव सिंधिया ने इन्हें बड़े मुहम्मद ख़ाँ क़व्वाल-बच्चे का गाना पर्दे के पीछे बिठाकर सुनवाया था और उन्हें उसी तरह की मेहनत से तैयार करके अन्त में फिर नियमित रूप से मुहम्मद खाँ साहब का शागिर्द बनवा दिया था। यह स्वाभाविक ही था कि इस तालीम से इनके गाने में क़व्वाल-बच्चों की रविश और उनकी तान के मुश्किल पेच सभी आ गए और इनके गाने में सुरदारी के साथ-साथ तैयारी और फिरत भी शामिल हो गई। इनका नाम सारे हिन्दुस्तान में मशहूर था और इनकी टक्कर के गवैये पिछले सौ-दो सौ वर्षों में बहुत थोड़े ही हुए हैं। ग्वालियर-नरेश महाराज सिंधिया इनसे बहुत मुहब्बत करते थे और उन्होंने इनको बहुत-कुछ पुरस्कार इनाम आदि दिए थे तथा इन्हें अपना दरबारी गवैया नियुक्त कर लिया था। इन्हें दरबार से सात सौ रुपये वेतन के अतिरिक्त एक हाथी और बहुत-से घोड़े भी इनाम में मिले हुए थे। इनका ज़माना वह था जब हिन्दुस्तान में एक से एक बड़े गवैये मौजूद थे जिनमें से कुछेक इनकी टक्कर के भी थे, जैसे तानरस खाँ, मुबारक अली खाँ आदि। यह बहुत-सी रियासतों में बुलाये गये जहाँ से इन्हें धन-दौलत और हर तरह का सम्मान प्राप्त हुआ मगर इन्होंने ग्वालियर राज्य की सेवा कभी नहीं छोड़ी और सन् १८७० में ग्वालियर में ही इनका देहान्त हुआ।

खाँ साहब बड़े भोले, सच्चे-सीधे और दिल के साफ़ थे। कपटी आदमियों से इन्हें बड़ी घृणा थी और स्वयं मन में जो भी बात

आती, फ़ौरन कह देते थे। एक बार यह आगरे आये हुए थे और घग्घे ख़ुदाबख़्श के मकान पर ठहरे थे। एक रोज़ सुबह से शाम तक गाना होता रहा। गरमी के दिन थे। पाँच बजे ख़ाँ साहब जब नहा-धो चुके तो ख़ुदाबख़्श ने कहा, "चलिए, आज आपको ताजमहल दिखा लायें।" उसके बाद ताँगे मँगवाये गए और ये लोग ताजमहल के लिए रवाना हुए। वहाँ पहुँचते ही हद्दू ख़ाँ की दृष्टि जो ताजमहल के गुम्बद पर पड़ी तो मुँह से निकला, "भाई साहब, वाह-वाह! यह गुम्बद क्या है, यह तो हमारी तान का एक दाना है!"

ऊपर हमने कहा है कि महाराज जीवाजी राव सिंधिया ने इन्हें हर तरह का सम्मान और धन-दौलत दे रक्खा था। पर इनकी यह विशेषता थी कि यह कभी अपने मान-रुतबे और धन-दौलत में नहीं डूबे और संगीत विद्या की सेवा करना ही सदा अपना धर्म समझते रहे। इसी से इन्होंने अपने शिष्यों को बहुत अच्छा सिखाकर तैयार किया। इतने परिश्रम और लगन से शायद ही किसी उस्ताद ने इतने योग्य शिष्य तैयार किये हों। आज भी हिन्दुस्तान भर में, विशेषकर महाराष्ट्र में, इनके संगीत की परम्परा पाई जाती है। इनके शिष्यों में मुख्य इनके पुत्र मुहम्मद ख़ाँ और रहमत ख़ाँ, भतीजे निसार हुसैन ख़ाँ और मेंहदी हुसैन ख़ाँ तो हैं ही। इनके अतिरिक्त पण्डित दीक्षित, पण्डित बालागुरु, पण्डित जोशी, बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, बन्ने ख़ाँ पंजाबी, इमदाद ख़ाँ सहसवानी, इनायत हुसैन ख़ाँ, नज़ीर ख़ाँ आदि बहुत प्रसिद्ध हुए हैं।

हस्सू ख़ाँ

ग्वालियर घराने के संगीतज्ञों में हद्दू ख़ाँ, हस्सू ख़ाँ का नाम एक साथ ही लिया जाता है और ये इसी प्रकार से प्रसिद्ध हुए हैं। हस्सू ख़ाँ नत्थन ख़ाँ के सुपुत्र थे और ग्वालियर में ही पैदा हुए। इन्हें भी संगीत की शिक्षा अपने पिता और चचा पीरबख़्श से मिली थी और यह बहुत ऊँचे दर्जे के गवैये गिने जाते हैं। कहा जाता है कि इन्होंने अपने शिक्षा

काल में ऐसी मेहनत की थी कि जिस जगह बैठकर यह अभ्यास करते थे, वहाँ इनके बैठने से गढ़े पड़ गए थे। भाई हद्दू ख़ाँ की भाँति इनका भी महाराजा ग्वालियर के दरबार में बहुत ऊँचा स्थान था। यह जीवन भर ग्वालियर में ही रहे और वहीं इनका स्वर्गवास हुआ।

नत्थू ख़ाँ

नत्थू ख़ाँ का जन्म भी ग्वालियर में हुआ। इनके पिता नत्थन ख़ाँ और चचा पीरबख़्श ने हद्दू ख़ाँ के साथ इनकी भी तालीम शुरू की थी। मगर उस्ताद ने इनकी शैली हद्दू ख़ाँ से कुछ अलग डाली थी। यह अस्थायी-ख़याल के उत्कृष्ट गायक थे। यह तराना भी बड़े शौक़ से गाते थे और उसमें इनकी तैयारी की बहार देखने लायक़ होती थी। तराने में जब तिरवट आ जाता था तो इनके गाने का रंग बहुत ही जम उठता था। क्योंकि यह बार-बार हर छोटी-बड़ी तान को ख़तम करके तिरवट शुरू करते थे और फिर तिरवट ख़तम करके तराने के बोल पकड़ लेते थे। इनकी इस ख़ूबी से सुनने वाले बहुत चकित हो जाया करते थे और अपने ज़माने में यह ख़ूबी इन्हीं के पास थी। महाराज जीवाजी राव सिंधिया इनसे बहुत प्रसन्न थे और इनका बड़ा आदर करते थे तथा इन्हें अपने दरबार का एक रत्न मानते थे। महाराजा ने इनके लिए एक हवेली और बाग़ भी दे रक्खा था। बहुत-से महाराष्ट्रीय ब्राह्मण इनके शागिर्द हुए।

हद्दू ख़ाँ के दो पुत्र थे—मुहम्मद ख़ाँ और रहमत ख़ाँ। निसार हुसैन ख़ाँ इनके भाई के पुत्र थे। ये तीनों ही ग्वालियर में पैदा हुए और तीनों को ही अपने पिता और चचाओं से संगीत की अच्छी शिक्षा मिली। ये अपने घराने की गायकी के सच्चे उत्तराधिकारी थे। इन तीनों में मुहम्मद ख़ाँ और रहमत ख़ाँ बहुत ऊँचे दर्जे के गायक थे और निसार हुसैन ख़ाँ संगीत शास्त्र के बड़े भारी पण्डित थे। अपने ख़ानदान की बहुत-सी पुरानी चीजें इन्हें याद थीं और यह बात सारे हिन्दुस्तान में

प्रसिद्ध थी । रामकृष्ण बुआ इनके बहुत प्रसिद्ध शिष्य हुए हैं । बीसवीं सदी के आरम्भ में इन तीनों का देहान्त हुआ ।

पंडित दीक्षित

हद्दू खाँ के दूसरे योग्य शिष्य पण्डित दीक्षित थे । इन्होंने अपने गुरुभाई जोशी बुआ को भी बहुत-कुछ सिखाया था । यह बड़ी साधु प्रकृति के व्यक्ति थे और रुपये-पैसे की अधिक परवाह नहीं करते थे । पैसे के लिए यह कभी ग्वालियर से बाहर नहीं गए । यह अपने आप कभी किसी को गाना सुनाने नहीं जाते थे । जिसे इनका गाना सुनना होता, वह स्वयं ही इनके पास आता । इनका सन् १८०० के लगभग ग्वालियर में ही स्वर्गवास हुआ ।

जोशी बुआ

हद्दू खाँ के शिष्यों में जोशी बुआ का ज़िक्र हम कर चुके हैं । यह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे और अपने गुरु से इन्होंने भली भाँति संगीत विद्या सीखी थी । साथ ही अपने परिश्रम के कारण इन्हें सारे हिन्दुस्तान में ख्याति मिली थी । इनके प्रसिद्ध शिष्यों में बालकृष्ण बुआ सर्व-परिचित हैं ।

बाला गुरु भी हद्दू खाँ के शिष्य थे । अस्थायी-ख़याल अच्छा गाते थे और आवाज़ भी बुलन्द और सुरीली थी । यह भी सदा ग्वालियर में ही रहे और महाराज माधोराव सिंधिया के समय में इनका स्वर्गवास हुआ ।

बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर

हद्दू खाँ के घराने के अत्यन्त प्रसिद्ध शिष्यों में बालकृष्ण बुआ का नाम है । इन्हें संगीत की शिक्षा जोशी बुआ से मिली थी पर अपनी योग्यता और परिश्रम से इन्होंने अपना ही नहीं, सारे ग्वालियर घराने का नाम उजागर किया । यह हद्दू खाँ के पुत्र मुहम्मद खाँ के साथ बहुत दिन तक रहे और बम्बई में जलसों में अक्सर इनके साथ गाते

थे। इनके अस्थायी-ख़याल तथा गायकी की शैली की सारे हिन्दुस्तान में बड़ी ख्याति हुई। विशेष रूप से इनकी ख्याति पश्चिम-दक्षिण भारत में बहुत हुई और दक्षिण में भी इन्होंने संगीत का बहुत प्रचार किया। इनके शिष्य भी बहुत उच्च कोटि के गायक हुए हैं, जिनमें विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, मिराशी बुआ, गण्डू बुआ औंधकर, अनन्त मनोहर जोशी, भाटे बुआ, इंगले बुआ आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। अपने सुपुत्र अन्ना बुआ को भी इन्होंने ख़ूब तैयार किया था किन्तु इनका जवानी में ही देहांत हो गया। मैंने भी इन्हें सन् १९२०-२२ में गन्धर्व महाविद्यालय की एक कान्फ्रेंस में सुना था।

विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

यह बालकृष्ण बुआ के शिष्य थे और बहुत सुरीला गाते थे। इनकी आवाज़ पाटदार और बड़ी रोशन थी। इनका नाम सारे हिन्दुस्तान में हुआ। इसका कारण इनकी सुरीली गायकी के अलावा इनका संगीत-प्रेम भी था। एक प्रकार से संगीत के प्रचार में इन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया और जगह-जगह, विशेषकर बम्बई में, कान्फ्रेन्सें करके संगीत के प्रति जन-साधारण के मन में सम्मान का भाव उत्पन्न किया। इन्होंने बहुत-से शिष्य भी तैयार किये और कई एक संगीत विद्यालय खोले। इनके द्वारा स्थापित गन्धर्व महाविद्यालय संगीत का सबसे बड़ा शिक्षा-केन्द्र बना जिसकी इमारत के लिए इन्होंने जयपुर, अलवर, दिल्ली, लाहौर, इलाहाबाद, बड़ौदा और दूसरी रियासतों में जलसे करके पैसा इकट्ठा किया। जन-साधारण और रईस दोनों ने ही इनके काम को सराहा और उसमें हाथ बँटाया। इस तरह गन्धर्व महाविद्यालय की इमारत पूरी हुई। इनके शिष्यों में कुछेक बहुत ही प्रसिद्ध गायक हैं, जैसे पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर, विनायकराव पटवर्द्धन, नारायणराव व्यास, पाध्ये बुआ, गोखले बुआ जिनका बम्बई में संगीत विद्यालय है, बी०

आर० देवधर जिनका स्कूल ऑफ़ इण्डियन म्यूजिक है, शंकरराव व्यास, मास्टर नौरंग तथा पण्डित जी के सुपुत्र डी० वी० पलुस्कर।

अनन्त मनोहर जोशी

इनका जन्म सन् १८८० में औंध में हुआ। यह भी बालकृष्ण बुआ के शिष्य थे और उनसे इन्होंने ऊँचे दर्जे का संगीत सीखा तथा स्वयं परिश्रम करके बहुत उन्नति की। इन्होंने सन् १९१४ में बम्बई में गुरु समर्थ संगीत विद्यालय खोला जो कई वर्षों तक चला। पर स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण यह अपनी जन्मभूमि औंध चले गये और तब से कहीं बाहर नहीं गये। अभी हाल में ही इन्हें संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुआ है। इनके सुपुत्र गजाननराव जोशी भी अच्छा गाते हैं। इनकी विशेषता यह है कि जितना अच्छा गाते हैं, उतने ही वायलिन बजाने में भी पटु हैं। इन्हें अभी तक संगीत कला का ज्ञान बढ़ाने का शौक़ है। पिछले दस वर्षों में इन्होंने अल्लादिया ख़ाँ के सुपुत्र भूरजी ख़ाँ से भी संगीत की शिक्षा ली है और बहुत चीज़ें मुझसे भी याद की हैं। आजकल यह रेडियो में सुपरवाइज़र हैं।

कृष्णराव शंकर पंडित

हद्दू ख़ाँ के घराने के शागिर्दों में पण्डित कृष्णराव का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। इनके पिता शंकरराव पण्डित हद्दू ख़ाँ के ही शागिर्द थे और बड़े ऊँचे दर्जे के गायक थे। इन्होंने अपने पुत्र को भी बहुत अच्छी संगीत की शिक्षा दी और आज कृष्णराव हिन्दुस्तान के बड़े ख्याति-प्राप्त संगीतज्ञों में गिने जाते हैं। इन्हें दूर-दूर से निमंत्रण मिलते हैं और प्रायः यह संगीत सम्मेलनों में शामिल होते हैं। कलकत्ता, बम्बई, लखनऊ, दिल्ली, बनारस, इलाहाबाद आदि शहरों में इनका प्रभाव अधिक है। महाराजा माधवराव सिंधिया के ज़माने में यह राज्य के नौकर भी रहे किन्तु आजकल अपना अलग स्कूल ग्वालियर में चलाते हैं। इनके चाचा

पण्डित एकनाथ भी संगीत के विद्वान् थे जिनके पुत्र रघुनाथराव भी बड़ा अच्छा गाते थे। पण्डित कृष्णराव अपने सुपुत्र को भी संगीत की अच्छी शिक्षा दे रहे हैं और आशा है कि वह अपने घराने का नाम रोशन करेंगे। इनके अलावा भी बहुत-से शिष्य पण्डित कृष्णराव द्वारा तैयार हो रहे हैं।

राजाभैया पूँछवाले

हद्दू खाँ के घराने के एक अन्य प्रसिद्ध शिष्य थे पण्डित राजाभैया पूँछवाले। मार्च १९५६ में इनका ८० वर्ष से अधिक अवस्था में देहान्त हो गया। यह अस्थायी-ख़याल अपने घराने के रंग से गाते थे और पूरे भारतवर्ष में इनका नाम था। यह ग्वालियर राज्य के माधव संगीत विद्यालय के प्रिंसिपल थे। मृत्यु से एक सप्ताह पहले इन्हें संगीत नाटक अकादेमी की ओर से पुरस्कार और सम्मान देने की घोषणा हुई। दुर्भाग्यवश राष्ट्रपति के हाथों से उसे ले सकने के पहले ही इनका देहांत हो गया।

मेंहदी हुसैन ख़ाँ

मेंहदी हुसैन ख़ाँ का जन्म भी ग्वालियर में हुआ। यह हस्सू खाँ के पौत्र थे और अपने बुज़ुर्गों से तालीम पाकर हिन्दुस्तान के अच्छे गवैये माने जाने लगे। अपने बचपन में मैंने भी इन्हें देखा और इनका गाना सुना है। यह पुराने चलन के आदमी थे, भड़कीला लिबास पहनते और गलमुच्छे रखते थे। इन्हें घोड़े की सवारी का भी बहुत शौक़ था और पाँच-दस घोड़े हमेशा साथ रखते थे। इनकी बहुत प्रसिद्ध शिष्या भंगूबाई हुई है। सन् १९१५ में इनका देहांत हुआ।

नज़ीर ख़ाँ

नज़ीर ख़ाँ वज़ीर ख़ाँ के सुपुत्र थे और इनका जन्म सन् १८५० में आगरे में हुआ था। प्रारम्भिक संगीत की शिक्षा इन्हें अपने पिता से ही मिली, पर फिर यह ग्वालियर चले आये और वहाँ हद्दू ख़ाँ को अपना

गाना सुनाया और खूब अभ्यास करते रहे। जवान होने पर यह बहुत ऊँचे दर्जे के गवैये प्रमाणित हुए और हिन्दुस्तान भर में इनका नाम हुआ। इन्हें जयपुर, इन्दौर, ग्वालियर, जोधपुर आदि में बहुत सम्मान और पुरस्कार आदि मिले और नेपाल राज्य के भी बड़े-बड़े जलसों में शामिल होकर इन्होंने बहुत-से पुरस्कार प्राप्त किये। यह जोधपुर दरबार में नौकर थे। सन् १६१० में इनकी आगरे में ही मृत्यु हुई। इन्होंने अपने छोटे भाई मुनव्वर खाँ को बहुत अच्छा सिखाया जो इन्दौर में सेठ हुकम-चन्द के यहाँ मुलाजिम थे। आज कल मुनव्वर ख़ाँ के भतीजे ग़ुलाम कादिर ख़ाँ बहुत अच्छा अस्थायी-ख़याल गाते हैं। बम्बई में इनका अच्छा नाम है। यह बीनकार इन्दौरवाले वहीद ख़ाँ के छोटे बेटे हैं।

हफ़ीज़ ख़ाँ

हद्दू खाँ के घराने के शागिर्द कल्लन खाँ भी थे जिनके बड़े पुत्र का नाम हफ़ीज़ ख़ाँ था। यह रिवाड़ी के पास गुड़यानी के रहने वाले थे। हफ़ीज खाँ को पिता से बहुत अच्छी शिक्षा मिली और उनके बाद इनायत हुसैन ख़ाँ से भी बहुत अच्छा सीखा। हफ़ीज़ ख़ाँ ने बड़ी जी-तोड़ मेहनत की थी जिसका फल यह निकला कि वह अपने घराने में बहुत अच्छे गायक हुए। बहुत दिनों तक वह हैदराबाद भी रहे और वहाँ के कुछ बुजुर्गों से भी इन्होंने फ़ायदा उठाया था। यह पहले महाराजा मैसूर के यहाँ और बाद में इन्दौर राज्य में नौकर हुए। सन १६२० के लगभग इन्दौर में ही इनका स्वर्गवास हुआ।

बशीर ख़ाँ

कल्लन खाँ गुड़यानी के दूसरे पुत्र बशीर ख़ाँ थे। इन्हें संगीत विद्या पिता के अतिरिक्त दिल्ली वाले उमराव ख़ाँ और सहसवान वाले इनायत हुसैन ख़ाँ से मिली। यह भी प्रसिद्ध गायक हुए और रियासत मैसूर, भावनगर तथा इन्दौर आदि स्थानों में नौकर रहे। पर यह स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे, इसलिए कहीं बँध कर रहना पसन्द नहीं करते थे।

सन् १६४० में इनका देहान्त हुआ। इन्होंने अपने भाई हबीब ख़ाँ को भी सिखाकर तैयार किया जो बहुत दिनों तक हैदराबाद में रहे और अब आजकल बम्बई में रहते हैं।

ओंकारनाथ ठाकुर

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, ग्वालियर घराने में पण्डित बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर और उनकी शिष्य-परम्परा ने संगीत क्षेत्र में बड़ा भारी नाम पैदा किया। पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर विष्णु दिगम्बर के परम यशस्वी शिष्य हैं। यह बचपन से ही अपने गुरु की सेवा में लगे और बहुत परिश्रम करके उनसे संगीत विद्या सीखी। गन्धर्व महाविद्यालय खुलने के बाद भी इन्होंने अपना संगीत का अध्ययन जारी रक्खा और गुरु की मृत्यु तक यह उनकी सेवा में उपस्थित रहे। आजकल हिंदुस्तान में इनका बड़ा नाम है। यह बड़ी-बड़ी कान्फ्रेन्सों में बुलाये जाते हैं, बल्कि कोई संगीत सम्मेलन तब तक सफल नहीं माना जाता जब तक उसमें पण्डित ओंकारनाथ शामिल न हों। इनकी विशेषता यह है कि संगीत के द्वारा ही आजीविका चलने पर भी इन्होंने कभी कला के महत्व को घटने नहीं दिया और इसीलिए इन्हें बुलाने वाले कभी इनके पारिश्रमिक को घटाने की हिम्मत नहीं कर सके हैं। यह बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत विभाग के प्रधान भी रहे। यह योरुप भी गये थे और वहाँ भारतीय संगीत के लिए लोगों में आदर उत्पन्न करने में सफल हुए थे। ईसाइयों के धर्मगुरु पोप ने इन्हें रोम आने का निमन्त्रण दिया था और इन्होंने वहाँ जाकर उन्हें अपना संगीत सुनाया था। इसी प्रकार अफ़ग़ानिस्तान के अमीर ने भी इन्हें बुलाकर संगीत सुना और बहुत प्रसन्न होकर इन्हें बहुत-कुछ पुरस्कार आदि दिए। यह इनके संगीत-प्रेम का ही प्रमाण है कि इन्होंने उसके प्रचार के लिए विश्वविद्यालय में रहना स्वीकार किया। यह संगीत शास्त्र के भी पण्डित हैं और इन्होंने इस विषय में कई दिलचस्प खोजें की हैं।

बी० आर० देवधर

यह भी विष्णु दिगम्बर के शिष्य हैं और मिरज के रहने वाले हैं। इन्होंने प्रारम्भ में बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करके संगीत सीखा और फिर बम्बई में स्कूल आफ़ इण्डियन म्यूज़िक नामक संस्था की स्थापना की जो बहुत वर्षों से चल रही है। इनके स्कूल में बहुत-से योग्य शिष्य तैयार हुए हैं जिनमें कुमार गन्धर्व ने बहुत ही अल्पावस्था में बहुत नाम पैदा किया। देवधर जी को विद्या सीखने का बड़ा गहरा शौक़ रहा है। इसलिये इन्होंने कई उस्तादों से संगीत सीखा जिनमें मुहम्मद बशीर ख़ाँ अलीगढ़ वाले, सेंधे ख़ाँ पंजाबी, बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ, सहसवान वाले वाजिद हुसैन ख़ाँ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। यह 'संगीत कला विहार' नामक एक मासिक पत्रिका भी मराठी और हिन्दी में निकालते हैं।

विनायकराव पटवर्द्धन

यह पण्डित विष्णु दिगम्बर के प्रमुख शिष्य हैं। गुरु से संगीत सीखने के बाद शुरू में इन्होंने बहुत-से जलसों में जाकर नाम पैदा किया। उसके बाद गन्धर्व नाटक मण्डली में बरसों रहे और मुख्य भूमिकाएँ करते रहे। उसी ज़माने में इन्होंने पूना में एक संगीत विद्यालय खोला जो आज तक संगीत शिक्षा देता चला आ रहा है। पटवर्द्धन जी दिल्ली, कलकत्ता, नागपुर, पटना, गया, इलाहाबाद, लखनऊ आदि सभी बड़े शहरों के जलसों में बुलाये जाते हैं और सारे भारतवर्ष में इनका नाम है। गन्धर्व मह[illegible] की जितनी भी शाखाएँ हैं, उन सबका प्रबन्ध इन्हीं के हाथों में है।

नारायणराव व्यास

यह भी पण्डित विष्णु दिगम्बर के शिष्य हैं। गुरु से शिक्षा प्राप्त करके इन्होंने खूब मेहनत की और देश भर के जलसों में गाकर बहुत नाम पैदा किया। विशेष रूप से इनके ग्रामोफ़ोन रिकार्ड बहुत पसन्द

किये गये और उससे इनका नाम सारे हिन्दुस्तान में हुआ। बम्बई में दादर में इन्होंने संगीत का एक स्कूल भी खोला है जो अच्छी तरह चल रहा है। इनके भाई शंकरराव व्यास भी अच्छा गाते हैं और स्कूल में भी इनका हाथ बँटाते हैं।

डी० वी० पलुस्कर

यह विष्णु दिगम्बर के सुपुत्र थे। इनके पिता का स्वर्गवास इनकी बहुत थोड़ी ही अवस्था में हो गया जिससे यह बड़े दुखी हो गए थे। बाद में विनायकराव पटवर्द्धन ने इन्हें अपने पास रक्खा और संगीत की शिक्षा देकर बहुत अच्छा तैयार किया। यह पूना में ही रहते थे और सारे हिन्दुस्तान में इनका नाम था। फिल्म 'बैजू बावरा' में इन्होंने कुछ गाने गाये थे और भारतीय शिष्ट-मण्डल के सदस्य होकर यह चीन भी गये थे। भारतीय संगीत संसार को नसे बहुत-सी आशाएँ थीं। किन्तु दुर्भाग्यवश इनका हाल ही में देहान्त हो गया जिससे संगीत की बड़ी भारी क्षति हुई है।

वन्ने ख़ाँ

हद्दू ख़ाँ के शिष्यों में पंजाब के रहने वाले बन्ने ख़ाँ का भी नाम लिया जाना चाहिए। शुरू में इन्होंने संगीत अपने ख़ानदान के बुज़ुर्गों से सीखा, पर फिर बाद में यह ग्वालियर पहुँचे और हद्दू ख़ाँ के शिष्य हो गये जिनके पास यह बहुत दिनों तक सीखते रहे। यह बहुत अच्छा गाते थे और हिन्दुस्तान के नामी गवैयों में इनकी गिनती होती थी। बहुत-सी रियासतों में घूमते-फिरते और नाम कमाते यह हैदराबाद भी पहुँचे जहाँ निज़ाम मीर महमूद अली ख़ाँ आसिफ़जाह ने प्रसन्न होकर इन्हें अपने दरबार में रख लिया। इनका बाक़ी जीवन हैदराबाद में ही बीता। इनके शिष्यों में प्यार ख़ाँ पंजाबी और ठाकुरदास सुनार प्रसिद्ध हुए हैं।

भैया गणपत राव

यह भैया जी और भैया साहब के नाम से बहुत प्रसिद्ध हुए। इनका सम्बन्ध ग्वालियर के राजघराने से था और इन्होंने क़व्वाल-बच्चे सादिक़ अली ख़ाँ लखनवी से संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। आवाज़ की ख़राबी के कारण यह गा तो नहीं सके लेकिन इनकी नज़र हारमोनियम पर गई और उस पर परिश्रम करना शुरू किया। हारमोनियम पहले-पहल योरप से भारत में आया था और भारतीय संगीत के बहुत उपयुक्त नहीं था क्योंकि राग-रागिनियों का पूरा स्वरूप उसमें अदा नहीं हो सकता। भैया साहब की संगीत की जानकारी बहुत ऊँचे दर्जे की थी। इसलिए जो चीज़ें उनके दिमाग़ में थीं, उनको अपने परिश्रम के द्वारा वह हाथ से निकालने का प्रयत्न करते रहे। इसलिए जब उन्होंने देखा कि राग-रागिनी की बारीक़ी के लिए हारमोनियम उपयुक्त नहीं है तो उन्होंने ठुमरी का रंग अख़्तियार किया और धीरे-धीरे ऐसा बजाने लगे कि सारे भारतवर्ष में इनका नाम हो गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हारमोनियम बजाने में कोई इनका सानी नहीं हुआ। इनके बारे में यह कहावत प्रसिद्ध हो गई थी कि हारमोनियम बनाया तो योरप वालों ने पर बजाया भैया साहब ने हिन्दुस्तान में। ठुमरी की प्रसिद्ध गायिकाएँ, गौहर जान, मलिका जान, दूसरी मलिका जान, तथा गायक मौजुद्दीन ख़ाँ, बशीर ख़ाँ, गफ़ूर ख़ाँ, सोहनी, ज़ंगी, मीर इरशाद अली, सज्जाद हुसैन, बाबू श्यामलाल आदि ने इन्हीं से हारमोनियम बजाना सीखा था। इनके ये सारे शिष्य हिन्दुस्तान भर में फले-फूले और उन्होंने भी अपने बहुत-से शिष्य तैयार किये। भैया साहब ज़्यादातर कलकत्ते में ही रहे और सन् १९१५ में धौलपुर रियासत में परलोकवासी हुए।

बाबू ख़ाँ

यह ग्वालियर के एक नामी सितारिये हुए हैं। इनका जन्म सन् १९२५ ईस्वी में हुआ था। सितार इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से सीखा था और

अपनी योग्यता से बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। सितार का इन्होंने इतना अभ्यास किया था तथा उससे यह इतने घुल-मिल गये थे कि जब महफ़िल में बैठते थे तो सितार के सिवाय और किसी तरफ़ देखते ही न थे। इनके समकालीन गवैयों और साथियों ने बहुत बार इस बात का अनुभव किया था कि बजाते समय नज़र बचा कर बाज के तार उतार देने पर भी राग और स्वर में कोई अन्तर नहीं आता था। यह विशेषता इन्हीं को प्राप्त थी। महाराज जीवाजीराव सिंधिया और जयपुर-नरेश इनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। इनका देहान्त ग्वालियर में ही हुआ।

सहारनपुर का घराना

ख़लीफ़ा मुहम्मद ज़माँ

सहारनपुर में बरनावा शरीफ़ के शेख़ ख़लीफ़ा रमज़ानी के शागिर्द ख़लीफ़ा मुहम्मद ज़माँ साहब एक परम धार्मिक सूफ़ी संत हुए हैं। यह अपने ज़माने के बीन, रबाब और सितार के अलावा गाने के बेजोड़ कलाकार समझे जाते थे। इन्होंने संगीत विद्या निर्मूलशाह से सीखी थी। अपने गुरु-भाइयों में सबसे अधिक चतुर होने के कारण गुरु ने इन्हें ख़लीफ़ा की उपाधि दी थी और यह ख़लीफ़ा के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। यह अन्तिम मुग़ल-सम्राट् बहादुरशाह ज़फ़र के दरबार में थे और दिल्ली में ही इनका स्वर्गवास हुआ।

ग़ुलाम तक़ी ख़ाँ और ग़ुलाम ज़ाकिर ख़ाँ

ग़ुलाम तक़ी ख़ाँ और ग़ुलाम ज़ाकिर ख़ाँ अल्लारक्खे ख़ाँ के सुपुत्र थे। इन दोनों ने संगीत की शिक्षा अपने पिता से पाई। यह होरी, ध्रुपद ख़ूब अच्छा गाते थे। इनके कुछ भाई और भी थे जिनके नाम हैं: ग़ुलाम आज़म, ग़ुलाम क़ासिम, ग़ुलाम ज़ामिन। ये लोग भी अच्छे गवैयों में गिने जाते थे और ग्वालियर, जयपुर, अलवर के दरबारों में बिखरे हुए थे जहाँ इन लोगों का बहुत आदर-सत्कार होता था।

बन्दे अली ख़ाँ

बन्दे अली ख़ाँ ग़ुलाम ज़ाकिर ख़ाँ के पुत्र थे। इन्होंने अपने पिता और चाचाओं से संगीत सीखा और बीन बजाने में उच्च कोटि की योग्यता प्राप्त की। बरसों मेहनत करके इन्होंने ऐसा कमाल हासिल किया था।

मैंने अपने बुज़ुर्गों से इनके बारे में सुना है कि यह बड़े फ़क़ीराना तबीयत के आदमी थे और अपने ही रंग में मस्त रहते थे तथा किसी राजा, रईस या नवाब की परवाह नहीं करते थे। मगर उस समय के राजा और रईस बड़े क़द्रदान थे। वे इन्हें किसी न किसी तरह बुलाते और रस लेते थे। बहुत बार ऐसा भी हुआ कि किसी दरबार में बजाते-बजाते कुछ ऐसी धुन समाई कि उठकर चल दिए और किसी के रोके न रुके। एक दिलचस्प क़िस्सा यह है कि एक बार हैदराबाद के निज़ाम मीर महमूद अली ख़ाँ ने इन्हें बुलाया और एक ख़ास महल में सुनने का इन्तज़ाम किया। जब ख़ाँ साहब पहुँच गए तो निज़ाम ने सवाल किया, "बन्दे अली ख़ाँ आप ही हैं ?" ख़ाँ साहब ने उत्तर दिया, "जी हाँ, आप बन्दगाने अली हैं और मैं बन्दे अली हूँ।" इसके बाद बीन शुरू की तो निज़ाम मस्त होकर झूमने लगे। बजाते-बजाते बीच में इन्हें खाँसी आई तो निज़ाम के सोने के उगालदान में, जो पास ही रखा हुआ था, थूक दिया और फिर बीन बजाने लगे। निज़ाम कई घण्टे तक तन्मय होकर इनकी बीन सुनते रहे। जब जलसा ख़तम हुआ तो निज़ाम ने अपने नौकर से कहा कि उगालदान भी ख़ाँ साहब के साथ ही भेज देना। यह बात ख़ाँ साहब ने सुन ली और जवाब दिया, "जिस चीज़ में हमने थूक दिया, वह हमें नहीं चाहिए।" पर निज़ाम इतने क़द्रदान थे कि यह सुनकर भी चुप ही रहे। निस्सन्देह ऐसा संगीत प्रेम के कारण ही सम्भव हुआ। ख़ाँ साहब जब पूना आये तो वहीं के ही होकर रह गये। वहाँ महाराष्ट्रीय शिष्यों में इनकी तबीयत ऐसी लगी कि मरते दम तक पूना नहीं छूटा। पार्वती पुल के पास पीर साहब की दरगाह में इनकी समाधि है जहाँ लोग अक्सर दर्शन को जाते हैं।

बहराम ख़ाँ

यह इमामबख़्श के पुत्र थे। इनका जन्म सहारनपुर जिले के अम्बैठा नामक स्थान में हुआ था। संगीत की शिक्षा इन्हें अपने पिता

और ख़ानदानी बुज़ुर्गों से मिली। संगीत के साथ-साथ इन्हें हिन्दी और संस्कृत पढ़ने का भी शौक़ हुआ। इन्होंने इन भाषाओं में पण्डित की पदवी प्राप्त की और संगीत शास्त्र के जितने भी ग्रन्थ प्राप्त हो सके, देखे और उनका अध्ययन किया। उसके बाद यह जयपुर-नरेश महाराज रामसिंह के दरबार में नियुक्त हो गये। उस समय दरबार में मुबारक अली ख़ाँ क़व्वाल-बच्चे, रजब अली ख़ाँ, इमरत सेन, घग्घे ख़ुदाबख़्श, हैदरबख़्श, सदरुद्दीन ख़ाँ आदि चोटी के संगीतज्ञ मौजूद थे। जब यह भी वहाँ पहुँच गये तो सोने में सुहागा हो गया। अब तो दरबार में संगीत के हर क्षेत्र के पारंगत व्यक्ति इकट्ठे थे। दरबार में दूर-दूर से बड़े-बड़े संगीत के पण्डित आते और ख़ाँ साहब से संगीत पर वाद-विवाद करके प्रसन्न होते। बहराम ख़ाँ के बहुत-से शागिर्द थे जिन्हें यह परिश्रम से सिखाते थे। उनमें से कुछ के नाम ये हैं: प्रसिद्ध गायिका गौकीबाई, फ़रीद ख़ाँ पंजाबी, मौलाबख़्श साँखड़े वाले, मियाँ कालू पटियाले वाले, आदि। इनके अतिरिक्त अपने सुपुत्र अकबर ख़ाँ और सद्दू ख़ाँ तथा भाई हैदर ख़ाँ के पोते जाक़िरुद्दीन ख़ाँ और अल्ला बन्दे ख़ाँ तथा बीनकार बन्दे अली ख़ाँ आदि को भी अच्छी शिक्षा दी थी।

प्रारम्भ में जब यह महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में पहुँचे तो महाराज ने इनकी विद्या से प्रसन्न होकर इन्हें "अल्लामा अबुल-अवामे-अरबाबे-इल्मे-मौसीक़ी, षट-शास्त्री, स्वर-गुरु, बृहस्पति, पाताल-शेष, आकाश-इन्द्र, पृथ्वी-मांडलिक" की पदवी दी थी। यह बात मुझे अल्ला-बन्दे ख़ाँ के सुपुत्र नसीरुद्दीन ख़ाँ ने सुनाई थी। महाराज रामसिंह के दरबार में अक्सर संगीत पर आपस में बातचीत हुआ करती थी और स्वयं महाराज भी इसमें बहुत दिलचस्पी लिया करते थे। इनका स्वर्ग-वास जयपुर में ही हुआ।

ज़ाकिरुद्दीन ख़ाँ और अल्ला बन्दे ख़ाँ

ये दोनों सगे भाई थे और बहराम ख़ाँ के भाई हैदर खाँ के पोते और मुहम्मद जान ख़ाँ के सुपुत्र थे । इन्होंने पहले अपने बुज़ुर्गों से होरी-ध्रुपद की शिक्षा पाई और साथ ही संगीत शास्त्र की जानकारी भी हासिल की । बहराम ख़ाँ ने इन होनहार बच्चों को मियाँ आलम सेन का शिष्य करा दिया था जहाँ इन दोनों को आलाप की तालीम मिली । दोनों भाइयों ने बड़ी लगन और चाव से संगीत का अभ्यास किया । जब जवान हुए तो सारे हिन्दुस्तान में इनकी धूम मच गई । साधारण श्रोता और संगीतज्ञ दोनों ही इन्हें सुनकर प्रसन्न होते थे । ये दोनों भाई बहुत-सी रियासतों में बुलवाये गए जहाँ से ये राजा-महाराजाओं और रईसों को प्रसन्न करके और बड़े-बड़े इनाम-पुरस्कार आदि लेकर लौटे । उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह ने इन्हें उदयपुर बुलाकर गाना सुना और इतने प्रसन्न हुए कि इन्हें अपने दरबार में जगह दी और सदा आदर-सत्कार करते रहे । इसके अतिरिक्त जयपुर, अलवर, किशनगढ़ आदि राज्यों के राजा भी इनसे बहुत प्रसन्न रहते थे और हमेशा आदर सहित बुलाकर भेंट-पुरस्कार दिया करते थे ।

सन् १९१५ में महाराज सियाजीराव गायकवाड़ ने इन्हें कान्फ्रेंस में बड़ौदा बुलाया था । इसी कान्फ्रेंस में पण्डित देवल और मिस्टर क्लीमेंट एक हारमोनियम तैयार करके लाये थे और उनका दावा था कि इस हारमोनियम में सब श्रुतियाँ निकल सकती हैं । इन दोनों भाइयों ने यह सिद्ध कर दिया कि यह बात ग़लत है और गाकर बताया कि श्रुतियाँ सिर्फ गायक के गले से ही अदा हो सकती हैं, हारमोनियम में वह सामर्थ्य नहीं । अन्त में मिस्टर क्लीमेंट को भी यह बात माननी पड़ी । सन् १९२५ में लखनऊ में एक बड़ा अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन हुआ जिसके संयोजक थे पण्डित भातखंडे और संरक्षक राजा नवाब

अली ख़ाँ। इस सम्मेलन में ज़ाकिरुद्दीन ख़ाँ और अल्ला बन्दे ख़ाँ भी शामिल हुए थे। इनके गाने ने सबको बहुत प्रसन्न किया और उत्तर प्रदेश के गवर्नर मिस्टर मैरिस ने अपने हाथों से इन्हें सोने का पदक प्रदान किया था। भातखंडे जी ने जितने भी सम्मेलन किये, उन सब में इन्हें बुलाया। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान के सभी नगरों के संगीत-रसिक इन्हें आमंत्रित करते थे। अलवर के राजा मंगलसिंह ने इन दोनों को अपने यहाँ बुला लेने की बहुत कोशिश की और सन् १९१४ में अल्ला बन्दे ख़ाँ अलवर दरबार में जाकर रहने भी लगे, पर ज़ाकिरुद्दीन ख़ाँ ने उदयपुर नहीं छोड़ा और उनका स्वर्गवास भी वहीं हुआ। ज़ाकिरुद्दीन ख़ाँ के सुपुत्र ज़ियाउद्दीन ख़ाँ को भी अच्छी शिक्षा मिली थी। अल्ला बन्दे ख़ाँ के चार लड़के थे—नसीरुद्दीन ख़ाँ, रहीमुद्दीन ख़ाँ, इमामुद्दीन ख़ाँ और हुसैनुद्दीन ख़ाँ। ये चारों लड़के बहुत गुणी हुए। अल्ला बन्दे ख़ाँ को 'संगीत रत्नाकर' और बनारस महामण्डल से 'संगीतरत्न' की उपाधियाँ मिली थीं। इनका सन् १९२५ में स्वर्गवास हुआ।

इनायत ख़ाँ

इनायत ख़ाँ बहराम ख़ाँ के पुत्र सआदत अली ख़ाँ उर्फ़ सद्दू ख़ाँ के पुत्र थे। इन्हें भी संगीत शास्त्र पर पूरा अधिकार था। यह बड़े ज्ञानी थे और रचना भी करते थे। इनकी अनेक रचनाएँ अभी तक गाई जाती हैं। इनकी एक चीज़ इस पुस्तक में भी हम अन्त में दे रहे हैं। यह पहले रामपुर राज्य में नवाब हामिद अली ख़ाँ की सेवा में कई वर्ष रहे पर फिर यह जयपुर वापस चले गए और इन्हें इनकी पुरानी नौकरी मिल गई। उसके बाद यह जीवन भर फिर कभी बाहर नहीं गये। इनके सुपुत्र रियाज़ुद्दीन ख़ाँ ने भी इनके पदचिह्नों पर चलकर संगीत शास्त्र में ख़ूब उन्नति की। पिता के स्वर्गवास के बाद इन्हें भी वहीं दरबार में जगह मिल गई। इसलिये यह भी अधिक बाहर नहीं गये।

नसीरुद्दीन खाँ

यह अल्ला बन्दे ख़ाँ के सबसे बड़े पुत्र थे। संगीत की शिक्षा इन्हें अपने पिताजी से मिली थी और उनके जीते जी ही इन्होंने बड़ा नाम पैदा कर लिया था। इनकी ध्रुपद-होरी की गायकी और आलाप की तरकीब बहुत ही प्रभाव डालती थी। संगीत संसार में इनका बहुत नाम है और बनारस से इनको 'संगीत रत्न' तथा बाद में 'संगीत रत्नाकर' की उपाधियाँ मिली थीं। यह अपने पिता के साथ ही भातखंडे जी द्वारा संयोजित संगीत सम्मेलनों में भाग लेने जाते थे और अपने गाने से सबको बहुत प्रभावित करते थे। यह इन्दौर राज्य में महाराज तुकोजीराव के दरबार में नियुक्त हुए और जीवन भर वहीं रहे। इनका स्वर्गवास भी इन्दौर में ही हुआ।

रहीमुद्दीन ख़ाँ

यह अल्ला बन्दे खाँ के दूसरे पुत्र हैं। इनको आलाप, होरी और ध्रुपद की शिक्षा अपने पिताजी से मिली और अभ्यास भी ख़ूब किया। साथ ही संगीत शास्त्र का ज्ञान भी इनको विरासत में मिला है। यह जयपुर, अलवर, इन्दौर आदि कई रियासतों में रह चुके हैं। आजकल के ध्रुपद गाने वालों में हिन्दुस्तान भर में इनका बहुत नाम है।

डागर-बन्धु

अमीनुद्दीन और मोइनुद्दीन नामक दो भाई डागर-बन्धु के नाम से आजकल प्रसिद्ध हैं। ये दोनों नसीरुद्दीन खाँ के सुपुत्र हैं। इन्हें अपने पिता से संगीत की बहुत अच्छी शिक्षा मिली है। ये होरी-ध्रुपद ख़ूब गाते हैं और आलाप पर भी अधिकार है। सारे हिन्दुस्तान में इनकी माँग है और जगह-जगह से इन्हें निमंत्रण आते रहते हैं। ईश्वर करे ये दोनों दीर्घायु हों!

अब्बन ख़ाँ

अब्बन ख़ाँ बहराम ख़ाँ के भानजे थे और इनका जन्म सहारनपुर में ही हुआ था। इन्हें भी बहराम ख़ाँ का प्रसाद मिला था और संगीत-शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित होने के अलावा यह उन्हीं के ढंग का गाते भी थे। कहा जाता है कि इन्होंने बहुत-सी चीज़ें लिखी थीं मगर दुर्भाग्यवश हमें कोई प्राप्त नहीं हो सकी। इसलिए नमूना पेश करना कठिन है। इन्होंने राग-रागिनियों पर खोज भी की थी जिस सिलसिले में सारे हिन्दुस्तान में इनका नाम हुआ था। सन् १९२२ में सहारनपुर में ही इनका स्वर्गवास हुआ।

सहसवान का घराना

इनायत हुसैन ख़ाँ

सहसवान के गायकों में इनायत हुसैन ख़ाँ हिन्दुस्तान भर में बहुत मशहूर हुए हैं। ये हद्दू ख़ाँ के दामाद और बहादुर हुसैन ख़ाँ के शागिर्द थे। कुछ चीज़ें इन्होंने हद्दू ख़ाँ से भी हासिल की थीं। इन्हें अस्थायी-ख़याल और तराना गाने पर पूरा-पूरा अधिकार था। यह ख़ुद भी रचना करते थे और इनके बनाये हुए बहुत-से ख़याल और तराने प्रसिद्ध हैं जो अभी तक गाये जाते हैं। उनमें-से एक-दो हम इस पुस्तक के अन्त में दे रहे हैं। हिन्दुस्तान की बहुत-सी रियासतों में यह बुलाये गये थे और बहुत आदर-सत्कार इन्हें प्राप्त हुआ था। नेपाल-नरेश वीर शमशेर राणा ने भी इन्हें एक जलसे में बुलाया था जिसमें हिन्दुस्तान के और भी नामी गवैयों ने हिस्सा लिया था। कुछ दिन यह नेपाल दरबार में रहे भी, पर इनका अधिकतर सम्मान और नाम ग्वालियर, रामपुर, हैदराबाद आदि राज्यों में हुआ। इनके शागिर्द बहुत-से और बहुत उच्च कोटि के हुए हैं, जिनमें रामकृष्ण वज़े बुआ, छज्जू ख़ाँ, नज़ीर ख़ाँ, ख़ादिम हुसैन ख़ाँ, मुश्ताक़ हुसैन ख़ाँ आदि प्रसिद्ध हैं। इनके छोटे भाई अली हुसैन ख़ाँ भी, जो बड़े प्रसिद्ध बीनकार हुए हैं, इन्हीं के शागिर्द थे। अली हुसैन ख़ाँ महाराज गायकवाड़ के दरबार में नौकर थे और रामपुर वाले बहादुर हुसैन ख़ाँ के भी शागिर्द थे। यह अपने ज़माने के अद्वितीय बीनकार थे। इसी तरह से इनके एक और भाई मुहम्मद हुसैन ख़ाँ भी एक बड़े प्रसिद्ध बीनकार हुए हैं जो रामपुर के नवाब हामिद अली ख़ाँ के दरबार में थे।

इमदाद ख़ाँ

इमदाद ख़ाँ भी सहसवान के रहने वाले थे। इन्होंने अस्थायी-ख़याल का गाना ग्वालियर वाले हद्दू ख़ाँ से हासिल किया था और खूब नाम पैदा किया। इन्होंने उत्तर-पूर्वी हिन्दुस्तान की रियासतों में बहुत भ्रमण किया और वहाँ से बहुत आदर-सत्कार तथा पुरस्कार आदि प्राप्त किये। इनके कई पुत्र हैं, पर बड़े पुत्र अमजद हुसैन और इनसे छोटे वाजिद हुसैन दोनों ही संगीत कला में बहुत निपुण हैं और अच्छा तैयार गाते हैं। ख़ाँ साहब के स्वर्गवास के बाद इनके सुपुत्र इनके नाम को आज तक ज़िन्दा रखे हुए हैं। इनमें से वाजिद हुसैन ख़ाँ का नाम अधिक हुआ। यह १९३० के लगभग बम्बई आ गए थे और दस-बारह बरस वहीं रहकर बहुत नाम भी पैदा किया और बहुत-से शागिर्द भी तैयार किये, जिनमें कुमार गन्धर्व और बी० आर० देवधर के नाम उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ने ख़ाँ साहब से बहुत-सी चीज़ें सीखी हैं। सन् १९४६ से यह इलाहाबाद में रहते हैं जहाँ यह संगीत का एक स्कूल सफलतापूर्वक चला रहे हैं।

हैदर ख़ाँ

सहसवान के गवैयों में एक हैदर ख़ाँ भी थे। इन्हें अपने बुज़ुर्गों से संगीत शिक्षा मिली थी और हिन्दुस्तान भर में अपने गाने से इन्होंने नाम पैदा किया था। जवानी के दिनों में यह बम्बई भी बहुत समय तक रहे और महाराष्ट्र में भी इनका बहुत नाम हुआ। नेपाल में संगीत के एक बड़े जलसे में भी यह बुलाये गये थे जहाँ से इन्हें बहुत इनाम आदि मिले थे। उसके बाद यह रामपुर के नवाब हामिद अली ख़ाँ के यहाँ नियुक्त हो गये और बाक़ी जीवन वहीं बीता।

मुश्ताक़ हुसैन ख़ाँ

यह सहसवान वाले कल्लन ख़ाँ के छोटे सुपुत्र हैं। सबसे पहले इन्हें अपने मामा पुत्तन ख़ाँ से संगीत की भरपूर शिक्षा मिली। इन्होंने

अपने ससुर इनायत हुसैन ख़ाँ से भी बहुत-कुछ सीखा और कुछ अरसे के बाद यह वज़ीर ख़ाँ के शागिर्द हुए और उनसे होरी-ध्रुपद याद किये। यह रामपुर के दरबार में भी बहुत दिनों तक रहे। हाल ही में यह दिल्ली में भारतीय कला केन्द्र में आ गये हैं। सन् १९५२ में इन्हें राष्ट्रपति की ओर से सम्मान और पुरस्कार भी मिला। यह संगीत नाटक अकादेमी के भी सदस्य रहे हैं और रेडियो की ऑडिशन कमिटी के भी। इनके सुपुत्र इश्तियाक़ हुसैन बहुत अच्छा गाते हैं और सबसे छोटे सुपुत्र इशाक हुसैन हारमोनियम बहुत तैयार बजाते हैं और दोनों रामपुर दरबार में नियुक्त हैं।

निसार हुसैन ख़ाँ

निसार हुसैन ख़ाँ फ़िदा हुसैन ख़ाँ के सुपुत्र हैं। इन्हें इनके पिता ने संगीत की अच्छी शिक्षा देकर तैयार किया था। जब यह जवान हुए तो पिता इन्हें लेकर बड़ौदा के होली-उत्सव में गये। महाराज सियाजीराव गायकवाड़ इनसे बहुत प्रसन्न हुए और दोनों को दरबार में नियुक्त कर लिया। उसके बाद महाराज ने निसार हुसैन ख़ाँ को भारतीय संगीत पाठशाला का अध्यापक भी बनाया जहाँ यह बरसों मुस्तैदी से संगीत सिखाते रहे। पर कुछ ही दिनों में इनके पास हिन्दुस्तान भर के संगीत सम्मेलनों में शामिल होने के लिए बुलावे आने लगे और शीघ्र ही इनकी इतनी माँग होने लगी कि पाठशाला में सिखाने के लिए इन्हें समय ही न मिलता। इसलिये इन्होंने वहाँ की नौकरी छोड़ दी और बदायूँ आकर रहने लगे। इनके गाने की विशेषता यह है कि इनकी तान बहुत सुरीली है और तीसरे सप्तक तक जाती है। यह तराना भी बहुत तैयार गाते हैं। इनके तराने के ग्रामोफ़ोन रिकार्ड बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं।

अतरौली का घराना

उत्तर प्रदेश के अतरौली नामक स्थान में भी बड़े-बड़े संगीतकार हुए हैं। काले ख़ाँ और चाँद ख़ाँ नामक दो गवैये यहीं के थे। इनके पूर्वज गौड़ ब्राह्मण थे और इनका गोत्र शांडिल्य था। रियासत जूनागढ़ के नवाब बहादुर ख़ाँ इनका आदर करते थे और इन्हें अपने रिश्तेदारों की तरह मानते थे।

दुल्लू ख़ाँ और छज्जू ख़ाँ

दुल्लू ख़ाँ और छज्जू ख़ाँ भी अतरौली में पैदा हुए थे। ये ध्रुपद-धमार के गायक थे और इनकी बानी गोबरहारी थी। यह उनियारे के राजा साहब के यहाँ नौकर थे और ठाकुर बिशनसिंह के ज़माने से लेकर पंगा फ़तहसिंह के राज्य तक जीवित रहे। इनके वंशज उनियारे में मौजूद हैं मगर अब इस घराने में गानेवाले बहुत कम बाक़ी हैं और ज़माने के फेर ने इस खानदान की ऐसी कायापलट कर दी है कि गाना छोड़-कर लोग खेती-बाड़ी करने लगे हैं।

हुसैन ख़ाँ

हुसैन ख़ाँ के बुज़ुर्ग भी अतरौली के शांडिल्य गोत्रीय गौड़ ब्राह्मण थे। हुसैन ख़ाँ ध्रुपद-धमार बहुत अच्छा गाते थे। इनका स्वर्गवास १८३६ के आसपास हुआ। इनके वंशज अज़मत हुसैन ख़ाँ हैं जो अच्छा गाते हैं।

शाहाब ख़ाँ

शाहाब ख़ाँ भी शांडिल्य गोत्रीय गौड़ ब्राह्मण थे। इनका जन्म बुलन्दशहर जिले के औरंगाबाद नामक स्थान में हुआ था। संगीत विद्या

इन्होंने अपने पिता से सीखी और ध्रुपद-धमार गाने में यह अपना सानी नहीं रखते थे।

मानतोल ख़ाँ

शाहाब ख़ाँ के पुत्र मानतोल ख़ाँ भी बड़े भारी कलाकार हुए हैं। इनके असली नाम का पता नहीं चलता पर यह उपाधि इन्हें रामपुर के नवाब क़ासिम अली ख़ाँ से मिली थी और इसी नाम से यह देश भर में मशहूर हुए। इनकी बानी डागर थी और यह ध्रुपद-धमार लाजवाब गाते थे।

ग़ुलाम ग़ौस ख़ाँ

ग़ुलाम ग़ौस ख़ाँ का जन्म अतरौली में हुआ था। इनकी बानी नौहार थी। कहा जाता है कि यह सुलतानसिंह राजपूत के वंशज थे। यह बूँदी में जाकर दरबारी गायक नियुक्त हुए और बूँदी-नरेश महाराज रामसिंह इनसे बहुत प्रसन्न थे। वयोवृद्ध होने के कारण महाराज इन्हें काका कहकर पुकारते थे। यहाँ तक कि अपने नसबनामे में इनका नाम शामिल करवा दिया था। इनका जैसा आदर-सत्कार बूँदी में हुआ, वैसा शायद ही किसी गवैये का कहीं और हुआ हो। इनके जीवन-चरित्र में कई एक बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो इन्होंने बूँदी के महाराज को ऐसा प्रसन्न किया कि जिसकी कोई मिसाल नहीं मिलती। दूसरे, इन्होंने अपने व्यवहार से महाराज के मन में ऐसा विश्वास पैदा किया कि महाराज ने इन्हें अपने वंश के पूर्व-पुरुषों में स्थान दिया। तीसरे, यद्यपि ख़ाँ साहब के घराने में नौहारी बानी गाई जाती थी, तो भी इनका रुझान डागर बानी की तरफ़ होने के कारण इन्होंने डागर बानी भी अपनाई। असल में यह बात बड़ी महत्वपूर्ण है कि जिस काम को स्वभावतः मन पसन्द करता है उसी में आदमी का जी भी लगता है और सफलता भी मिलती है।

ख़ैराती ख़ाँ

ख़ैराती ख़ाँ अतरौली में ही पैदा हुए थे और इनकी बानी खंडारी थी। इन्हें संगीत की शिक्षा अपने बुज़ुर्गों से ही मिली। विशेष रूप से अपने चाचा इमामबख़्श से इन्होंने बहुत-कुछ सीखा। थोड़ी-बहुत शिक्षा इनको छज्जू ख़ाँ और दुल्लू ख़ाँ से भी मिली थी। यह गाना बहुत ज़ोरदार गाते थे और उनियारे के ठाकुर साहब राजा बिशनसिंह के यहाँ नौकर थे।

करीमबख़्श

करीमबख़्श ख़ैराती ख़ाँ के सुपुत्र थे और इनका जन्म उनियारे में हुआ था। संगीत की शिक्षा इन्हें अपने पिता से मिली और इनके यहाँ खंडारी बानी थी। यह उनियारे के ठाकुर साहब फ़तहसिंह के यहाँ नियुक्त थे। कुछ दिनों यह झालरापाटन दरबार में भी रहे पर वहाँ इनकी अधिक तबीयत नहीं लग सकी और यह उनियारे वापस लौट आये। ठाकुर फ़तहसिंह इनसे इतना प्रेम करते थे कि एक बार दूसरे दरबार में रह आने के बाद भी इन्हें इनकी पुरानी जगह पर बहाल कर दिया था। इनका बाक़ी जीवन उनियारे में ही बीता। यह अतरौली के घराने के गायक थे और होरी-ध्रुपद बहुत अच्छा गाते थे।

इनके अतिरिक्त अतरौली के ऐसे बहुत गायक हुए हैं जिनके नाम तो सुनने में आये हैं, मगर जिनके बारे में दूसरी जानकारी या तो बिलकुल नहीं है अथवा बहुत ही कम है, जैसे सआदत ख़ाँ जो नौहार बानी गाते थे।

चिम्मन ख़ाँ

चिम्मन ख़ाँ कादिर ख़ाँ के सुपुत्र थे और शांडिल्य गोत्रीय थे। यह ध्रुपद-धमार के प्रसिद्ध गाने वाले थे और इनका संगीत मधुर होता था। यह अतरौली में ही रहते थे पर जोधपुर के महाराजा के बुलावे पर साल

भर में एक बार अवश्य जोधपुर जाया करते थे। महाराजा इनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। इनका स्वर्गवास जोधपुर में ही हुआ।

करीमबख़्श ख़ाँ

करीमबख़्श ख़ाँ मानतोल ख़ाँ के सुपुत्र थे। संगीत की शिक्षा इन्हें अपने पिता से मिली। यह होरी-ध्रुपद वग़ैरह ख़ूब गाते थे, साथ ही अस्थायी-ख़याल में भी इन्हें कमाल हासिल था। इनके गाने में इतना असर था कि सुनने वाले रो देते थे। जोधपुर-नरेश महाराजा मानसिंह ने इन्हें बहुत इज़्ज़त दी। यह हर वक़्त महाराज से साथ ही रहते थे और इनकी पालकी ख़ास महल के दरवाज़े तक जाती थी। महाराज ने इन्हें भी पालकी, अरदली, गाँव, छतरी आदि दे रक्खे थे।

जहाँगीर ख़ाँ

जहाँगीर ख़ाँ का जन्म उनियारे में हुआ। इनके बुज़ुर्ग अतरौली ही के थे और अपने घराने में ही इन्होंने विद्या सीखी। होरी-ध्रुपद के अलावा यह अस्थायी-ख़याल भी ख़ूब गाते थे। यह अपने ज़माने के संगीत कला के बड़े भारी विद्वान माने गये हैं। उनियारे के राजा ठाकुर फ़तहसिंह इनसे बड़े प्रसन्न थे और इनका बड़ा आदर करते थे। उनके यहाँ नियुक्त होने के पहले यह टोंक और जयपुर के दरबार में भी बहुत दिन रहे। इनका स्वर्गवास उनियारे में ही हुआ। गोत्र इनका भी शांडिल्य ही था।

ज़हूर ख़ाँ

ज़हूर ख़ाँ शांडिल्य गोत्रीय परिवार में अतरौली में पैदा हुए थे। यह होरी-ध्रुपद बहुत अच्छा गाते थे। यह राजा मानसिंह जोधपुर-नरेश के दरबार में नियुक्त थे जहाँ से इन्हें उचित वेतन मिलता था। साथ ही सवारी के लिए पालकी भी मिली हुई थी। एक बार यह सफ़र कर रहे थे कि मारवाड़ के प्रसिद्ध डाकू डूँगरसिंह-जवाहरसिंह ने इन्हें घेर

लिया और लूट लेने का इरादा किया। मगर डाकू इनके पास तम्बूरा देखकर रुक गये और पूछने लगे कि क्या आप गवैये हैं ? ख़ाँ साहब ने जब उत्तर में 'हाँ' कहा तो डूँगरसिंह बोला, "तो फिर हमें भी सुनाइये।" ख़ाँ साहब ने गाना शुरू कर दिया। गाने में डाकू इतने मस्त हुए कि दिन निकल आया और वे जो कुछ उनके पास था वह ख़ाँ साहब को देकर और माफ़ी माँग कर वापस चले गये। इनका स्वर्गवास जोधपुर में हुआ।

हक्कानीबख़्श

हक्कानीबख़्श होरी-ध्रुपद लाजवाब गाने वाले हुए हैं। इनका जन्म अतरौली में हुआ था, पर यह भी महाराज मानसिंह के दरबार में नियुक्त हुए। इन्हें भी जागीर और पालकी मिली हुई थी तथा वेतन भी अच्छा मिलता था। इनका स्वर्गवास जोधपुर में ही हुआ।

इमामबख़्श

इमामबख़्श की बानी खंडारी थी। ध्रुपद-धमार गाने में यह अपना सानी नहीं रखते थे। यह महाराज मानसिंह के दरबार में थे जहाँ से इन्हें जागीर मिली हुई थी। इसमें सन्देह नहीं कि यह अपने ज़माने के बड़े भारी उस्ताद थे। मियाँ रमज़ान ख़ाँ रँगीले, जिनका ज़िक्र आगे आयेगा, इन्हीं के शिष्य थे। इनका स्वर्गवास जोधपुर में ही हुआ।

भूपत ख़ाँ

जोधपुर-नरेश महाराज मानसिंह और तख़्तसिंह के दरबार में एक गवैये भूपत ख़ाँ भी थे। इनकी बानी नौहार थी और यह होरी-ध्रुपद बहुत अच्छा गाते थे। दरबार से इन्हें जागीर और सवारी मिली हुई थी। इसके अतिरिक्त महाराजा किशनगढ़ भी इनकी बहुत इज़्ज़त करते थे और इनके शिष्य हो गये थे। यह ग्वालियर में भी बहुत दिनों तक रहे और महाराज दौलतराव सिंधिया ने भी इन्हें जागीर दी थी। पर

इनका स्वर्गवास जोधपुर आकर ही हुआ। यह रहने वाले अतरौली के ही थे।

गुलाब ख़ाँ

गुलाब ख़ाँ भूपत ख़ाँ के सुपुत्र थे। इनका जन्म जोधपुर में हुआ था और वहीं यह महाराज जोधपुर के दरबार में नियुक्त हुए। महाराजा ने इन्हें पालकी, अरदली और एक गाँव की जागीर दे रक्खी थी। ध्रुपद-धमार गाने में इनका कोई जवाब नहीं था। अहमद ख़ाँ और नसीर ख़ाँ दोनों गुलाब ख़ाँ के सुपुत्र थे जो अस्थायी-ख़याल ख़ूब गाते थे और संगीत विद्या में बहुत निपुण थे। इनका जन्म और स्वर्गवास जोधपुर में ही हुआ। इनके सुपुत्र मुहम्मद ख़ाँ भी अच्छे होरी-ध्रुपद गाने वाले हुए हैं। यह १९३४ में अस्सी वर्ष के होकर मरे मगर इनका गाना आख़िरी वक्त तक पुरअसर रहा।

हस्सू ख़ाँ

अतरौली के हस्सू ख़ाँ भी होरी-ध्रुपद गाते थे। इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से संगीत विद्या सीखी थी। यह बहुत असरदार गाना गाते थे। राव-राजा संग्राम सिंह उनियारे वाले इनका बड़ा आदर करते थे और यह उन्हीं के यहाँ नियुक्त भी थे। इनके सुपुत्र मुहम्मद ख़ाँ भी इनके साथ रावराजा के यहाँ नौकर थे। वह भी होरी, ध्रुपद और ख़याल गाते थे। हिन्दुस्तान के मशहूर गायक संगीत-सम्राट् उस्ताद अल्लादियाँ ख़ाँ हस्सू ख़ाँ के दामाद थे।

दौलत ख़ाँ

अतरौली के दौलत ख़ाँ नत्थू ख़ाँ खंडारे के सुपुत्र थे। इन्हें अपने पिता से संगीत की शिक्षा मिली थी और यह होरी-ध्रुपद बहुत अच्छा गाते थे। शुरू में यह महाराजा जोधपुर के यहाँ रहे, फिर बम्बई-कलकत्ते में। अन्त में नेपाल जाकर महाराणा वीर शमशेरजंग बहादुर के दरबार में नियुक्त हो गये और वहीं सात वर्ष रहने के बाद इनका स्वर्गवास हो

गया। यह बड़ा प्रभावपूर्ण गाना गाते थे। मैंने भी बम्बई में इनके दर्शन किये और गाना सुना है।

अली अहमद ख़ाँ

अली अहमद ख़ाँ दौलत ख़ाँ के छोटे भाई थे और अस्थायी-ख़याल ख़ूब गाते थे। यह बंगाल की रियासत अगरतला में नियुक्त थे। बाद में नेपाल में भी रहे। अपने भाई दौलत ख़ाँ का स्वर्गवास हो जाने के बाद यह नेपाल से जोधपुर चले आये। यह बरसों कलकत्ते में भी रहे जहाँ इन्होंने बहुत-से लोगों को संगीत सिखाया। अक्सर यह आसाम भी जाया करते थे। मैंने सन् १९०९ में इन्हें देखा और इनका गाना सुना था। यह सचमुच बहुत लाजवाब गाते थे। मैंने एक बँगला चीज़ भी इनसे सीखी थी। सन् १९१२ में जोधपुर में इनका स्वर्गवास हो गया।

ग़ुलाम हुसैन

ग़ुलाम हुसैन मानतोल ख़ाँ के शिष्य कुतुबबख़्श के सुपुत्र थे। यह जोधपुर में पैदा हुए और अपने पिता से विद्या सीखी। जवान होने पर यह महाराजा जोधपुर के दरबार में नियुक्त हो गए। यह भी अतरौली के प्रसिद्ध गायकों में से थे और इनकी बानी नौहार थी।

मुन्नू ख़ाँ

मुन्नू ख़ाँ की बानी खंडारी थी। ध्रुपद-धमार यह बहुत प्रभावशाली ढंग से गाते थे। विभिन्न राज्यों में इनकी बड़ी इज़्ज़त थी। ख़ास तौर से उदयपुर के राणा इनके शिष्य हो गये थे। यह जीवन भर उदयपुर ही रहे और वहीं इनका स्वर्गवास हुआ।

ख़्वाजा अहमद ख़ाँ

अतरौली में ख़्वाज़ा अहमद ख़ाँ नाम के एक बड़े प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए हैं। इनकी बानी डागर थी और इनके गाने में बड़ा भारी असर

था। संगीत विद्या इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से ही सीखी। इनके पूर्वज शांडिल्य गोत्रीय गौड़ ब्राह्मण थे जो औरंगज़ेब के ज़माने में मुसलमान हुए थे। यह बहुत-सी रियासतों में गये और सब जगह बहुत इज़्ज़त पाई। बहुत दिनों तक यह जयपुर में रहे, पर उसके बाद यह टोंक के नवाबज़ादा इबादुल्ला ख़ाँ के यहाँ चले आये। नवाबज़ादा ने हर तरह से ख़ाँ साहब को आराम पहुँचाया। इसलिये ख़ाँ साहब जीवन भर टोंक में ही रहे और वहीं नवाब इब्राहीम ख़ाँ के समय में इनका स्वर्गवास हुआ। इनके कई पुत्र थे जो सभी बड़े प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध हैं अल्लादिया ख़ाँ।

अल्लादिया ख़ाँ

इनका जन्म जोधपुर में हुआ था और संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने अपने पिता ख़्वाजा अहमद ख़ाँ से ही प्राप्त की थी। पिता का स्वर्गवास होने के बाद इन्होंने अपने चाचा जहाँगीर ख़ाँ से संगीत सीखा। बाद में यह जयपुर निवासी नवाब कल्लन ख़ाँ के यहाँ नौकर हो गये। नवाब कल्लन ख़ाँ संगीत के प्रकांड पण्डित थे और बड़े ही गुणग्राही थे। अल्लादिया ख़ाँ वहाँ कई बरस रहे। उसके बाद यह बड़ौदा चले आये जहाँ के रईसों ने इनकी बड़ी क़द्र की। बड़ौदा के महाराजा भी इनका गाना सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे। इसके बाद यह बम्बई आये। पर यहाँ यह कुछ ही दिन रहे थे कि कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति साहब ने इन्हें अपने यहाँ बुलाया और एक महीने तक इनका गाना सुनने के बाद इतने प्रसन्न हुए कि इन्हें अपने ही यहाँ नियुक्त कर लिया। महाराज को ख़ाँ साहब से इतना प्रेम था कि चौबीसों घण्टे अपने साथ रखते थे। महाराजा बम्बई में छह-छह महीने के लिए आते तो ख़ाँ साहब भी साथ होते थे। कोल्हापुर महाराज का स्वर्गवास होने के बाद ख़ाँ साहब स्थायी रूप से बम्बई आकर रहने लगे और बम्बई के लोगों को अपना क़द्रदान बना लिया। बम्बई के एक बहुत बड़े जलसे में,

जिसमें एम० आर० जयकर सभापति थे, खाँ साहब को जनता की ओर से 'संगीत-सम्राट, की उपाधि दी गई। स्वयं मि० जयकर ने खाँ साहब को 'माउन्ट एवरेस्ट आफ़ म्यूज़िक' की पदवी दी थी।

खाँ साहब की विद्या से महाराष्ट्र और बम्बई के निवासियों ने खूब लाभ उठाया और इनकी गायकी बहुत प्रसिद्ध हुई। इन्होंने अनेक योग्य शिष्य भी तैयार किये, जिनमें इनके सुपुत्र स्वर्गीय मंझी खाँ और स्वर्गीय भूरजी खाँ तथा केसर बाई केरकर प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त मोगू बाई कुरडीकर, गुल्लूभाई जसदान, लीलूबाई शेरगाँवकर और अज़मत हुसैन खाँ आदि भी मशहूर हैं।

अल्लादिया खाँ साहब की ख्याति सारे हिन्दुस्तान में हुई। कलकत्ते के रईस बाबू दुलीचन्द के यहाँ भी यह चार बरस के लगभग रहे। आख़िरी उम्र में महाराज होल्कर के यहाँ भी यह आठ महीने तक एक हज़ार रुपये माहवार पर रहे परन्तु जलवायु उपयुक्त न होने के कारण बम्बई वापस चले आये। खाँ साहब की गायकी में बहुत-सी विशेषताओं के साथ-साथ एक यह भी थी कि अस्सी वर्ष की आयु तक तान में से स्वर नहीं गया था। आपकी आवाज़ क़ाबू में थी। इनका स्वर्गवास सन् १९४६ में बम्बई में हुआ। मृत्यु के बाद उनके शिष्य गुल्लूभाई जसदान और लीलूबाई के पिता अनन्तराव शेरगाँवकर ने इनकी पत्थर की मूर्ति कोल्हापुर में देवल क्लब के सामने स्थापित करवाई और कोल्हापुर की नगरपालिका ने उस जगह का नाम अल्लादिया खाँ चौक रखा। खाँ साहब की समाधि बम्बई में केरलवाड़ी में बनाई गई है। मौजूदा ज़माने में खाँ साहब की टक्कर का संगीतज्ञ मुश्किल से पैदा होगा। आपकी बनाई हुई कुछ चीज़ें इस पुस्तक के अन्त में दी जा रही हैं।

बशीर खाँ

बशीर खाँ ख्वाज़ा अहमद खाँ के बड़े सुपुत्र थे। इनका भी जन्म जोधपुर में हुआ था और तालीम अपने बुजुर्गों से ही पाई थी। मगर

आवाज़ की खराबी से तंग आकर यह घर से निकल गये और कलकत्ते पहुँचे। वहाँ यह भैया गणपतराव के शिष्य होकर उनसे हारमोनियम सीखने लगे तथा खूब परिश्रम किया। भैया साहब को जब मालूम हुआ कि यह बहुत अच्छे खानदान के हैं और अतरौली वालों में से हैं, तो उन्होंने विशेष ध्यान से इन्हें सिखाया। बाबू दुलीचन्द के यहाँ अपने गुरु के साथ यह बरसों रहे और कलकत्ते में खूब नाम पैदा किया। इसके बाद होली के उत्सव पर एक बार महाराज इन्दौर के यहाँ पहुँचे। महाराजा इनका हारमोनियम सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें अपने यहाँ नियुक्त कर लिया। सन् १९३८ में जोधपुर में इनका स्वर्गवास हुआ।

हैदर ख़ाँ

हैदर ख़ाँ ख्वाजा अहमद ख़ाँ के छोटे सुपुत्र थे। प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने भी अपने पिता से प्राप्त की। बाद में बहुत दिन तक अपने चचा जहाँगीर ख़ाँ से भी बहुत-कुछ सीखा। इनकी आवाज़ बारीक पर निहायत बुलन्द थी। साथ ही बहुत मीठी भी थी। इनके गाने में तैयारी कम होने पर भी असर बहुत ज़्यादा था। सुनने वालों को यह फ़ौरन बेचैन कर दिया करते थे। अपने भाई अल्लादिया ख़ाँ की तरह इनमें भी राग की सचाई बेहद थी। यह कई रियासतों में नौकर रहे। विशेष रूप से कोल्हापुर में तो इनके तीस साल बीते। पेंशन मिलने के बाद यह बम्बई आ गये। वहाँ मोगूबाई कुरडीकर को भी इन्होंने गाना सिखाया। बड़ौदा दरबार की मशहूर गायिका लक्ष्मीबाई जादव भी इनकी शागिर्द हैं। महाराष्ट्र में आज तक इनका बहुत नाम है। सन् १९३५ में उनियारा रियासत में इनका स्वर्गवास हुआ।

मंझी ख़ाँ

ऊपर हम ज़िक्र कर चुके हैं कि अल्लादिया ख़ाँ ने अपने दो पुत्रों को संगीत की अच्छी शिक्षा दी थी। बदरुद्दीन ख़ाँ, जो मंझी ख़ाँ के नाम से प्रसिद्ध हुए, अल्लादिया ख़ाँ के मँझले बेटे थे। यह अपने पिता के पद-

चिह्नों पर चले और अपने घराने की गायकी पर इन्हें पूरा-पूरा अधिकार था। इनकी ख्याति महाराष्ट्र और बम्बई के अलावा देश भर में फैली। जमखंडी, सांगली, मिरज, मुधौल, बड़ौदा आदि रियासतों में यह हमेशा बुलाये जाते थे। एक विशेष बात इनके बारे में यह थी कि तमाम राजा-महाराजा इनके साथ समानता का व्यवहार करते थे और इनके घर पर उठते-बैठते थे। यह स्वयं भी बहुत रईसी ढंग से जीवन व्यतीत करते थे। इनके पास मोटर भी थी और इन्हें शिकार का भी बेहद शौक़ था। दुर्भाग्यवश भरी जवानी में ही लकवा लग जाने से बम्बई में इनका स्वर्गवास हो गया। इनके बहुत-से शिष्य हैं, जिनमें मलिकार्जुन मंसूर, महमूद भाई सेठ मुख्य हैं।

भूरजी ख़ाँ

अल्लादिया ख़ाँ के दूसरे बेटे का नाम शमसुद्दीन था। यह भूरजी ख़ाँ के नाम से विख्यात हुए। इन्होंने अस्थायी-ख़याल की शिक्षा अपने पिता से भली भाँति प्राप्ति की थी। यह रियासत कोल्हापुर में नौकर थे। इनके मुख्य शिष्य गजानन बुआ जोशी और कानेटकर हैं। कुछ दिन मोगूबाई ने भी इनसे गाना सीखा था।

केसरबाई केरकर

इनका जन्म गोआ के केर नामक स्थान में हुआ था। इन्हें बचपन से ही गाने का शौक़ था। सबसे पहले इन्होंने वज़े बुआ, भखले बुआ और बरक़तउल्ला ख़ाँ से थोड़े-थोड़े दिन गाना सीखा। बाद में यह अल्लादिया ख़ाँ की शागिर्द हो गईं और उनसे बीस बरस तक संगीत की शिक्षा प्राप्त करती रहीं। ख़ाँ साहब की पेचीदा गायकी इन्होंने बहुत दिल लगाकर सीखी और स्वयं परिश्रम करके यह सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हुईं। इस समय इनके जोड़ की गायिका भारत भर में कोई नहीं है। सन् १९५३ में राष्ट्रपति के हाथों इन्हें संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार भी मिला।

अज़मत हुसैन ख़ाँ

अतरौली घराने के प्रसिद्ध गवैयों में अज़मत हुसैन ख़ाँ भी हैं। यह ख़ैराती ख़ाँ के सुपुत्र हैं और शांडिल्य गोत्रीय हैं। इनका जन्म सन् १९११ में अतरौली में ही हुआ था। अपने पिता की यह इकलौती सन्तान थे। पिता के वृद्ध तथा अस्वस्थ होने के कारण इनके मामा अलताफ़ हुसैन ख़ाँ खुर्जा वालों ने इन्हें संगीत की शिक्षा दी। इसलिये यह छह बरस से उन्नीस बरस की उम्र तक अपने मामा के पास ही रहे और वहीं संगीत के साथ-साथ पढ़ना-लिखना भी इन्होंने सीखा। अपने मामा से इन्होंने अस्थायी-ख़याल, होरी-ध्रुपद, सादरा सभी-कुछ प्राप्त किया। इनका यह समय हिन्दुस्तान के पूर्वी प्रदेश में ही बीता क्योंकि इनके मामा भागलपुर, मुंगेर, बनारस, पटना, कलकत्ता, पूर्णिया आदि स्थानों के रईसों के यहाँ जाते रहते थे। बीस वर्ष की उम्र होने पर यह अकेले ही घूमने के लिए निकल पड़े। सबसे पहले यह होली के मौक़े पर बड़ौदा दरबार में पहुँचे। उस ज़माने में बड़ौदा में इस उत्सव पर हर गवैये की पहले परीक्षा ली जाती थी, फिर उसे दरबार में महाराज को सुनाने का अवसर मिलता था। जब इनकी परीक्षा का अवसर आया तो इनसे कोई राग सुनाने के लिए कहा गया। यह गाने लगे और एक घण्टे तक गाते रहे। सुनने वालों में फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ भी मौजूद थे। इनके गाने से सभी लोग इतने प्रसन्न हुए कि और कोई सवाल इनसे नहीं किया गया और इन्हें दरबार में प्रस्तुत कर दिया गया। महाराज ने तीन बार इनका गाना सुना और पहली कोटि का इनाम इन्हें दिया। वहाँ से यह बम्बई आये जहाँ इन्होंने भास्कर राव भखले की पुण्य तिथि के अवसर पर पहली बार गाना गाया। इनके गाने से लोग इतने प्रसन्न हुए कि बम्बई के संगीत-प्रेमियों के बीच इनकी चर्चा होने लगी। उसी ज़माने से यह बम्बई में ही रहते हैं और वहाँ के संगीत-रसिक तथा समझदार इनसे बहुत प्रेम करते हैं।

इन्होंने बहुत से शागिर्द भी तैयार किये हैं, जिनमें नलिनी बोरकर, दुर्गाबाई शिरोड़कर, टी० एल० राजू और माणिक वर्मा मुख्य हैं। कोल्हापुर, हुबली, धारवाड़, मिरज इत्यादि स्थानों में इनका बहुत नाम है। भारत के विभिन्न नगरों के संगीत सम्मेलनों में यह प्रायः जाते हैं। बम्बई आने के बाद इन्होंने अपने चाचा अल्लादिया ख़ाँ से भी संगीत सीखा था और उनके स्वर्गवास के छः महीने पहले तक यह शिक्षा चलती रही थी। कुछ चीज़ें इन्होंने उनियारे वाले ग़ुलाम अहमद ख़ाँ से भी सीखीं। अज़मत हुसैन ख़ाँ मेरे निस्बती भाई हैं और मुझसे भी इन्होंने कुछ शिक्षा ली है। उस्ताद फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ का गाना सुनकर इन्होंने कुछ संगीत-सम्बन्धी सूक्ष्मताओं का ज्ञान प्राप्त किया था, इसलिए उन्हें भी यह अपना गुरु मानते हैं। इन्हें शुरू से ही कविता का भी शौक़ रहा है। इसलिए यह प्रसिद्ध शायर सीमाब अकबरबादी के शिष्य हुए और कविता में भी ऊँची उड़ानें भरीं। यह अक्सर मुशायरों में हिस्सा लेते हैं। शायरी में इनका उपनाम 'मैकश' है। साथ ही इन्हें हिन्दी कविता से भी उतना ही प्रेम है और 'दिलरंग' उपनाम से लिखते हैं। इन्होंने बहुत-सी राग-रागिनियों में ख़याल और अस्थायी बाँधे हैं जो इस पुस्तक में आगे दिये जाएँगे।

ऊपर जितने संगीतज्ञों का वर्णन हुआ है, उनके अतिरिक्त अतरौली खानदान में शाक़िर ख़ाँ, मदन ख़ाँ, हैदर ख़ाँ, इब्राहीम ख़ाँ, अहमद ख़ाँ और नत्थन ख़ाँ आदि कई एक अच्छे गानेवाले हुए हैं जिनके बारे में कोई ख़ास जानकारी नहीं मिल सकी। ये लोग ऐसे कलाकार थे जिन्हें न नाम पैदा करने की धुन थी, न जो रियासतों में ही नौकरी के लिए घूमते थे। नत्थन ख़ाँ का स्वर्गवास सन् १९४६ में बम्बई में हुआ। उनके भी कई एक अच्छे शिष्य हैं जिनमें सरस्वती राने और देशपांडे का नाम उल्लेखनीय है। इसी तरह अल्लादिया ख़ाँ के बड़े सुपुत्र नसीरुद्दीन ख़ाँ भी अच्छे गवैये हैं। भूरजी ख़ाँ के सुपुत्र अज़ीज़ुद्दीन ख़ाँ आजकल इन्हीं से शिक्षा ले रहे हैं।

सिकन्दराबाद (जिला बुलन्दशहर) का घराना

रमज़ान ख़ाँ

उत्तर प्रदेश के बुलन्दशहर ज़िले में सिकन्दराबाद नामक स्थान पर एक रमज़ान ख़ाँ नामक गवैये हुए हैं। संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा इन्हें अपने घराने में ही मिली। पर बाद में यह इमाम ख़ाँ अतरौली वाले के शिष्य हो गये और इन्होंने संगीत की बहुत-सी विशेषताओं पर अधिकार प्राप्त किया। यह स्वयं भी बहुत सुन्दर रचना करते थे और इन्होंने बहुत-से ध्रुपद, होरी, अस्थायी-ख़याल, अनेक राग-रागिनियाँ में बनाये हैं और ऐसी सुन्दर तानें और बनाव अपनी रचनाओं में रक्खा है कि वे सभी लोकप्रिय हुई हैं। इनकी कुछ चीज़ें भारत भर में विख्यात हैं। फ़ैयाज़ हुसैन ख़ाँ इसी ख़ानदान के थे। अपने बड़े-बूढ़ों से मैंने सुना है कि मियाँ सदारंग, अदारंग और मनरंग के बाद इतनी बेहतरीन बन्दिश की चीज़ें बहुत कम ही सुनने में आई हैं। इनकी रचनाएँ कविता और संगीत दोनों के सिद्धान्तों पर खरी उतरती हैं। इसीलिए सारे हिन्दुस्तान के गायक आज तक बड़े चाव से इन्हें गाते चले आ रहे हैं। इनकी कुछ चीज़ें इस पुस्तक में अन्त में दी जा रही हैं। अपनी रचनाओं में यह उपनाम 'मियाँ रँगीले' रखते थे।

कुतुबबख़्श

उन्नीसवीं सदी में सिकन्दराबाद में एक कुतुबबख़्श भी पैदा हुए थे जिन्होंने अपनी मेहनत और कोशिश से इस कला में बड़ा कमाल हासिल किया। जब यह लखनऊ पहुँचे तो नवाब वाजिद अली शाह ने इन्हें हाथों-हाथ लिया और अपने यहाँ नियुक्त कर लिया। धीरे-धीरे इनका प्रभाव

इतना बढ़ा कि नवाब ने इन्हें अपना मन्त्री बना लिया। ख़ाँ साहब संगीत विद्या के साथ-साथ फ़ारसी-उर्दू के भी बड़े विद्वान थे और अपने ज़माने के प्रसिद्ध गणितज्ञ थे। यह सितार भी बहुत अच्छा बजाते थे। जब लखनऊ का पतन हुआ तो यह रामपुर के नवाब क़ल्बे अली खाँ के दरबार में चले आये। इनके ज़माने में लखनऊ में इनके गाने का ही बोलबाला था।

मुहम्मद अली ख़ाँ

मुहम्मद अली ख़ाँ मियाँ रमज़ान ख़ाँ के भतीजे थे। यह भी उन्नीसवीं सदी में सिकन्दराबाद में पैदा हुए। संगीत की विद्या इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से हासिल की। सुना है कि जब यह बाँदा पहुँचे तो वहाँ के नवाब जुलफ़िक़ार अली ख़ाँ ने इनका बड़ा आदर-सत्कार किया। वहीं हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध गवैये हाँडे इमामबख़्श भी मौजूद थे जो बड़ी पेचीदा और कठिन गायकी गाते थे। मुहम्मद अली ख़ाँ ने इनका गाना सुना तो वह गायकी इन्हें इतनी पसन्द आई कि उन्हीं के ढंग पर चलने का विचार किया और उनके शागिर्द हो गये। जयपुर, अलवर, बूँदी आदि रियासतों में इनकी बड़ी इज़्ज़त हुई और पुरस्कार आदि भी मिले। झालरापाटन के महाराजा इनसे बहुत प्रसन्न हुए थे और इन्हें अपने यहाँ नियुक्त कर लिया था तथा सवारी के लिए पालकी भी दी थी। ख़ाँ साहब मुद्दत तक वहीं रहे और सन् १८६० में स्वर्गवास हुआ।

अमीर ख़ाँ

अमीर ख़ाँ भी मियाँ रमज़ान ख़ाँ रँगीले के भतीजे थे और उन्हीं से इन्हें संगीत की शिक्षा मिली। जवान होने के बाद बिहार राज्य में इन्होंने अपने संगीत का बड़ा प्रचार किया और बहुत-से शिष्य भी तैयार किये। दुर्भाग्यवश उनके नाम मालूम नहीं हो सके। इनके बारे में एक बात और भी है कि बहुत अच्छे गायक होने के कारण कुछ लोग इनके

दुश्मन हो गये थे। कहा जाता है कि इसीलिए किसी ने इन्हें सिन्दूर खिला दिया जिससे इनकी आवाज़ बिलकुल बेकार हो गई थी। इस दुर्घटना से यह बहुत ही परेशान हुए और उसी परेशानी में यह हज़रत मख़दूम सफ़रुद्दीन बिहारी की दरगाह पर गये और दो साल तक वहाँ रह कर रोते और दुआ करते रहे। कहा जाता है कि इनकी दुआ क़बूल हुई और इनकी आवाज़ की सारी बुराइयाँ दूर हो गईं, बल्कि पहले से भी अच्छी हो गई। ज़िन्दगी के बाक़ी दिन इन्होंने बिहार में ही गुज़ारे। वहाँ के रईस इनकी बड़ी इज़्ज़त करते थे। सन् १८६० में इनका स्वर्ग-वास हुआ।

कुतुब अली ख़ाँ

सिकन्दराबाद में एक कुतुब अली ख़ाँ नामक संगीतज्ञ भी हुए हैं। संगीत की शिक्षा इन्हें अपने बुज़ुर्गों से मिली थी। अपने परिश्रम और अभ्यास से इन्होंने अपनी कला का लोहा सारे हिन्दुस्तान से मनवाया था। इनके समय में हिन्दुस्तान के कई बड़े कलाकार जैसे दिल्लीवाले तानरस ख़ाँ, मुबारिक अली ख़ाँ क़व्वाल-बच्चे, ग्वालियर वाले हद्दू ख़ाँ और घसीट ख़ाँ हुलियारे आदि मौज़ूद थे। किन्तु इनका रंग सबसे अलग और अछूता था। जब यह गाते थे तो इनके बाद किसी का गाना नहीं जमता था। स्थायी और अन्तरा अदा करने की इनकी तरकीब इतनी अजीब और प्यारी थी कि सब दंग रह जाते थे और गायकी में ऐसा जादू का-सा असर था कि लोग झूमने लगते थे। मियाँ रमजान ख़ाँ रँगीले के बाद इनसे बेहतर गायक सिकन्दराबाद में कोई नहीं हुआ। इनका स्वर्गवास भी सिकन्दराबाद में ही हुआ।

रहमतउल्ला ख़ाँ

रहमतउल्ला ख़ाँ भी तानरस ख़ाँ और हद्दू ख़ाँ के समकालीन थे। इन्होंने भी संगीत विद्या अपने बुज़ुर्गों से हासिल की और सिकन्दराबाद

के ख़ानदान का नाम और भी ऊँचा किया। इनके वंश में और भी बड़े-बड़े कलाकार पैदा हुए। इनका स्वर्गवास सिकन्दराबाद में ही हुआ।

अज़मतउल्ला ख़ाँ

अज़मतउल्ला ख़ाँ रहमतउल्ला ख़ाँ के सबसे बड़े बेटे थे। इनका जन्म सिकन्दराबाद में हुआ था। संगीत की शिक्षा इन्होंने अपने पिता से ही प्राप्त की। यह अस्थायी-ख़याल बहुत अच्छा गाते थे। इनकी तान बहुत ख़ूबसूरत और ज़ोरदार थी। इनके बारे में मैंने सुना है कि बीस साल की उम्र में यह जैसा गाना गाते थे वैसा उस उम्र के किसी गायक से पहले कभी नहीं सुना गया। एक बार यह कलिजर शरीफ में मख़दूम पाक के उर्स में हाज़िर हुए जहाँ सारे हिन्दुस्तान के गवैये इकट्ठे हुआ करते थे। वहाँ यह अपने दोनों भाइयों के साथ गाने के लिए बैठे और पूरे जोर-शोर से गा रहे थे कि दिल्लीवाले तानरस ख़ाँ भी उधर आ निकले और खड़े होकर इनका गाना सुनने लगे। उन्होंने इन लोगों के गाने की बहुत तारीफ़ की जिसे सुन कर अज़मतउल्ला ख़ाँ ने कहा, "हमारे बराबर आकर बैठिये तो गाने का पता चले!" यह बात तानरस ख़ाँ को बहुत बुरी लगी और उनकी ज़बान से बददुआ निकल गई। उन्होंने कहा, "जीने का गाना नहीं गाते हो!" वह यह कहकर हटे ही थे कि अज़मतउल्ला ने एक तान लगायी और उसी साथ इनके प्राण निकल गये। इस घटना से हमें दो शिक्षाएँ मिलती हैं। एक तो यह कि कलाकार को कभी घमण्ड नहीं करना चाहिए। दूसरे, यह कि अपने से बड़े कलाकार के साथ बदतमीज़ी नहीं करनी चाहिए। दुखे हुए दिल की बददुआ बहुत जल्दी लगती है। यह घटना उन्नीसवीं सदी की है।

क़ुदरतउल्ला ख़ाँ

क़ुदरतउल्ला ख़ाँ रहमतउल्ला ख़ाँ के बड़े बेटे थे। अपने पिता और ख़ानदान के दूसरे बड़े-बूढ़ों से इन्होंने संगीत विद्या की शिक्षा पाई थी

और अपने ज़माने में हिन्दुस्तान के बेहतरीन गानेवाले माने जाते थे। इनकी आवाज़ बुलन्द, पाटदार, रोशन और सुरीली थी। यह अस्थायी-ख़याल, तराना वगैरह सभी गाते थे और जब महफ़िल में बैठते, अपना रंग जमाकर ही उठते। इनके समकालीनों में अलीबख़्श, फ़तह अली ख़ाँ पंजाबी, ज़हूर ख़ाँ, महबूब ख़ाँ, पुत्तन ख़ाँ, अतरौली वाले अल्लादिया ख़ाँ, इनायत हुसैन ख़ाँ सहसवानी, ग्वालियर वाले नज़ीर ख़ाँ और आगरे वाले नत्थन ख़ाँ जैसे चोटी के कलाकार थे। इन्होंने अपने ज़माने के बड़े-बड़े जलसों में हिस्सा लिया। इनकी एक विशेषता यह भी थी कि क़व्वाली बहुत ऊँचे दर्जे की गाते थे। अपने ज़माने में यह क़व्वाली में हिन्दुस्तान भर में बेजोड़ थे। यह मीर महबूब अली ख़ाँ निज़ाम के समय में हैदराबाद दरबार में नियुक्त हुए और वहीं सन् १९२० में इनका स्वर्गवास हुआ। मैंने भी इनसे चार चीजें सीखीं थीं। यह बड़े खुले मन के बुज़ुर्ग थे। अस्सी बरस की आयु में यह बम्बई आये थे और बसन्त पंचमी के अवसर पर मास्टर मढारीकर के मकान पर इनका गाना सुनकर भास्कर बुआ भखले ने इन्हें गुरु-दक्षिणा दी थी।

ज़हूर ख़ाँ

ज़हूर ख़ाँ इमाम ख़ाँ के बेटे थे। यह सिकन्दराबाद के रहने वाले थे और हिन्दुस्तान के तैयार गवैयों में गिने जाते थे। इनके पिता सिर्फ़ ढोलक बजाते थे और इस काम में सारे हिन्दुस्तान में उनकी टक्कर का कोई दूसरा न था। ज़हूर ख़ाँ ने संगीत की शिक्षा अपने बुज़ुर्गों से ही लेनी चाही। मगर उतनी शिक्षा से इनकी प्यास नहीं बुझी। जितना याद था उस पर यह दिन-रात मेहनत करते थे। इसीलिये जिसने भी इन्हें सुना वह इनकी प्रशंसा करता था। यह दिल्ली वाले तानरस ख़ाँ को अपना उस्ताद मानते थे। साथ ही इन्होंने महबूब ख़ाँ और नत्थन ख़ाँ की संगत भी की थी और अक्सर उनका गाना सुना करते थे जिससे इनकी संगीत की जानकारी बढ़ती जाती थी। फिर यह महबूब ख़ाँ के

भी शागिद हो गये। गाने के लिए यह सदा तैयार रहते थे और बड़ा ज़ोरदार गाना गाते थे। एक बार तानरस खाँ के चहल्लुम के जलसे में अलीबख़्श और फ़तह अली ख़ाँ पंजाबी ने बड़ा अच्छा गाना गाया। उसके बाद ज़हूर ख़ाँ गाने के लिए बैठे तो इन्होंने भी ऐसा रंग जमाया कि सुनने वाले दंग रह गये। यहाँ तक कि अंत में अलीबख़्श और फ़तह अली ख़ाँ को भी भरी सभा में यह कहना पड़ा कि आप तो हमारे ख़लीफ़ा हैं और हमसे बहुत ऊँचे दर्जे पर हैं।

फ़िदा हुसैन ख़ाँ

फ़िदा हुसैन ख़ाँ मुहम्मद अली सिकन्दराबादी के मँझले बेटे थे। संगीत इन्होंने अपने पिता से सीखा और हिन्दुस्तान के उत्कृष्ट गायक माने गये। इनकी आवाज़ पतली, सुरीली, लोचदार और प्रभावकारी थी। इनका बहुत-सी रियासतों में सम्मान हुआ। सन् १९१० में यह नाथ-द्वारा मठ में गुसाईंजी के पास रहने लगे। गुसाईंजी इनकी बड़ी क़द्र करते थे और सन् १९२० तक यह वहीं रहे। उसके बाद कोटा आकर इनका स्वर्गवास हुआ।

मुहम्मद अली ख़ाँ

मुहम्मद अली ख़ाँ कुदरतउल्ला ख़ाँ के बड़े बेटे थे। इन्होंने अपने पिता से अस्थायी-खयाल की गायकी सीखी और खूब अभ्यास किया। प्रकृति ने इन्हें बड़ी पाटदार और सुरीली आवाज़ दी थी। यह हैदराबाद में निज़ाम के दरबार में नियुक्त थे। इसके अतिरिक्त इन्दौर, मैसूर, गढ़वाल आदि राज्यों में भी इन्हें बहुत सम्मान और पुरस्कार मिले। माणिकप्रभु वाले गुसाईंजी महाराज इनसे बड़े प्रसन्न थे और हर साल यात्रा के अवसर पर इन्हें बुलाते और सोने के कड़े तथा दुशाले भेंट करते थे। सन् १९२५ में हैदराबाद में इनका स्वर्गवास हुआ।

बदरुज़्ज़माँ

बदरुज़्ज़माँ किफ़ायतउल्ला ख़ाँ के बड़े बेटे थे। संगीत विद्या इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से सीखी। इनका गला बहुत सुरीला और तैयार था तथा तान बड़ी असरदार थी। इनको पुरानी चीज़ें बहुत-सी याद थीं जिन्हें यह महफ़िल में बैठकर बड़ी जमावट के साथ गाते थे। दो-तीन पुरानी बन्दिश की चीज़ें मैंने भी इनसे याद की थीं। यह खुद भी रचना करते थे और इन्होंने बहुत-सी चीज़ें बनाई थीं। ख़ासकर तराने तो इन्होंने बहुत ही अच्छे बनाये हैं। नमूने के तौर पर कुछ तराने इस पुस्तक के अन्त में दिये जाएँगे। शास्त्रीय संगीत के अलावा ठुमरी, दादरा और हल्की-फुलकी चीजें भी यह ऐसे गाते थे कि सुनने वाले बेचैन हो जाते थे। यह हैदराबाद दरबार में थे पर इसके अलावा इन्दौर, मैसूर, ग्वालियर, दुजाना, गढ़वाल तथा श्री माणिकप्रभु के गुसाईं महाराज के दरबार से भी इन्हें बहुत पुरस्कार आदि मिले थे। हैदराबाद में इन्होंने बहुत-से शागिर्द भी तैयार किये थे जिनके नाम नहीं प्राप्त हो सके। मन के यह इतने साफ़ थे कि जिस गवैये ने इनसे जो चीज सीखनी चाही, वह बिना हिचकिचाहट के तुरंत सिखा दिया करते थे। सन् १९३९ के लगभग हैदराबाद में इनका स्वर्गवास हुआ।

मुज़फ़्फ़र ख़ाँ

मुज़फ़्फ़र ख़ाँ मस्ते ख़ाँ के सुपुत्र थे और दिल्ली में रहते थे। संगीत की विद्या इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से सीखी। अस्थायी-ख़याल की गायकी में इनका बड़ा नाम हुआ। इनकी आवाज़ साफ़ और सुरीली थी। यह हिन्दुस्तान की सभी छोटी-बड़ी रियासतों में गये और वहाँ से इन्हें काफ़ी प्रशंसा और पुरस्कार आदि प्राप्त हुए। इनके बहुत-से शिष्य बंगाल में भी हैं जिनमें चम्पानगर और महिषादल के महाराजा के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अपने बेटे मुनव्वर ख़ाँ को भी संगीत की शिक्षा

दी है और अब वह भी जलसों में गाने लगे हैं। आशा है कि आगे जाकर वह अच्छे गायक बनेंगे।

सिकन्दराबाद के गवैयों में इन लोगों के अतिरिक्त कुतुब अली ख़ाँ के पुत्र गुलाम अब्बास ख़ाँ भी संगीत विद्या में पारंगत और प्रभावकारी गायक थे। यह उन्नीसवीं शताब्दी में हुए हैं। सुनने वाले इनकी बड़ी प्रशंसा करते थे और विशेषकर मथुरा के गुसाईं इनसे बहुत प्रेम करते थे। मैंने भी अपने बुज़ुर्गों से इनकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। यह अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भोपाल दरबार में रहे। इसी तरह से सन् १८०१ में सिकन्दराबाद में भोया और भुनगा नामक दो सगे भाई पैदा हुए थे। ये दोनों अच्छे संगीतज्ञ थे और साथ ही बड़े भारी भक्त भी थे। भक्ति के रंग में यह इतने रँगे हुए थे कि इन्होंने दुनिया त्याग दी थी। चिश्ती रहमतउल्ला अलेह की दरगाह में इनकी समाधियाँ मौजूद हैं।

खुर्जा का घराना

उत्तर प्रदेश के बहुत-से शहरों में अलग-अलग संगीतज्ञों के आकर बस जाने से संगीत के अलग-अलग घराने बन गये हैं। ऐसा ही एक घराना खुर्जा में भी था। अठारहवीं सदी के आरम्भ में वहाँ कोई एक नत्थे ख़ाँ हुए हैं जिनके पुत्र जोधे ख़ाँ, जो दिल्ली जिले के समसेर नामक क़स्बे में पैदा हुए थे, बड़े अच्छे संगीतज्ञ थे। इनकी शिक्षा घराने के बुज़ुर्गों द्वारा ही हुई। शिमरौनगढ़ के नवाब ने इनका गाना बहुत पसन्द किया था और इन्हें जागीर देकर अपने दरबार में रख लिया था। जीवन के अन्तिम दिनों में यह आकर खुर्जा में बस गये और बाक़ी उम्र वहीं गुज़री।

इमाम ख़ाँ

जोधे ख़ाँ के पुत्र इमाम ख़ाँ खुर्जा में ही पैदा हुए और इन्होंने अपने पिता से और अपने घराने के एक बुज़ुर्ग शाहाब ख़ाँ से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। जवान होने पर यह रामपुर के नवाब क़ल्बे अली ख़ाँ के दरबार में पहुँचे। नवाब साहब इनके गाने से बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें अपने दरबार में रख लिया। जीवन भर यह वहीं रहे पर अन्त में इनका स्वर्गवास खुर्जा आकर ही हुआ।

गुलाम हुसैन ख़ाँ

गुलाम हुसैन ख़ाँ इमाम ख़ाँ के बेटे थे। यह दनकोर नामक क़स्ब में जाकर बस गये थे पर बाद में नवाब आज़म अली ख़ाँ, जो ख़ुद संगीत के बड़े प्रेमी थे, जाकर इन्हें खुर्जा ले आये और वहीं रहने पर मजबूर

किया। नवाब ने इन्हें जागीर भी दी और बहुत आदर से अपने यहाँ रक्खा। उसके बाद से यह जीवन भर खुर्जा में ही रहे।

ज़हूर ख़ाँ

जहूर ख़ाँ ग़ुलाम हुसैन ख़ाँ के बड़े बेटे थे। यह बड़े विद्वान थे और हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी चारों भाषाओं में कविता करते थे। हिन्दी और संस्कृत की कविता में इनका उपनाम 'रामदास' और उर्दू-फ़ारसी में 'मुमकिन' तखल्लुस था। इनकी कविताओं के संग्रह मैंने भी देखे हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक भाषाओं का ज्ञान इन्हें बचपन से ही था। संगीत की शिक्षा इन्हें अपने बुज़ुर्गों से ही मिली और होरी-ध्रुपद, अस्थायी-ख़याल, सभी पर इनका पूरा अधिकार था। जवान होकर यह ऊँचे दर्जे के गायक और नायक दोनों ही हुए। संगीत विद्या की छानबीन भी इन्होंने बहुत की थी। इनके बनाये हुए ध्रुपद, सादरे, अस्थायी-ख़याल, छन्द, प्रबन्ध, चतुरंग, तिरवट, सरगम अभी तक मौजूद हैं जो इनके शागिर्दों द्वारा गाये जाते हैं। इन्होंने सारा जीवन संगीत की सेवा में ही लगाया। पर इन्हें अपनी तारीफ़ से बड़ी चिढ़ थी, इस-लिए बाहर बहुत कम जाते थे। अन्तिम दिनों में बरेली के एक रईस, जो इनके शागिर्द थे, इन्हें बरेली ले गये और वहीं इनका स्वर्गवास भी हुआ। अलीगढ़, बुलन्दशहर, मेरठ, दिल्ली तथा बरेली आदि में इनके सैकड़ों शागिर्द आज भी मौजूद हैं। इनकी बनाई हुई कुछ चीज़ें हम इस पुस्तक के अन्त में देंगे। इनके दूसरे भाई मुंशी ग़फ़ूरबख़्श सितार बहुत अच्छा बजाते थे और अच्छे शायर भी थे। इनका उपनाम 'कामिल' था। संगीत विद्या के भेद यह भी अच्छी तरह से जानते थे।

ग़ुलाम हैदर ख़ाँ

ग़ुलाम हुसैन ख़ाँ के छोटे पुत्र का नाम ग़ुलाम हैदर ख़ाँ था। इनका जन्म भी खुर्जा में ही हुआ और संगीत की शिक्षा इन्हें अपने पिता और बड़े भाई जहूर ख़ाँ से मिली। जवान होने पर यह बहुत ही चुने हुए

गवैये हुए। इनको विद्या सीखने का बहुत उत्साह था। यह लखनऊ जाकर कुछ दिन रहे और उसके बाद नेपाल दरबार में इन्हें स्थान मिल गया और लगभग बीस साल यह वहीं रहे। बाद में यह महाराज से आज्ञा लेकर खुर्जा चले आये और बाक़ी जीवन खुर्जा तथा आस-पास के शहरों में ही बिताया। शागिर्दों को यह खूब शौक़ से, और उनके मन में शौक़ पैदा करके, सिखाते थे और इनके बहुत-से शिष्य आज भी मौजूद हैं। इनके सुपुत्र अब्दुल हकीम ख़ाँ ने भी इनसे अच्छी शिक्षा पाई जो आजकल लखनऊ और सँडीले में रहते हैं। गुलाम हैदर ख़ाँ का स्वर्गवास सन् १९२० में हुआ।

अलताफ़ हुसैन ख़ाँ

अलताफ़ हुसैन ख़ाँ जहूर ख़ाँ के बेटे हैं। इनका जन्म सन् १८७३ में हुआ। पिता ने इन्हें संगीत के साथ-साथ उर्दू-फ़ारसी भी पढ़ाई। इन्होंने ग्यारह साल की उम्र से ही महफ़िलों में गाना शुरू कर दिया था। इन्हें ध्रुपद-धमार, अस्थायी-ख़याल, तराना, तिरवट, चतुरंग आदि तमाम चीज़ों पर अधिकार है। इनकी गायकी बहुत बल और पेचदार है। यह लगभग सत्रह रियासतों में रहे हैं और आजकल यह चौदह साल से बिहार के बनैली राज्य में महाराजकुमार श्यामानन्द सिंह के यहाँ हैं। यह १९२२ में नेपाल भी गये जहाँ महाराज चन्द्र शमशेर बहादुर राणा ने इन्हें चार महीने तक अपने यहाँ रखा और बराबर इनका गाना सुना तथा बहुत-कुछ इनाम-पुरस्कार दिया। यह बहुत ही मिलनसार और नेक तबीयत के व्यक्ति हैं। बंगाल और बिहार में बहुत-से रईस इनके शागिर्द हैं। अपने बेटे मुहम्मद वाहिद ख़ाँ को भी इन्होंने अच्छी शिक्षा दी है और वह भी अच्छा गाने लगे हैं। आजकल यह अपने छोटे सुपुत्र मुमताज़ अहमद ख़ाँ को शिक्षा दे रहे हैं।

जयपुर का घराना

रजब अली ख़ाँ

इनका जन्म अलीगढ़ में हुआ था पर यह इनायत हुसैन ख़ाँ ताम-झामिये के शागिर्द थे। बीन इन्होंने हसन ख़ाँ अम्बेठे वालों से सीखी। बीन बजाने में दूर-दूर तक इनके मुक़ाबले का कोई नहीं था। बुज़ुर्गों से सुना है कि यह गाना भी ऐसा गाते थे कि जिसकी कोई टक्कर न थी। साथ ही दिलरुबा बजाने में भी बहुत प्रवीण थे और सितार बजाते तो लोग वाह-वाह किये बिना न रहते। यह भगवान की देन थी कि संगीत के जिस पक्ष को यह हाथ में लेते, उस पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लेते। जहाँ तक वाद्यों का सवाल है, इनको लगभग सभी पर पूरा-पूरा अधिकार था। जयपुर के महाराजा रामसिंह भी इनके शागिर्द हुए थे और उन्होंने इनसे बीन सीखी थी। इनको जयपुर राज्य से जागीर और रहने के लिए एक हवेली मिली हुई थी। महाराज रामसिंह इनको बहुत ही मानते थे और शाही दरबार में इनका बहुत ही बड़ा आदर था। इनको राज-महल के भीतर किसी भी वक्त जाने की छूट थी। यह पालकी में बैठे हुए महल में पहुँचते तो महाराजा साहब इनका स्वागत करते। वास्तव में जयपुर-नरेश इनको ऐसे ही मानते थे जैसे एक उस्ताद को मानना चाहिए। इन्होंने कुछ चीज़ें स्वयं भी बनाई हैं। सितार की गतें भी कुछ इन्होंने रची थीं जो इनके ख़ानदान वालों को अभी तक याद हैं। मैंने सुना है कि इनके घर पर रोज़ गाने-बजाने का सिलसिला रहता था और साथ ही संगीत-सम्बन्धी चर्चा भी हर समय होती रहती थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनके जैसे बीनकार हिन्दुस्तान में बहुत कम

हुए हैं और अपने ज़माने के संगीत-प्रेमियों और समझदारों के ऊपर इनका बड़ा भारी प्रभाव था। इनका स्वर्गवास महाराज माधोसिंह के राज्य-काल के प्रारम्भ में हुआ।

साँवल ख़ाँ

यह भी एक बड़े उच्च कोटि के बीनकार थे। यह जयपुर में महाराज माधोसिंह के दरबार में नियुक्त थे। यह बहुत ही पुराने ढंग के व्यक्ति थे और पुरानी चाल के रीति-रिवाज की बहुत ही पाबन्दी करते थे। मैंने इनको अच्छी तरह देखा और सुना है। यह सिर पर सवाईदार जयपुरी पगड़ी तथा ढाल-तलवार लगाये रहते थे। हुक़्क़ा इस क़दर पीते थे जिसकी हद नहीं। इसलिए एक नौकर सिर्फ़ हुक़्क़ा भरने और पिलाने के लिए रक्खा हुआ था जो हर वक्त और हर जगह हुक़्क़ा साथ लिये रहता था। जब बीन बजाने बैठ जाते तो लोगों को अपनी कला से बेचैन कर देते थे। इनके हाथ में ऐसी मिठास और ऐसा गुण था जिसकी मिसाल नहीं। इनकी कला में ज्ञान और प्रभावपूर्णता का अद्भुत सम्मिश्रण था। यह स्वभाव से बहुत ही शिष्ट और सुसंस्कृत व्यक्ति थे।

मुशर्रफ़ ख़ाँ

यह रजब अली ख़ाँ के भानजे थे और अपने बुज़ुर्गों से ही इन्होंने बीन की विद्या हासिल की थी। जी-तोड़ मेहनत ने इनके काम में चार चाँद लगा दिये और इसलिए सारे हिन्दुस्तान में इनका बड़ा भारी नाम हुआ। महाराजा खेतड़ी इनके शागिर्द थे और इनको बड़ी इज़्ज़त से अपने यहाँ ठहराते थे। महाराज अलवर भी इनकी बीन सुनकर इतने प्रसन्न हुए थे कि ख़ुश होकर इन्हें एक गाँव दिया और सौ रुपये महीना वेतन नियुक्त कर दिया था। मैंने इन्हें अपने बचपन में देखा है। यह निहायत ख़ूबसूरत और कसरती बदन के आदमी थे। साथ ही शौक़ीन

तबीयत भी थे तथा अच्छे कपड़े पहनने का इन्हें बहुत शौक़ था। दूसरी ओर यह काम में मेहनती भी बड़े भारी थे। यह इनकी मेहनत का ही फल था कि सारे हिन्दुस्तान में इनका नाम मशहूर हुआ। इनसे प्रभावित लोगों में वज़ीर ख़ाँ जैसे व्यक्ति भी थे। इनकी कोटि के बीनकार इनके ज़माने में बहुत ही कम थे। यह एक बार फ्रांस की नुमाइश में जाकर योरप तक में हिन्दुस्तानी संगीत का डंका पीट आये थे। वैसे भी यह बहुत ही शिक्षित और विद्वान व्यक्ति थे और बहुत शिष्ट भी। सन् १६०६ में इनका देहान्त हुआ।

मुसाहब अली ख़ाँ

मुसाहब अली खाँ मुशर्रफ़ ख़ाँ के बड़े बेटे थे और बीन इन्होंने अपने पिता से ही सीखी थी। इनकी बुद्धि भी बहुत कुशाग्र थी। इसलिए बहुत जल्दी ही यह अपने परिवार की विद्या में चतुर हो गये। सारे हिन्दुस्तान में इनका बड़ा भारी नाम था। तबीयत के यह रंगीन थे और आज़ाद भी। इसलिए कभी कहीं नौकरी नहीं की। इनका गला सुरीला और आवाज़ पाटदार थी। इसलिये कभी-कभी अपना दिल बहलाने के लिए ग़ज़ल वगैरह गाने लगते तो सुनने वाले तड़प उठते। सन् १६१२ में इनका देहान्त हुआ।

सादिक़ अली ख़ाँ

सादिक़ अली खाँ मुशर्रफ़ ख़ाँ के मँझले बेटे हैं। इन्होंने भी अपने पिता से ही बीन सीखी। यह बहुत दिन झालावाड़ रियासत में रहे। इसके बाद अलवर के महाराज जयसिंह ने इनकी बड़ी क़द्र की और जागीर तथा इनाम आदि देकर अपने यहाँ रख लिया। यह हिन्दुस्तान की हर कांफ्रेंस में बुलाए जाते हैं और मौजूदा ज़माने में उच्च कोटि के बीनकार माने जाते हैं। संगीत के अतिरिक्त उर्दू और फ़ारसी में भी इनकी बड़ी योग्यता है। मेरे यह बहुत पुराने दोस्तों में से हैं।

जमालुद्दीन ख़ाँ

यह अमीर खाँ के दूसरे बेटे थे और इनका जन्म सन् १८५९ में जयपुर में हुआ था। इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से बीनकारी सीखी थी और स्वयं भी बड़े ऊँचे दर्जे के बीनकार हुए। बड़ौदा पहुँच कर यह महाराज सियाजीराव गायकवाड़ के दरबार में नियुक्त हो गये। सुना है कि वहाँ की रानी साहिबा भी इनकी शिष्या हुई थीं। उच्च कोटि के बीनकार होने के अलावा संगीत विद्या की जानकारी इनकी बड़ी गहरी थी। बुज़ुर्गों के ध्रुपद वगैरह भी इनको याद थे। स्वभाव से यह बहुत ही शिष्ट और नेक थे और बड़े सुसंस्कृत और विद्वान समझे जाते थे। हिन्दुस्तान के दूसरे राज्यों में भी इनका बहुत आदर-सत्कार होता था तथा वहाँ से बहुत-से पुरस्कार आदि मिले थे। 'वीणा विनोद' की की उपाधि भी इन्हें मिली थी। सन् १९१९ में इनका देहान्त हुआ।

शमसुद्दीन ख़ाँ

शमसुद्दीन खाँ अमीर खाँ के तीसरे बेट थे। इन्होंने अपने पिताजी से सितार सीखी थी जिसे यह बड़े ही पुरअसर ढंग से बजाते थे और सुनने वालों को बड़ा चैन आता था। इन्हें भी बहुत-सी रियासतों में सम्मान मिला। अन्त में यह बम्बई आकर रहने लगे और वहाँ के कई रईस इनके शागिर्द हुए। बम्बई में इनको सम्मान भी बहुत मिला। अपने नेक स्वभाव से यह हर आदमी को अपने वश में कर लेते थे। सन् १९२० में इनका स्वर्गवास हुआ।

आबिद हुसैन

आबिद हुसैन जमालुद्दीन ख़ाँ के बेटे हैं और बचपन से ही बड़ौदा में रहते हैं। इन्होंने अपने पिता से बीन की तालीम और गायकी पाई तथा इनका हाथ और गला दोनों ही सुरीले और मीठे हैं। कुछ दिनों

बड़ौदा राज्य में नौकरी करने के बाद इन्हें जंजीरा के नवाब ने अपने यहाँ बुला लिया और तब से आज तक यह वहीं रहते हैं ।

अमीरबख़्श

अमीरबख़्श गोंदपुर के ख़ानदान के मदारबख़्श ख़ाँ के सुपुत्र थे। इनके पिता ने इन्हें होरी-ध्रुपद की शिक्षा दी थी और बाद में इन्हें सदरुद्दीन ख़ाँ का शागिर्द बनवा दिया था जिनसे इन्होंने आलाप की शिक्षा ली और होरी-ध्रुपद की जानकारी भी बढ़ाई। यह बड़े मेहनती व्यक्ति थे और रात-रात भर गाते रहते थे। कहा जाता है कि यह बरसों तक सोये न थे। इनके गाने में एक अजीब किस्म की चमक जैसी थी। यह सितार भी बहुत अच्छा बजाते थे। इनके शिष्य करामत ख़ाँ बहुत प्रसिद्ध हुए हैं और होरी-ध्रुपद तथा आलाप में सारे हिन्दुस्तान में इनका नाम है। एक शिष्य नज़ीर ख़ाँ भी हैं जो सितार बजाने में बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। अमीरबख़्श जयपुर में महाराज रामसिंह के दरबार में नियुक्त थे और जयपुर में ही इनका स्वर्गवास हुआ।

मुहम्मद अली ख़ाँ

जयपुर के पास फ़तहपुर के इलाके में भी बहुत-से गवैये हुए हैं। उन्हीं में मुहम्मद अली ख़ाँ फ़तहपुरी भी हैं। इनका जन्म तो जयपुर में ही हुआ पर मैंने ख़ुद इनकी ज़बानी सुना था कि इनके बुज़ुर्ग फर्रुख़ाबाद में रहा करते थे। जो हो, इनका सारा ख़ानदान जयपुर में ही रहा। इन्होंने संगीत की विद्या अपने बुज़ुर्गों से ही हासिल की थी और उन्हीं के तरीक़े पर मेहनत करके नाम पैदा किया था। इनकी गायकी का अन्दाज़ बड़ा ही प्रभावपूर्ण था और इनके स्थायी, अन्तरा वग़ैरह बड़े मशहूर हुए। इन्हें पुराने लोगों की हज़ारों चीज़ें याद थीं और यह इनकी विशेषता थी कि जब गाते थे तो हर रंग को अलग-अलग अदा करते थे। यह भी सुना है कि यह प्रसिद्ध संगीतज्ञ मनरंगजी के पोतों में से थे। कम से कम इतना तो निश्चित है कि इन्हें मनरंगजी की बहुत-

सी चीज़ें याद थीं। इनकी योग्यता का सिक्का सारे हिन्दुस्तान में था और पण्डित भातखण्डे जैसे विद्वान इनके शागिर्द थे। गलते वाले हरि-बल्लभ आचार्य और दुर्गाबाई इनके दो अन्य शागिर्द हुए हैं। यह महा-राज रामसिंह के दरबार में नियुक्त थे किन्तु इनका देहान्त महाराज माधोसिंह के ज़माने में जयपुर में ही हुआ। इनके पोते अब भी जयपुर में रहते हैं।

आशिक़ अली ख़ाँ

आशिक़ अली ख़ाँ मुहम्मद ख़ाँ हररंग के बेटे थे। इन्हें संगीत की शिक्षा अपने पिता से मिली और अस्थायी-ख़याल बहुत अच्छा गाते थे। इन्हें अपने ख़ानदान की बहुत चीज़ें याद थीं। स्वभाव से आरामपसन्द होने पर भी इन्होंने अपने बुज़ुर्गों की कला नहीं छोड़ी और अपने घराने का नाम रोशन किया। यह स्वभाव से बहुत मिलनसार थे। इनका जन्म महाराज रामसिंह के ज़माने में हुआ और यह महाराज माधोसिंह के दरबारी गवैये रहे। इसके अतिरिक्त रामपुर और किशनगढ़ आदि रियासतों में भी इन्हें बड़ा सम्मान मिला। सन् १९१५ में इनका स्वर्ग-वास हुआ।

हैदर ख़ाँ

हैदर ख़ाँ का जन्म १८९८ में जयपुर में ही हुआ था। यह हुसैन बख़्श उर्फ़ छेती ख़ाँ के बेटे थे। सितार इन्होंने अपने चचा निसार हुसैन से सीखा और बहुत नाम पैदा किया। कुछ रोज़ यह जयपुर दरबार में भी रहे और बाद में दिल्ली आकर आल इण्डिया रेडियो में नौकर हो गये और दिल्ली में ही इनका देहान्त हुआ।

मथुरा का घराना

अठारहवीं सदी में मथुरा के सूबेदार नवाब नबी ख़ाँ के ज़माने में कौड़ीरंग और पैसारंग नाम के दो भाई हुए है। ये दोनों ध्रुपद-धमार और अस्थायी-ख़याल से बड़े अच्छे गायक थे। इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से ही यह काम हासिल किया था। इनके ख़ानदान में सितार भी बजाया जाता था, इसलिये यह चीज़ भी विरासत में इन्हें मिली थी। इनके वंश में आगे बड़े-बड़े गुणी कलाकार उत्पन्न हुए।

पान ख़ाँ

इसी ज़माने में सन् १८०० के पहले पान ख़ाँ नामक गवैये पैदा हुए थे जो सूबेदार नवाब नबी ख़ाँ के दरबारी गायक थे। बुज़ुर्गों से सुना है कि यह भी बहुत अच्छे गानेवाले थे और ध्रुपद-धमार, अस्थायी-ख़याल सभी पर इन्हें पूरा अधिकार था। साथ ही यह सितार भी बहुत अच्छा बजाते थे। नवाब ने इन्हें जागीर दे रक्खी थी। इनके वंश में भी संगीत विद्या आज तक चली आ रही है।

बुलाकी ख़ाँ

पान ख़ाँ के सुपुत्र का नाम बुलाकी ख़ाँ था जो मथुरा के बड़े बुज़ुर्ग और संगीत शास्त्र के महापण्डित हुए हैं। ब्रज में तो इन्होंने सभी लोगों का मन मोह रखा था, साथ ही जोधपुर, अलवर आदि राज्यों में भी इनका बड़ा आदर-सत्कार होता था। पर ब्रज के लोग इन्हें अधिक बाहर नहीं जाने देते थे। मथुरा के मन्दिरों के महन्त इनके संगीत से इतने प्रसन्न रहते थे कि इन्हें कभी बाहर जाने की ज़रूरत भी महसूस नहीं हुई। इनका काल भी अठारहवीं सदी है।

मेहताब ख़ाँ

बुलाकी ख़ाँ के सुपुत्र मेहताब ख़ाँ थे। यह भी गायन कला में बहुत निपुण थे और मथुरा के बड़े-बड़े मठों के महन्त इन पर प्रसन्न थे। यह उन्नीसवीं सदी में हुए।

मीराँबख़्श ख़ाँ

मीराँबख़्श ख़ाँ मेहताब ख़ाँ के बेटे थे। ऊँचे दर्जे की गायकी के अलावा यह सितार बहुत अच्छा बजाते थे। इनके सितार की प्रशंसा मैंने भी अपने बड़े-बूढ़ों से सुनी है। इनकी ज़िन्दगी का ज़्यादातर हिस्सा मथुरा में बीता पर बाद में बूँदी के महाराज बख़्तसिंह के अनुरोध से यह बूँदी चले आये और वहीं दरबारी गवैये बनकर रहे। बूँदी महाराज ने इन्हें अपना गुरु भी बनाया और बहुत ही आराम से रक्खा। इनकी बाक़ी उम्र बूँदी में ही कटी। यह सन् १८७० ईस्वी में हुए।

गुलदीन ख़ाँ

मीराँबख़्श ख़ाँ के सुपुत्र अहमद ख़ाँ थे जो गुलदीन ख़ाँ के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने सितार का अभ्यास ख़ूब किया था। जवान होने के बाद यह मथुरा से बाहर निकले और क़ई रियासतों में घूमते-घामते अन्त में गुजरात के लूनावड़ा राज्य में पहुँचे। वहाँ के महाराज ने इनका गाना सुनकर इन्हें दरबार में आदर सहित रक्खा और वह स्वयं इनके शिष्य भी बन गये। महाराज इनको प्रायः दूसरे-तीसरे दिन सुनते ही रहते थे। इनके बारे में एक बहुत ही दिलचस्प कहानी प्रसिद्ध है। महाराज को सितार सुनाते-सुनाते कभी-कभी ख़ाँ साहब कोई बहुत ही अच्छा स्वर लगा देते तो महाराज कहते, "वाह-वाह ख़ाँ साहब, क्या 'निषाद' लगाया है! इसके लिए आपको इनाम मिलना चाहिये।" उसके बाद महाराज उसी समय ख़ज़ांची को आज्ञा देते कि ख़ाँ साहब को एक तनख़्वाह 'निषाद' के लिए इनाम दी जाय। दो या तीन दिन बाद फिर सितार

सुनाते-सुनाते ख़ाँ साहब कोई अच्छा स्वर लगाते तो महाराज का फिर वही रवैया होता और कहते, "वाह-वाह, ख़ाँ साहब, क्या 'पंचम' लगाया है !" और फिर ख़जांची से कहते, "हीरालाल मेहता, ख़ाँ साहब को एक तनख़्वाह 'पंचम' की दी जाय।" हीरालाल मेहता तब 'जो आज्ञा, अन्न-दाता !' कहकर उठ जाते और सुबह ख़ाँ साहब को बुलाकर एक तन-ख़्वाह की रक़म दे देते। इस तरह इन्हें एक महीने में कई-कई तनख़्वाहें मिला करतीं थीं। एक दिन हीरालाल मेहता ने इनसे मज़ाक़ में पूछा, "उस्ताद, कितने स्वर बाक़ी रह गये ? बता दीजिये, ताकि पहले से पैसा तैयार रक्खूँ।" इस पर ख़ाँ साहब बहुत हँसे और बोले, "भाई मेहता जी, यह संगीत तो सागर है। इसमें रोज़ ही नये रत्न मिलते हैं और क़द्रदान हर रोज़ नये रत्न की इच्छा रखते हैं।" यह जीवन भर लूनावड़ा महाराज की सेवा में रहे और वहीं इनका स्वर्गवास भी हुआ।

नज़ीर ख़ाँ

गुलदीन ख़ाँ के एक भाई भी थे जिनका नाम नज़ीर ख़ाँ था। यह मथुरा के प्रसिद्ध संगीताचार्य थे। इन्होंने अमीरबख़्श ख़ाँ गोंदपुरी से जय-पुर में सितार सीखा था और इसका अच्छा अभ्यास करके यह सारे हिन्दु-स्तान में प्रसिद्ध हुए। यह तबीयत के बहुत आज़ाद आदमी थे। इसलिए कहीं नौकर रहना इन्होंने पसन्द नहीं किया। यह अक्सर अलग-अलग रियासतों में जाया करते थे और वहाँ के संगीत-प्रेमियों को प्रसन्न करके पुरस्कार आदि प्राप्त किया करते थे। सन् १८६० में हैदराबाद में इनका स्वर्गवास हुआ।

काले ख़ाँ

काले ख़ाँ गुलदीन ख़ाँ के सुपुत्र थे। इनका जन्म सन् १८६० में मथुरा में ही हुआ था। इन्हें बचपन में पिता से संगीत की शिक्षा मिली और साथ ही हिन्दी और फ़ारसी भी सिखाई गई। फ़ारसी में इनकी

योग्यता 'मुंशी' की थी और हिन्दी के ये अच्छे कवि थे। इन्होंने जिन खयाल, ठुमरी, सरगमों आदि की रचना की है, वे आज तक सुनाई देते हैं। इनका कविता का नाम 'सरस पिया' था। गाने के साथ ही साथ इन्हें सितार बजाने का भी अच्छा ज्ञान था और यह कला इन्हें अपने पिता से मिली थी। एक प्रकार से संगीत का कोई पक्ष इनसे छूटा नहीं था। कविता और अध्ययन का इन्हें इतना शौक़ था कि पचास वर्ष की आयु में एक पण्डित से व्याकरण पढ़ा और अमरकोष रटते रहे। बदले में पण्डित जी इनसे सितार सीखा करते थे। लूनावड़ा के राजा इनके शिष्य थे। उन्होंने इनके लिए सारे आराम के सामान इकट्ठे किये थे। ख़ास तौर से ख़ाँ साहब के लिए फ़ारसी, हिन्दी और संस्कृत के ग्रन्थ दूर-दूर से मँगवाये थे। सन् १६२६ में यह भरतपुर रियासत में एक दिन अचानक ग़ायब हो गये। तब से आज तक इनका कोई पता नहीं चल सका।

गुलाम रसूल खाँ

काले खाँ के सुपुत्र गुलाम रसूल खाँ का जन्म सन् १८६७ में मथुरा में हुआ था। बचपन से पिता ने इन्हें उर्दू और फ़ारसी पढ़ाना शुरू कर दिया था। साथ ही स्कूल में यह अँग्रेज़ी पढ़ते रहे और मैट्रिक तक इनकी शिक्षा हुई। संगीत की शिक्षा तो इनके घराने की चीज थी और इन्होंने ध्रुपद, अस्थायी-खयाल, सरगम, सभी चीज़ें अच्छी तरह सीखीं। इन्हें हारमोनियम बजाने का भी बड़ा शौक़ था और उसका अभ्यास करके यह बहुत ही प्रसिद्ध हुए। एक बार जब यह घूमते हुए बड़ौदा पहुँचे तो महाराज सियाजीराव गायकवाड़ ने इन्हें सुना और प्रसन्न होकर भारतीय संगीत पाठशाला में अध्यापक नियुक्त कर दिया। इन्होंने पाठशाला में तन-मन लगाकर काम किया और उन्नति करते-करते वहाँ के प्रधान अध्यापक हो गये। अब निवृत्त होकर बड़ौदा यूनीवर्सिटी के ललित कला विभाग में संगीत के उस्ताद हैं। आपके बहुत-से शागिर्द संगीत-विशारद होकर संगीतशालाओं में काम कर रहे हैं।

फ़ैयाज़ ख़ाँ

फ़ैयाज़ ख़ाँ गुलाम हुसन के पुत्र थे और मथुरा में पैदा हुए थे। इनके सितार बजाने की प्रशंसा बड़े-बूढ़ों से बहुत सुनी है। विशेषकर कछुआ सितार (बड़ा सितार) बहुत अच्छा बजाते थे। घूमते-घामते जब यह रियासत अलीपुर में पहुँचे तो वहाँ के राजा इनसे बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें अपने दरबार में रख लिया। इनका काल १८७० ईस्वी के आस-पास माना जाता है।

मुन्नन ख़ाँ

मथुरा के ख़ानदानी गवैयों में एक मुन्नन खाँ बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इन्होंने तालीम अपने बुज़ुर्गों से पाई थी और सितार बजाने में बेजोड़ समझे जाते थे। इनकी सितार की शिक्षा जयपुर में उस जमाने में हुई जब महाराज रामसिंह के दरबार में एक से एक अच्छे बड़े-बड़े कलाकार इकट्ठे थे। इससे नये सीखने वालों को बड़ा लाभ होता था। मुन्नन खाँ को बहुत-कुछ विद्या अपने मामा रजब अली ख़ाँ से भी मिली थी। इनका नाम हिन्दुस्तान भर में फैला। एक बार जब यह बंगाल गये तो वहाँ का जलवायु इन्हें बहुत पसन्द आया और यह वहीं रहने लगे। मुर्शिदाबाद के नवाब ने इनसे बहुत प्रसन्न होकर इन्हें अपने दरबार में रख लिया था। ख़ाँ साहब ने अपना बाक़ी सारा जीवन वहीं बिताया और वहीं इनका स्वर्गवास भी हुआ। इन्हें बीन का भी ज्ञान था और अच्छा बजाते थे।

ज़हूर ख़ाँ

मथुरा के घराने में ज़हूर खाँ भी एक प्रसिद्ध गायक हुए हैं। यह अस्थायी-खयाल बहुत अच्छा गाते थे। इनके गाने की प्रशंसा मैंने अपने बुज़ुर्गों से सुनी है। पहले यह नवाब दुजाना के दरबार में रहे, बाद में रियासत जोधपुर में मान मिला और वहाँ के राजा ने इन्हें अपने दरबार में रख लिया। इनका काल अठारहवीं शताब्दी है।

चौबे चुक्खा गणेशी

संगीत के क्षेत्र में मथुरा के दो प्रसिद्ध चौबे चुक्खा और गणेशी भी हुए हैं। ये दोनों भाई-भाई थे और संगीत का शौक़ इन्हें बचपन से ही था। इन्होंने अच्छे से अच्छे गुणी गवैयों से संगीत सीखा और संगीत के बड़े प्रकाण्ड पण्डित हुए। आवाज़ भी इनकी बहुत ही बुलन्द थी और ऐसी आवाज़ें बहुत ही कम सुनाई देती हैं। मैंने स्वयं इनका गाना सन् १९०९ में मथुरा में सुना था। सुना है कि इन्होंने संगीत विद्या पर एक ग्रन्थ भी लिखा था। पर दुर्भाग्य से उसका नाम नहीं पता चल सका। ये लोग संस्कृत के बड़े विद्वान थे। इन्हें नेपाल नरेश ने लगभग एक लाख रुपये नक़द इनाम में दिये थे और कलकत्ते के बंगाली राजा इन्द्रपाल ने भी इनको जवाहरात भेंट किये थे। सन् १९१५ के लगभग इनका स्वर्गवास हुआ।

अन्य प्रसिद्ध गायक

जानी और गुलाम रसूल

ये दोनों सगे भाई थे और लखनऊ के बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के दरबार में नियुक्त थे। अपने ज़माने में यह संगीत की दुनियाँ के चाँद-सूरज माने जाते थे और उन दिनों इनसे बड़ा गवैया भारत भर में न था। इस विषय में एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। क़व्वाल-बच्चे मियाँ शक्कर और मक्खन इन्हीं बुज़ुर्गों के शागिर्द थे। एक बार उन दोनों भाइयों को अपने गाने पर इतना गर्व हुआ कि बादशाह से बोले, "हमारी उस्ताद के साथ बैठकर गाने की इच्छा है।" बादशाह ने इसकी आज्ञा दे दी मगर थोड़ी ही देर बाद दोनों शागिर्द घबरा उठे। गुरु आख़िर गुरु ही थे। बादशाह इस बात से बहुत नाराज़ हुए और मियाँ शक्कर तथा मक्खन को पत्थर की गरम शिला के ऊपर खड़ा होने का दण्ड दिया। जब यह ख़बर जानी और गुलाम रसूल को मिली तो वे बहुत दुखी हुए और फ़ौरन बादशाह के सामने उपस्थित होकर प्रार्थना की कि इन्होंने अपराध हमारा ही किया है, इसलिए हम ही इन्हें दण्ड भी देंगे। यह सुनकर बादशाह ने मियाँ शक्कर और मक्खन को उनके गुरु को सौंप दिया। इन्होंने दोनों शिष्यों से कहा, "तुम हमारे सामने से चले जाओ। हमारी यह बददुआ है कि तुम कोढ़ी हो जाओगे और साथ ही तुम्हारी सन्तान भी कोढ़ी होगी।" गुरु का यह शाप सच्चा होकर रहा और इनके साथ-साथ इनकी सन्तान भी कोढ़ी हुई। इसके बाद इन दोनों ने गुरुओं से क्षमा माँगी तो उन्होंने क्षमा भी कर दिया और कहा कि तुम अपने काम के बादशाह रहोगे। यह बात भी बाद में सच उतरी।

दूल्हे ख़ाँ

यह उन्नीसवीं सदी में लखनऊ में पैदा हुए थे। इनका बहुत ज़्यादा हाल तो मालूम नहीं हो सका, पर बुज़ुर्गों से सुना है कि यह अस्थायी-ख़याल बहुत अच्छा गाते थे। इनकी तान की भी बड़ी तारीफ़ सुनी है। यह अवध के बादशाह के दरबार में नियुक्त थे और सारे अवध में प्रसिद्ध थे। इनके बड़े सुपुत्र थे बाकर खाँ। यह भी अपने पिता के समान ही अस्थायी-ख़याल गाने में बहुत प्रसिद्ध हुए। इनके छोटे भाई अहमद ख़ाँ भी बहुत अच्छा गाते थे। ये दोनों भाई लखनऊ में ही रहे और लखनऊ वालों ने इन्हें सर-आँखों पर रक्खा।

मियाँ शोरी

इनका असली नाम गुलाम नबी था पर प्रसिद्ध यह मियाँ शोरी के नाम से ही हुए। यह क़व्वाल-बच्चों में से थे। बचपन में यह पंजाब में ही रहे, इसलिए पंजाबी बहुत अच्छी बोलते और समझते थे। संगीत के यह बहुत बड़े पण्डित थे और इन्होंने भारतीय संगीत को एक नयी चीज़ दी जिसे टप्पा कहते हैं। टप्पे की विशेषता यह है कि उसका हर बोल फिरत, ज़मज़मा, मुरकी, फन्दा, बल, पेच आदि के साथ अदा होता हुआ चलता है। मियाँ शोरी ने टप्पा ईजाद करके भारतीय संगीत में एक नयी ख़ूबी पैदा की। उनके टप्पे पंजाबी भाषा में हैं। अपनी इस देन के कारण इनका नाम भारतीय संगीत के इतिहास में सदा अमर रहेगा। मगर आजकल टप्पा बहुत कम गाया जाता है क्योंकि इसका गाना बहुत कठिन है।

मुराद अली ख़ाँ

यह अमरोहे के रहने वाले थे। ध्रुपद-होरी, आलाप इनका ख़ानदानी काम था जो इन्हें विरासत में मिला था। अपनी मेहनत और अभ्यास से इन्होंने उसको और भी ऊँचा उठाया। इनके गाने में बड़ा

असर था । यह नवाब मीर महबूब अली ख़ाँ के ज़माने में हैदराबाद दरबार में नियुक्त थे । नवाब फख़रुमुल्क बहादुर के यहाँ से भी इन्हें अलग वेतन मिलता था और नवाब ज़फ़रजंग बहादुर भी इनसे बहुत प्रसन्न थे और इनका बहुत आदर-सत्कार करते थे । यह जीवन भर हैदराबाद ही रहे । इनके छोटे भाई गुलाम सरबर ख़ाँ और भतीजे तुफ़ैल हुसैन ख़ाँ और तसलीम हुसैन ख़ाँ भी बहुत गुणी हुए तथा इनसे दक्षिण के कितने ही संगीत सीखने वालों को लाभ पहुँचा ।

सेंदे ख़ाँ और प्यार ख़ाँ

ये दोनों सगे भाई थे और अलीबख़्श फ़तह अली के शागिर्द थे । ये दोनों ही बहुत अच्छा गाते थे । पर प्यार ख़ाँ ने बड़ी मेहनत की थी और इसलिए वह बहुत ही उच्च कोटि के गायक समझे जाते थे । ये पंजाब और सिन्ध में बहुत प्रसिद्ध हुए । सेंदे ख़ाँ सन् १९१८ में बम्बई चले आये । और सन् १९५० में बम्बई में ही इनका स्वर्गवास हुआ । बम्बई में यह कुछ मस्ती की-सी हालत में ही रहे । प्रोफ़ेसर देवधर ने इनसे बहुत-सी चीजें याद की हैं ।

केशवराव आप्टे

यह बड़े नामी होरी-ध्रुपद गाने वाले थे । मैंने सन् १९१७ में महाराज इन्दौर के दरबार में इनका गाना सुना था । नाना पानसे के शिष्य सखाराम पखावजी इनकी संगत के लिए बैठे थे। उस समय इन्होंने बहुत ही अच्छा गाना गाया था और बहुत इनाम भी इन्हें मिला था । यह जीवन भर इन्दौर दरबार में ही रहे और वहीं इनका स्वर्गवास भी हुआ ।

ख़्वाज़ाबख़्श

यह कासगंज के रहने वाले और दिल्ली में बहादुरशाह ज़फ़र के दरबारी गवैये थे । सितार भी यह बहुत अच्छा बजाते थे । बादशाह

इनसे इतने खुश थे कि लाल क़िले में ही इनके रहने का इन्तज़ाम कर दिया था और इनका खाना भी सरकारी रसोई से ही आता था। सन् १८५७ के बाद यह अपने वतन लौट आये और महाराज मुरसान ने इन्हें अपने यहाँ बुला लिया। बाक़ी जीवन इनका वहीं बीता।

मिट्ठू ख़ाँ

ग्वालियर के पास बुन्देलखण्ड की एक छोटी-सी रियासत दतिया में भी कई एक नामी और अच्छे गवैये हुए हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में वहाँ एक मिट्ठू ख़ाँ नाम के गवैये थे जो महाराज भवानीसिंह के दरबार में नौकर थे। यह ग्वालियर के घराने के ढंग से गाते थे और शायद हस्सू ख़ाँ के शागिर्द भी थे। मैंने बुज़ुर्गों से इनकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। इसी तरह एक गुलाम मुहम्मद ख़ाँ सितारिये भी दतिया में हुए हैं। यह कछुआ (बड़ा सितार) बहुत अच्छा बजाते थे और दरबार में नौकर थे। मैंने इनकी तारीफ़ सैनियों से बहुत सुनी है पर कुछ ज़्यादा हाल मालूम नहीं हो सका। महाराज भवानीसिंह के दरबार में एक प्यार ख़ाँ भी थे जो अपने ज़माने में अच्छे गवैये समझे जाते थे।

अब्दुल करीम ख़ाँ

यह किराना ख़ानदान के बहुत ही प्रसिद्ध गवैये हुए हैं। इन्होंने अपने घराने के कई बुज़ुर्गों से गाना सीखा था। उसके बाद सबसे पहले यह बड़ौदा पहुँचे और वहाँ ख़ूब मेहनत की तथा नाम पैदा किया। यह रियासत में नौकर भी हो गये थे, मगर वहाँ कुछ ही दिन ठहरे और बम्बई चले आये। यहाँ भी इन्होंने मेहनत ज़ारी रखी और साथ ही टिकट लगाकर जलसे करने शुरू किये। ऐसे जलसे यह हर शहर में करते रहे। इसलिये इनका नाम बम्बई से मद्रास तक फैलता चला गया। पर इन्होंने अपने रहने का मुख्य स्थान मिरज में ही बनाया था। कोल्हापुर, धारवाड़, बंगलौर, तंजौर, मैसूर, मद्रास आदि नगरों के अलावा महाराष्ट्र और कर्नाटक के हर छोटे-बड़े शहर में इनके जलसे होते थे। यह

कलकत्ते के एक-दो संगीत सम्मेलनों में गये तो सुननेवालों को पागल बना दिया। इन्होंने ग्रामोफ़ोन कम्पनी के लिए भी गाया और इनके रिकार्ड खूब बिके और आज तक सारे देश में माँग है। विशेषकर 'पिया बिन नाहीं आवत चैन' ठुमरी वाला रिकार्ड, जिसमें हिन्दुस्तानी और कर्नाटक पद्धति का मिश्रण है, बहुत ही लोकप्रिय हुआ। खाँ साहब ने अपनी गायन कला का प्रचार भी खूब किया और अनेक योग्य शिष्य तैयार किये जो हिन्दुस्तान भर में मशहूर हुए। उनमें से कुछेक ये हैं: रामभाऊ 'सवाई गन्धर्व', हीराबाई बड़ौदेकर, सुरेशबाबू माने, शंकरराव सरनायक, विश्वनाथ बुआ जादव, मधुसूदन आचार्य, बालकृष्ण बुआ कपिलेश्वरी आदि। सन् १९३८ में यह पांडीचेरी जा रहे थे। रास्ते में किसी छोटे स्टेशन पर गाड़ी ठहरी तो खाँ साहब उतर पड़े और अपने साथी एक मौलवी साहब से बोले कि दिल बहुत घबराता है। इसके बाद यह प्लेटफार्म पर लेट गये और कलमा पढ़ते-पढ़ते स्वर्ग सिधार गये। मौलवी साहब इनकी लाश को मिरज ले गये और वहाँ यह मीराँ साहब की दरगाह के अहाते के अन्दर दफ़नाये गये।

हीराबाई बड़ौदेकर

हिन्दुस्तान की गायिकाओं में यह भी बहुत प्रसिद्ध हैं। संगीत इन्होंने बचपन से ही अब्दुल करीम खाँ से सीखा था और उनकी गायकी पर बहुत मेहनत की थी। यह बहुत सुरीला गाती हैं और श्रोता इनके संगीत से बहुत सन्तुष्ट होते हैं। कुछ रोज़ इन्होंने बहरे वहीद खाँ से भी शिक्षा पाई थी। यह बड़े-बड़े सम्मेलनों में बुलाई जाती हैं और सन् १९४१ में बनारस की संगीत परिषद ने इन्हें 'संगीत कोकिला' की पदवी दी थी। इनके भाई स्वर्गीय सुरेशबाबू माने भी बड़े अच्छे गायक थे जिनका बहुत ही छोटी उम्र में स्वर्गवास हो गया। इनकी छोटी वहन सरस्वती राने भी बहुत अच्छा गाती हैं।

रजब अली खाँ

यह प्रसिद्ध गायक मुगलू ख़ाँ के सुपुत्र हैं जो कोल्हापुर में दीवान गायकवाड़ के यहाँ नौकर थे। इन्होंने अपने पिता से ही अस्थायी-ख़याल की बहुत-कुछ तालीम हासिल की थी। साथ ही गाने पर ऐसी मेहनत की कि मरते समय तक, नब्बे वर्ष की आयु में भी, बहुत तैयार गाना गाते थे। सारे देश में इनका मान था। यह बीन भी बजाते थे और इसमें यह बन्दे अली ख़ाँ के शागिर्द थे। साथ ही जलतरंग भी ख़ूब बजाते थे और सितार में भी दख़ल था। शुरू में यह भी कोल्हापुर में दीवान साहब के यहाँ रहे। बाद में देवास के राजा इनके शागिर्द हो गए और इन्हें अपने दरबार का गवैया नियुक्त कर लिया। तब से यह अन्त तक देवास में ही रहे, पर सारे भारतवर्ष में इनका नाम था। सन् १९५४ में इन्हें राष्ट्रपति के हाथों संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इनके बहुत-से शागिर्द हैं जो बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। इनके भतीजे अमान अली ख़ाँ बहुत अच्छा गाते थे किन्तु दुर्भाग्यवश जवानी में ही उनकी मृत्यु हो गई। वह भी इन्हीं के शिष्य थे। इनके दूसरे प्रसिद्ध शिष्य गरापतराव देवासकर हैं। इनके अतिरिक्त बहरे बुआ और शंकरराव सरनायक के नाम भी बहुत उल्लेखनीय हैं। कुछ ही दिन पहले इनका देहांत हुआ।

सिद्धेश्वरी बाई और रसूलन बाई

ये दोनों बनारस की रहने वाली हैं। सिद्धेश्वरी बाई के गुरु बड़े रामदास हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध बुज़ुर्ग कलाकारों में से हैं। इन्होंने अपनी शिष्या को बहुत प्रेम से सच्चे दिल से संगीत की शिक्षा दी है। सिद्धेश्वरी बाई सभी संगीत सम्मेलनों में बुलाई जाती हैं और इनका बहुत आदर-सत्कार होता है। अस्थायी-ख़याल, ठुमरी, दादरा, भजन, सभी चीज़ों को यह बहुत मज़े से गाती हैं। आजकल यह बनारस में रहती हैं। रसूलन बाई ख़ास तौर से ठुमरी गाने के लिए प्रसिद्ध हैं, वैसे तो यह सभी

चीज़ें अच्छी गाती हैं। इनका गाना बड़ा सुरीला होता है। इन्हें भी संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

चाँद ख़ाँ

यह प्रसिद्ध सारंगिये मम्मन ख़ाँ के सुपुत्र हैं। इन्होंने शिक्षा अपने पिता और अन्य ख़ानदानी बुज़ुर्गों से ली है। यह अस्थायी-ख़याल, तराना सभी चीज़ें अच्छी गाते हैं और सरगम भी बहुत अच्छी कहते हैं। इन्हें संगीत शास्त्र की बहुत गहरी जानकारी है। यह आजकल दिल्ली में ही रहते हैं। इनके बहुत-से शिष्य हैं जिन्हें यह बड़ी मेहनत से सिखाते हैं।

अन्य प्रसिद्ध वादक

मुहम्मद अली ख़ाँ

यह सैनियों के घराने में से ही थे। सैनियों के घराने की तीन-चार शाखाएँ प्रसिद्ध हुई हैं। इनमें से हर शाखा अपने को तानसेन का वंशज बताती है। मुहम्मद अली ख़ाँ संगीत के बड़े भारी पण्डित थे। इन्हें सैकड़ों अस्थायी-ख़याल याद थे मगर इन्होंने परिश्रम रबाब पर किया था। यह बहुत ही नाज़ुकमिजाज़ व्यक्ति थे, जब जी में आता तो किसी को रबाब सुना देते वर्ना मना कर देते थे। यह उत्तर प्रदेश में बिलसी के नवाब हैदर अली ख़ाँ के यहाँ कई बरस रहे, फिर बाद में बनारस आ बसे। कुछ दिनों बाद बंगाल में गिद्धौर के महाराजा ने इन्हें बुला लिया और जीवन भर यह वहीं रहे।

हाफ़िज़ अली ख़ाँ

यह नन्हें ख़ाँ के सुपुत्र हैं। इनके दादा हक़दाद ख़ाँ काबुल के रहने वाले थे और वही अपने साथ पहले-पहल सरोद काबुल से हिन्दुस्तान लाये। वह स्वयं संगीत के बड़े पण्डित थे। वह हिन्दुस्तान भर में घूमे-फिरे और बहुत नाम पैदा किया। अन्त में आकर वह ग्वालियर दरबार में नियुक्त हो गये। वहाँ उन्होंने बहुत-से शागिर्द तैयार किये और हिन्दुस्तान के तन्तु-वाद्यों में एक और वृद्धि की। हाफ़िज़ अली ख़ाँ इन्हीं के वंशज हैं। इनका भी सारे हिन्दुस्तान में नाम है। यह शुरू से ही महाराज सिंधिया के दरबार में नियुक्त रहे पर साथ ही रामपुर के नवाब की भी इन पर बड़ी कृपा रहती है। इन्होंने संगीत की शिक्षा अपने घराने के अतिरिक्त रामपुर वाले वज़ीर ख़ाँ से भी प्राप्त की है।

यह हिन्दुस्तान के हर संगीत सम्मेलन में बुलाये जाते हैं और इन्होंने प्रिंस आफ़ वेल्स को भी सरोद सुनाकर इनाम हासिल किया था। सन् १९५३ में राष्ट्रपति ने अपने हाथों से इन्हें एक दुशाला, एक हज़ार रुपये की थैली और मानपत्र भेंट किया था। भारत के मौजूदा श्रेष्ठ कलाकारों में इनका स्थान प्रमुख है। आजकल यह दिल्ली के भारतीय कला केन्द्र में हैं। इनके भाई नब्बू ख़ाँ, सुपुत्र मुबारक अली और भतीजे अहमद अली भी अच्छा सरोद बजाते हैं।

सख़ावत हुसैन ख़ाँ

यह सरोद बजाते हैं और मैरिस म्यूज़िक कालेज में शिक्षक हैं। इनकी जन्मभूमि शाहजहाँपुर है। यह योरप भी घूम आये हैं तथा लन्दन में दो साल और फ्रांस में छः महीने रहे हैं। वहाँ भी इन्होंने अपने काम से बहुत नाम पैदा किया। सन् १९३८ में यह योरप से वापस लौटे। यह बड़े ही खुशमिज़ाज, हँसमुख और मिलनसार आदमी हैं। इनके बड़े पुत्र का नाम उमर ख़ाँ है। यह नौजवान हैं और आजकल बहुत अच्छा सरोद बजाते हैं। यह दस साल से आल इण्डिया रेडियो में नियुक्त हैं और मैरिस कालेज में भी थोड़ा-बहुत काम करते हैं। यह भी स्वभाव के बहुत मिलनसार हैं। इलियास ख़ाँ सखावत हुसैन ख़ाँ के छोटे पुत्र हैं और सितार बजाते हैं। हिन्दुस्तान के नौजवान सितारियों में इनकी अच्छी जगह है। सितार इन्होंने अपने पिता से सीखा है और लखनऊ में ही रहते हैं। हिन्दुस्तान की हरेक म्यूज़िक कान्फ्रेंस में इन्हें बुलाया जाता है।

अलाउद्दीन ख़ाँ

यह पूर्वी बंगाल के एक किसान परिवार के हैं। मगर इन्हें बचपन से ही संगीत का शौक़ हुआ। शुरू में यह एक गुसाईंजी के शिष्य हो गये और उनसे सितार सीखा। बाद में अपने शौक़ के कारण यह रामपुर

चले आये और वज़ीर खाँ के शागिर्द हुए। इन्होंने अपने गुरू की बहुत सेवा की और गुरू ने भी बड़े प्रेम से इन्हें सिखाया। धीरे-धीरे इनका नाम फैलता गया। यह देश भर के संगीत के जलसों और सम्मेलनों में गये और लोगों को प्रसन्न किया। उसके बाद महियर के राजा के यहाँ नियुक्त हो गये और तब से वहीं रहते हैं और महियरवाले कहलाते हैं। सरोद बजाने में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। इसके अलावा सितार और वायलिन भी अच्छा बजाते हैं। तबला और पखावज भी इनको खूब याद है। यह बहुत ही लयदार और सुरीले संगीतज्ञ हैं। इनको भारत के राष्ट्रपति ने संगीत का पहला पुरस्कार दिया। इनके शिष्यों में इनके सुपुत्र अली अकबर खाँ और दामाद रविशंकर हैं जो दोनों ही चोटी के कलाकार समझे जाते हैं।

अली अकबर खाँ

यह अलाउद्दीन खाँ के सुपुत्र हैं और ऊँचे दर्ज का सरोद बजाते हैं। इनका हिन्दुस्तान भर में बड़ा नाम है। सन् १६३६ में यह जोधपुर दरबार में नियुक्त थे। वहाँ इनका बहुत आदर-सत्कार हुआ और खूब पुरस्कार आदि भी मिले। बाद में यह बम्बई चले गये। वहाँ फिल्मों में संगीत निर्देशक का भी काम किया। इसके अतिरिक्त संगीत-गोष्ठियों, जलसों, सम्मेलनों आदि में इनके प्रोग्राम हमेशा होते रहते हैं। बम्बई के रसिक इन्हें कभी-कभी जुगलबन्दी के लिये भी बुलाते हैं। जुगलबन्दी का मतलब यह है कि इनको बराबर के किसी सरोदिये, सितारिये या तबलिये के साथ-साथ सुना जाय। इस 'चीज़ को बम्बई में श्री झाव-वाला ने शुरू किया था और अब यह सारे देश में लोकप्रिय हो गई है। आजकल यह कलकत्ते में रहते हैं।

रविशंकर

यह सितार बजाते हैं और अलाउद्दीन खाँ महियरवालों के शिष्य हैं। इनको बहुत अच्छी शिक्षा मिली है और उस पर अपनी मेहनत से

इन्होंने चार चाँद लगा दिये हैं। इनकी एक बड़ी विशेषता यह है कि किसी भी ताल में रुकावट के बिना यह इस तरह बजाते हैं जैसे मामूली त्रिताल या दादरा हो। इनके दोनों हाथ बहुत सुरीले, सुन्दर और लोचदार हैं और तैयारी भी बहुत अच्छी है। यह न सिर्फ़ भारत में बल्कि विदेशों में भी बहुत प्रसिद्ध हुए हैं तथा देश के हर संगीत सम्मेलन में बुलाये जाते हैं। यह कई साल आल इण्डिया रेडियो दिल्ली में वाद्य-वृन्द के निर्देशक और संचालक रहे पर हाल ही में रेडियो इन्होंने छोड़ दिया है। दिल्ली के लोगों में संगीत का शौक़ बढ़ाने में भी इनका बहुत हाथ रहा और यहाँ के रसिकों को राज़ी करके इन्होंने एक संगीत-गोष्ठी (म्यूजिक सर्किल) बनायी थी जिसमें बाहर से दिल्ली रेडियो पर गाने के लिए आने वाले कलाकारों को आमन्त्रित किया जाता था और गाने-बजाने का मौक़ा दिया जाता था। इस काम में इन्हें बहुत सफलता मिली है। यह बम्बई के जलसों में भी साल भर के कई बार बुलाये जाते हैं।

मुश्ताक अली ख़ाँ

यह भी सितार बजाते हैं। यह बहुत अच्छे बुज़ुर्गों के वंशज हैं और इनकी सितार की शिक्षा बहुत अच्छी हुई है। यह कलकत्ते में रहते हैं और वहाँ इनका बहुत नाम है। इसके अतिरिक्त सारे हिन्दुस्तान में भी इनकी ख्याति है और हर संगीत सम्मेलन में बुलाये जाते हैं। इनकी विशेषता यह है कि महफ़िल को प्रसन्न करके ही उठते हैं। कलकत्ते में इन्होंने कई अच्छे शिष्य भी तैयार किये हैं जो बहुत अच्छा बजाते हैं।

अब्दुल गनी ख़ाँ

यह सितार बजाते थे और इस काम में बहुत ही बेजोड़ थे। इनका सम्बन्ध कालपी घराने से था। अपने भतीजे के स्वर्गवास के बाद यह खजूरगाँव में नौकर हो गये। जब राणा शंकरबख़्श सिंह बहादुर के बाद उनके पुत्र शिवराज सिंह बहादुर गद्दी पर बैठे तो उन्होंने ख़ाँ साहब को

अपने दरबार में नियुक्त किया। उसके बाद राजा उमानाथ सिंह बहादुर ने इनकी पेंशन कर दी और जागीर भी बदस्तूर बनी रही। इनके भाई मुरव्वत ख़ाँ भी बहुत अच्छा सितार और हारमोनियम बजाते थे। यह रचना भी करते थे और इन्होंने ठुमरियाँ तथा सादरे ख़ूब अच्छे बनाये हैं। सन् १९३५ से मुरव्वत ख़ाँ राजा चन्द्रचूड़ सिंह बहादुर चन्दापुर वालों के यहाँ हैं जहाँ से इन्हें जागीर मिली हुई है। यह राजा साहब के उस्ताद भी हैं।

इमदाद ख़ाँ

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा नगर में हुआ था। यह सितार बजाते थे। इन्होंने शिक्षा अच्छे गुणी लोगों से पाई थी और मेहनत ऐसी ज़बरदस्त की थी जैसी बहुत कम लोग करते हैं। इनकी मेहनत की एक घटना इस तरह कही जाती है कि इन्होंने अपने रियाज़ के लिए कुछ घण्टे नियत कर रक्खे थे जिसमें कोई दूसरा काम नहीं करते थे। एक बार इनकी पुत्री बहुत बीमार हुई। यहाँ तक कि एक रोज़ उसकी हालत बहुत ख़राब हो गई। घर के लोगों ने इनसे आकर कहा कि बच्ची की हालत अच्छी नहीं है। उस समय यह रियाज़ कर रहे थे। सुनकर यह बोले, "डाक्टर को बुला लो।" और इतना कहकर फिर रियाज़ में लग गये। थोड़ी देर बाद इन्हें ख़बर दी गई कि बच्ची की मृत्यु हो गई तो बोले, "कुछ पलटे अभी और रह गये हैं। तब तक कफ़न का इन्तज़ाम कर लो।" तीसरी बार जब इनसे कहा गया कि कफ़न का इन्तज़ाम भी हो गया है, अब जनाज़े में शरीक हो लीजिए। उस वक्त तक इनकी मेहनत के घण्टे पूरे हो चुके थे, इसलिए यह उठ खड़े हुए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह बिलकुल सुध-बुध भूलकर रियाज़ में लगे रहते थे। इसी मेहनत का यह फल था कि इनके ज़माने में सितार में इनकी टक्कर का कोई व्यक्ति न था। यह बड़े-बड़े रईसों के यहाँ जाते और आदर पाते थे। मैसूर-नरेश ने भी इन्हें युवराज के

विवाह के अवसर पर बुलाया था और प्रसन्न होकर बहुत इनाम दिया था। बाद में यह इन्दौर में महाराजा तुकोजीराव के दरबार में नियुक्त हो गए और दस बरस की नौकरी के बाद वहीं इनका स्वर्गवास हुआ। इन्होंने बहुत-से शागिर्द तैयार किये मगर उन सबमें ज़्यादा नाम दिल्ली वाले मम्मन ख़ाँ सारंगिये का हुआ जिन्होंने अपनी सारंगी में भी झाले की तरकीब निकाली थी। इसके लिए उन्होंने एक ख़ास क़िस्म की बड़ी सारंगी बनवाई थी और उस पर अपने गुरु से सीखी हुई तरकीबें और झाला वगैरह अदा करते थे। इस तरह सारे हिन्दुस्तान में इनका भी नाम हुआ था। इमदाद ख़ाँ के दो बेटे थे, इनायत ख़ाँ और वहीद ख़ाँ, जो दोनों ही सितार बजाने में लाजवाब हुए।

इनायत ख़ाँ

यह इमदाद ख़ाँ के पुत्र थे। सितार की शिक्षा अपने पिता से ही इन्हें पूरी-पूरी मिली। अपने पिता की तरह ही इन्होंने भी जी तोड़कर मेहनत की जिसके फलस्वरूप यह भी उतने ही प्रसिद्ध और अद्वितीय सितारिये हुए। इनका बजाना जो भी सुनता झूमने लग जाता था क्योंकि इनके बजाने में जितनी तैयारी थी उतना ही दिल पर असर करने वाले स्वर का काम भी। लय के तो यह बादशाह थे। बंगाल के बहुत-से राजा और रईस इनके शागिर्द हुए और इनसे यह विद्या सीखी। विशेष कर गौरीपुर के महाराजा ने अपने पास बरसों इनको रखा और इनसे सितार सीखा। यह अपने पिता के साथ ही इन्दौर आये और वहीं दरबार में नियुक्त हुए। उसके बाद यह जीवन भर इन्दौर ही रहे। इनके ज़माने में ऐसा सितार बजाने वाला कोई न था। इनके भाई वहीद ख़ाँ को भी पिता से ही तालीम मिली थी। वह भी कलकत्ते, बम्बई, मद्रास आदि नगरों और बड़े-बड़े राज्यों में गये और अपनी कला से संगीत रसिकों को प्रसन्न किया। इनके सुपुत्र ख़ान मस्ताना ने

फ़िल्मी दुनिया में अच्छा नाम पैदा किया है । वह स्वयं गाते भी हैं और संगीत निर्देशक भी हैं ।

विलायत ख़ाँ

यह इनायत ख़ाँ के सुपुत्र हैं । संगीत की शिक्षा इन्हें अपने पिता से ही मिली, पर उनसे यह बहुत ज़्यादा न सीख सके और इनके बचपन में ही उनका स्वर्गवास हो गया । मगर इन्होंने ख़ुद बहुत मेहनत की है और इस समय हिन्दुस्तान भर में इनका सितार प्रसिद्ध है । हर सम्मेलन, गोष्ठी और जलसे में इनकी माँग होती है । कलकत्ते के बहुत-से बंगाली ज़मींदार, रईस और राजा इनके शागिर्द हैं और इनसे बहुत प्रसन्न हैं । यह भारत के बड़े-बड़े शहरों में तो जाते ही रहते हैं, साथ ही अफ्रीका और चीन में भी अपने फ़न का सिक्का जमा आये हैं । चीन वालों ने जब इनका सितार सुना तो वे उस पर एकदम रीझ गये । विलायत ख़ाँ अपने छोटे भाई इमरत ख़ाँ को भी अच्छी शिक्षा दे रहे हैं और वह मेहनत भी ख़ूब कर रहे हैं । आजकल वह महफ़िल में बजाने लगे हैं और यह आशा है कि आगे चलकर अच्छे कलाकार होंगे ।

वहीद ख़ाँ

इनके बुज़ुर्ग आगरे के रहने वाले थे । इन्होंने अपने घराने में और बन्दे अली ख़ाँ से बीनकारी सीखी तथा नाम पैदा किया । यह महाराज शिवाजीराव होल्कर के दरबार में इन्दौर में पहले-पहल नियुक्त हुए । उनके बाद महाराज तुकोजीराव ने भी इनका बड़ा आदर-सत्कार किया और इन्हें अपना गुरू भी बनाया । दरबार के विद्वानों में इनका पहला स्थान था । इसके सुपुत्र मजीद ख़ाँ ने बम्बई में आकर संगीतशाला खोली और बहुत-से शिष्यों को संगीत सिखाया । इसलिए बम्बई राज्य में इनका बहुत नाम है । उनके दूसरे पुत्र लतीफ़ ख़ाँ भी बहुत अच्छे बीनकार थे जिन्हें बहुत-से राजा-महाराजा बहुत शौक़ से बुलाते और

सुनते थे। महाराज तुकोजीराव ने इन्हें भी दरबारी गवैयों में जगह दी थी। इनके तीसरे पुत्र सज्जन ख़ाँ सितार बहुत अच्छा बजाते थे।

मुराद ख़ाँ

इनका जन्म जाबरे में हुआ था और यह बन्दे अली ख़ाँ के शागिर्द थे। इनमें गुरू का रंग अधिक से अधिक आया था। बीनकारी में इनका कोई जोड़ न था और जो भी इन्हें सुनता वह बेचैन हो जाता था। यह महाराष्ट्र, बम्बई, पूना की तरफ ज़्यादा रहे, इसलिए उस ओर ही इनका अधिक नाम हुआ। वहाँ इनके कई शिष्य भी तैयार हुए। इनके एक शिष्य कोल्हापुरे बड़ौदा दरबार में नियुक्त हुए थे। इनके लड़के निसार हुसैन ख़ाँ सितार बहुत अच्छा बजाते थे पर उनका बहुत कम उम्र में इनके सामने ही स्वर्गवास हो गया। इनका देहान्त सन् १९३० के लगभग हुआ।

अब्दुल हलीम ख़ाँ

यह इन्दौर के प्रसिद्ध सितारिये जाफ़र ख़ाँ के सुपुत्र हैं जो बाद में बम्बई आकर रहने लगे थे। मालवे के प्रसिद्ध बीनकार मुनव्वर ख़ाँ इनके दादा थे जो बन्दे अली ख़ाँ के शागिर्द थे। अब्दुल हलीम बचपन से ही बम्बई में रहे और अपने पिता से ही इन्होंने सितार सीखी। इन्होंने मेहनत भी बहुत अच्छी की और अब बम्बई में जगह-जगह इनके जलसे होने लगे हैं और इनका नाम हिन्दुस्तान भर में फैल गया है। हर कांफ्रेंस में यह बुलाए जाते हैं और जवान सितारियों इनका नाम बहुत ऊँचा है। यह बम्बई में ही रहते हैं जहाँ आम जनता के अलावा फ़िल्मी दुनिया में भी इनका बहुत नाम हैं।

बदल ख़ाँ

यह हैदरबख़्श ख़ाँ के पुत्र थे। इन्होंने सारंगी अपने पिता से ही सीखी और उसमें वहुत ख़ूबियाँ पैदा कीं। हिन्दुस्तान भर के सारंगी

बजाने वाले इनके पैर चूमते थे। यह आगरे में ही रहते थे जहाँ इन्होंने मकान बनवा लिया था। बाद में कलकत्ते के शौक़ीन रईसों ने इन्हें वहाँ बुलाया और इनके शागिर्द हुए। तब से यह कलकत्ते में ही ज़्यादा रहने लगे। इनके शिष्यों में गिरिजाशंकर और चैटर्जी बाबू प्रसिद्ध हैं। सन् १९३३ में आगरे में इनका स्वर्गवास हुआ। इनके सुपुत्र बच्चू ख़ाँ आगरे में ही रहते हैं और अच्छी सारंगी बजाते हैं।

रहमानबख़्श

यह किराना खानदान के बड़े ही प्रवीण सारंगी बजाने वाले थे। यह जयपुर में नौकर थे और वहाँ के सभी कलाकार इनका बड़ा आदर करते थे। सारंगी पर यह सिर्फ़ जोड़ यानी आलाप बजाया करते थे और इसमें राग-रागिनियों का बहुत अच्छा स्वरूप दिखाते थे और बढ़त भी बहुत अच्छी करते थे। सारे भारत में इनका मान हुआ। सारंगी-वादन इनकी वंश परम्परा में ही था तथा इनसे शिष्य भी बहुत-से तैयार हुए। इनके बड़े पुत्र मजीद ख़ाँ और छोटे हमीद ख़ाँ भी बहुत अच्छी सारंगी बजाते थे मगर बाद में दोनों ने सारंगी छोड़ दी और गाना शुरू किया। गाने पर इन्होंने इतनी मेहनत की कि सारे भारतवर्ष में नाम हुआ। इन दोनों ने अपना गाना पहले पहल जयपुर में गवैयों को सुनाया। बाद में उनसे प्रशंसा पाकर भारत का दौरा भी किया। ये लोग बिहार और बंगाल में ज़्यादा घूमे और पूर्णिया दरबार में मजीद ख़ाँ तथा उनके चचेरे भाई अब्दुल हक़ नौकर भी हुए और जीवन भर वहीं रहे।

बुन्दू ख़ाँ

यह मम्मन ख़ाँ दिल्ली वालों के शिष्य और भानजे थे। यह भारत के बहुत ही प्रसिद्ध सारंगिये थे। यह इन्दौर, पटियाला, नाभा, संगरूर आदि राज्यों के दरबार में नियुक्त रहे। हिन्दुस्तान के विभाजन के बाद

यह पाकिस्तान चले गए और वहाँ रेडियो में नियुक्त हुए। कुछ ही दिन पहले इनका देहान्त हो गया। इनके शिष्य मजीद खाँ बम्बई में बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके अलावा भी इनके बहुत से शिष्य हैं।

अज़ीमबख़्श

यह चुन्धे अज़ीमबख़्श के नाम से मशहूर हुए। इन्होंने अपने बुज़ुर्गों से सारंगी सीखी थी और मेहनत करके उसमें बहुत उन्नति की थी। इनके हाथ बहुत ही सुरीले और मीठे थे और तैयारी ने इनके काम को और भी चमका दिया था। मैंने इनका बजाना सुना है। यह मेरठ के रहने वाले थे और जीवन भर वहीं रहे।

अहमद जान थिरकवा

यह प्रसिद्ध तबलिए हैं। इनका 'थिरकवा' नाम इनके उस्ताद मुनीर ख़ाँ ने रक्खा था क्योंकि यह बचपन से ही बहुत चुलबुले थे। अब तो यह इसी नाम से सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गये हैं। तबला बजाने वालों में इनकी टक्कर का आज कोई दूसरा नहीं है। इनके उस्ताद ने इन्हें बहुत अच्छा तबला सिखाया है, साथ ही इन्हें सब घरानों की शिक्षा दी है जिसमें इन्होंने ख़ूब मेहनत करके सारे भारत में नाम पैदा किया है। सन् १९५४ में इन्हें राष्ट्रपति के हाथों संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। तबला बजाने वालों में यह पहले कलाकार हैं जिन्हें ऐसा सम्मान मिला। यह बहुत दिनों से रामपुर के नवाब के यहाँ दरबारी संगीतज्ञ हैं। नवाब साहब इन्हें बहुत चाहते हैं और इनकी बड़ी इज़्ज़त करते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जितना अच्छा यह 'सोलो' बजाते हैं, उतना ही अच्छा गवैयों की संगत भी करते हैं। इनकी संगत सुनकर तो महफ़िल फड़क जाती है। मेरे साथ इन्होंने बचपन से बजाया है और मुझे भी इनके साथ गाने में बहुत मज़ा आता है। इनके शागिर्द भी बहुत हैं। अपने भाई मुहम्मद जान

को भी इन्होंने अच्छा तैयार किया है जो इस समय दिल्ली रेडियो में काम करते हैं।

कण्ठे महाराज

मौजूदा ज़माने में बनारस के तबलावादकों में यह सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं और बड़े बुज़ुर्ग माने जाते हैं। इन्हें बड़े-बड़े सम्मेलनों में बुलाया जाता है। आजकल यह बनारस में ही रहते हैं। इनके सुपुत्र किशन महाराज नौजवान तबलियों में मशहूर हैं। इसके अतिरिक्त शामताप्रसाद उर्फ़ गुदई महाराज तथा अनोखेलाल आदि दूसरे तबलिये भी इन्हें अपना गुरू मानते हैं।

आबिद हुसैन ख़ाँ

इनके पिता का नाम नहीं मालूम हो सका। यह दिल्ली के रहने वाले थे मगर रोज़गार के सिलसिले में पूरब चले गए थे। वहाँ इन्होंने इतना असर पैदा किया कि आज पूरब के सभी मशहूर तबलिये इन्हीं के ढंग का बाज बजाते हैं जो 'पूरब के बाज' के नाम से मशहूर हो गया है। इन्होंने अपने भतीजे हामिद हुसैन ख़ाँ को भी अच्छी तालीम दी है। पूरब के सारे तबलिये इन्हें अपना गुरू मानते हैं। आजकल यह लखनऊ में रहते हैं।

नत्थू ख़ाँ

यह भारत के एक ऐसे प्रसिद्ध तबलिये हुए हैं जिन्हें सभी बड़े गवैयों ने माना है। यह बोलीबख़्श ख़ाँ के सुपुत्र और काले ख़ाँ के भतीजे थे। यह सारे देश में तबले के प्रोग्राम देते थे और बड़े-बड़े सम्मेलनों में जाया करते थे। महाराज बड़ौदा ने भी इन्हें सुना था और इतने प्रसन्न हुए थे कि इन्हें दरबार में नियुक्त करना चाहते थे। पर यह बड़ी आज़ाद तबीयत के आदमी थे, इसलिये कहीं नौकरी करने से इन्होंने इंकार कर दिया। इनके बहुत-से शागिर्द अब भी मौजूद हैं और बड़े-

बड़े तबलिये सम्मेलनों में इनका नाम लेते हैं। इनका स्वर्गवास दिल्ली में हुआ।

बिसमिल्लाह ख़ाँ

यह बनारस के रहने वाले हैं और प्रसिद्ध शहनाई-वादक हैं। शहनाई इन्होंने अपने मामा विलायत ख़ाँ से सीखी और अपने परिश्रम से बहुत ऊँचा दर्जा हासिल किया। उसके पहले शहनाई शादी-विवाह के मौक़े पर घर के बाहर ही बजाई जाती थी। ऐसे वाद्य को इन्होंने अपनी मेहनत और अभ्यास से ऐसे कमाल पर पहुँचा दिया कि लोग अब संगीत के बड़े-बड़े जलसों में बड़े शौक़ से इन्हें सुनते हैं। आजकल इनकी इतनी माँग है कि इन्हें दिन-रात फ़ुरसत नहीं मिलती और हर शहर में सम्मेलनों तथा अन्य अवसरों पर इन्हें बुलाया जाता है। इनकी शहनाई के रिकार्ड भी बहुत बिकते हैं और फिल्मों में भी इन्होंने शहनाई बजाई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसा लोकप्रिय शहनाई बजाने वाला कोई दूसरा आज तक नहीं हुआ। इन्हें संगीत नाटक अकादेमी का पुरस्कार भी मिला है तथा आशा है कि यह अभी बहुत कुछ हासिल करेंगे।

स्वरलिपियाँ

१–राग दरबारीकान्हड़ा–झूमरा (विलंबित)

रचयिता स्व० जहूर खाँ खुर्जेवाले, 'रामदास जी'

स्थायी

सारे	(रे) नि़सा–नि़	रे––सा	(म) ग	–	रेसा	(नि़) ध़	–	नि़
गऽ	रऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽ	ऽ	बन	की	ऽ	ऽ
						×		

–	प़	(म़) म़प़	(प़) प़	सा	–	(सारेसा) गगरेरेसानि़सा	(सा) रेरे	(म) ग	–	–
ऽ	ऽ	ऽऽ	जि	ये	ऽ,	ऽऽऽऽऽऽऽ	गुन	को	ऽ	ऽ

रेसा	रे	ग	सा,	सा	(नि़) सा	रेरेसानि़सा–	नि़सारे,रेसा
धन	को	ऽ	ऽ,	औ	र	जोऽऽऽऽऽ	ऽऽऽ,बन

(नि़) ध़	–	नि़	प़,	म़	(प़) प़	(नि़) ध़	(सा) नि़	सा	सा	(नि़) सा,	रेनि़सा
को	ऽ	ऽ	ऽ,	ये	ऽ	सौं	ऽ	ऽ	प	त,	ऽऽऽ

(सा) रेरे	(म) ग	–	रेसा	रे	ग	सा
सब	है	ऽ	दिन	चा	ऽ	र

अन्तरा

निं सां | नि सांरें सां नि
म प धु - नि | सां - सां सां, गंगंरें,रेंसांनिसां सां
रा म दा ऽ ऽ | ऽ ऽ स की, माऽऽ,ऽऽऽऽ न
×

नि
निसांरें रें सां - निसांरें,रेंसां धु - नि प, म प
मऽऽ नो ऽ ऽ ऽऽऽ,हऽ र ऽ ऽ ऽ, ए क

म प प नि म मप म
,प सां - नि प, म प प निनिपमपनि ग
,स में ऽ न हीं, बा ऽ र ऽऽऽऽऽऽ बा ऽ

रेंसा रे ग सा ||
ऽऽ ऽ ऽ र ||

२–राग भैरव–त्रिताल (विलंबित)

स्थायी

नि॒ ग
नि॒सारे॒सा ध॒ – नि॒सा | रे॒ – सा, सा रे॒ ग म
मेऽऽऽ री ऽ सुध | ली ऽ जो, सा हे ब ऽ
×

ग नि
गमपमगम रे॒ – सा, म निध॒ सां निसां ध॒ – प,
प्रऽऽऽऽऽ बी ऽ न, ऽ पीऽ ऽ ऽऽ र ऽ ऽ,

ग रे॒ रे॒ ग
प म ग म रे॒ – ग, म, प रे॒ – सा ||
मो है ऽ ऽ यू ऽ ऽ, ऽ, दी ऽ ऽ न ||

अन्तरा

नि नि ध॒ नि नि नि
म गम ध॒ ध॒ | सां सां निसां सां, ध॒ ध॒ नि
रा ऽऽ म दा | ऽ स ऽऽ को, आ ऽ स
×

सां	गं रें	-	सां	निसां	नि ध	-	प,	मं	पं गं	मं	गं रें	-
ते	हा	ऽ	ऽ	ऽऽ	री	ऽ	ऽ,	तू	ऽ	ऽ	दा	ऽ

सां,	रें	निसां	नि ध	-	प,	ग म	निध	सां	नि ध,	प,	म,
ऽ,	ता	ऽऽ	र	ऽ	ऽ,	हों	आऽ	ऽ	ऽ,	ऽ,	ऽ,

प,	म	प ग	ग रे	-	सा ‖
ऽ,	धी	ऽ	ऽ	ऽ	न ‖

३–राग तोड़ी–एकताल (मध्यलय)

स्थायी

					म॑	ध॒					
ध॒	सां	नि	ध॒	प	प	म॑	–	–	ध॒	नि	ध॒
नि	प	ट	न	ट	क	ठो	ऽ	ऽ	री	ऽ	ऽ
०		३		४		×		०		२	

ध॒								रें॒	नि	ध॒	म॑
सां	–	–	–	–	–	(सांनि)	रें॒	नि	ध॒	म॑	ग॒
रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	(श्याऽ)	ऽ	म	सु	द	र
०		३		४		×		०		२	

ग॒		नि़								ध॒	
रे॒	सा	सा	रे॒	ग॒	म॑	ध॒	नि	सां	रें॒	नि	ध॒
तु	म	ह	म	तें	क	र	त	नि	ठु	रा	इ
०		३		४		×		०		२	

अन्तरा

						नि		नि			
म॑	–	ध॒	नि	सां	सां	सां	–	ध॒	नि	सां	रें॒
रा	ऽ	म	दा	ऽ	स	की	ऽ	ए	क	हूँ	ना
×		०		२		०		३		४	

निसां	रेंसां	नि	ध	ध	गं	गं	रेंगं	नि	ध	ध	मं
मा ऽ	ऽऽ	न	त	अं	ऽ	ग	अं	ऽ	ग	तो	हे
×		०		२		०		३		४	

ध	नि	सां	रें	नि	ध
दे	ऽ	त	बु	रा	ई
×		०		२	

१-राग धानी-त्रिताल

[रचयिता काले खाँ मथुरा वाले]

स्थायी

प	म	नि	प	सां	नि	प	म	ग	रे	नि़	सा	ग	–	–	म
मो	रे	स	र	से	ढ	र	क	ग	ई	ग	ग	री	ऽ	ऽ	स
२				०				३				×			
प	ग	–	म	प	–	म	–	प	नि	–	नि	नि	–	सां	सां
र	स	ऽ	स	खी	ऽ	ऐ	ऽ	सो	छै	ऽ	ल	गै	ऽ	ल	सां
२				०				३				×			
–	सां	नि	–	सां	–	नि	सां	रें	रें	सां	सां	नि	प	म	ध
ऽ	हिं	आ	ऽ	डो	ऽ	घे	रे	घे	रे	झ	क	झो	री	रो	के
२				०				३				×			
ग	–	सा	–	नि़	सा	ग	म	प	प	नि	प	–	ग	–	सा
टो	ऽ	के	ऽ	का	हु	को	ये	जा	ने	ना	पे	ऽ	मा	ऽ	ने
२				०				३				×			

अन्तरा

प	प	प	प	प	म	ग	म	प	नि	नि	नि	–	सां	सां	–
ज	ल	ज	म	ना	ऽ	भ	र	न	ग	ई	धा	ऽ	म	सों	ऽ
×				२				०				३			

सां	नि	सां	रें	सां	नि	प	म	नि	नि	प	म	ग	ग	–	सा
बी	ऽ	च	ड	ग	र	ठ	रो	न	ट	व	र	अ	रे	ऽ	ल
×				२				०				३			
सा	रे	नि़	सा	रे	ग	रे	म	प	नि	प	म	नि	सां	–	रें
ब	र	जो	री	क	र	त	दे	ख	त	स	र	स	ना	ऽ	र
×				२				०				३			
नि	सां	नि	प												
स	ग	री	ऽ	मोरे सर से											
×															

सां	गं	रें	मं	गं	रें	सां	सां	प	ध	ग	म	ग	रे	सा	सा
ब्रि	ज	की	भू	ऽ	मि	प	र	स	र	स	ज	न	म	ली	नो
०				३				×				२			
सा	सा	म	ग	प	प	नि	निं	सां	नि	प	म	ग	रे	सा	नि़
का	लि	दे	में	ना	थो	तु	म	ना	ग	सो	प्रा	ऽ	नी	बं	सी
०				३				×				२			

४—राग परज—त्रिताल

स्थायी

			ध नि
			मु र
सां रें नि सां	नि ध प ध	मं – ध नि	– सां नि सां
ली ब जा य	मे रो म न	मो ऽ ह ले	ऽ त म न
०	३	×	२
नि ध प ध	प मं प –	ग म ग –	– – रे सा
मो ऽ ह न	ब्रि ज को ऽ	र सि या ऽ	ऽ ऽ ऽ ऽ
०	३	×	२
– सा नि़ रे	ग – मं ध	सां नि सां रें	नि सां, ध नि
ऽ जा त ह	ती ऽ मैं तो	ब्र ज की ग	लि यां, मु र
०	३	×	२

अन्तरा

– ध मं ध	सां सां सां सां	सां रें सां सां	सां नि सां रें
ऽ दे खी स	र स सां व	री सू र त	ल ल च र
३	×	२	०

चतुरंग राग यमन—एकताल

[रचयिता—अदितराम जूनागढ़ वाले]

स्थायी

								मं	प	ध	प
								म	प	ध	प
								३		४	
ध	–	प	–	ग	रे	सा	सा	मं	प	ध	प
ध	–	प	–	सु	र	सु	ध	म	प	ध	प
×		०		२		०		३		४	
नि	ध	प	–	ग	रे	सा	सा	मं	प	ध	नि
नि	ध	प	म	सु	र	सु	ध	म	प	ध	नि
×		०		२		०		३		४	
सां	नि	ध	प	मं	ग	रे	सा	मं	प	ध	प
सां	नि	ध	प	सु	र	सु	ध	म	प	ध	प
×		०		२		०		३		४	
सां	नि	ध	प	मं	ग	रे	सा	मं	प	धनि	सांरें
सां	नि	ध	प	सु	र	सु	ध	म	प	धनि	सांरें
×		०		२		०		३		४	

सां	नि	ध	प	म॑	ग	रे	सा	मप	धनि	सांरें	गंरें
सां	नि	ध	प	सु	र	सु	ध	मप	धनि	सांरें	गंरें
×		०		२		०		३		४	

सां	नि	ध	प	म॑	ग	रे	सा	म॑	प	ध	प
सां	नि	ध	प	सु	र	सु	ध	म	प	ध	प
×		०		२		०		३		४	

ध	-	म॑	प	ध	प	ध	-	म॑	प	ध	प
ध	-	म	प	ध	प	ध	-	म	प	ध	प
×		०		२		०		३		४	

ध	-	प	म॑	ग	रे	सा	सा
ध	-	प	-	सु	र	सु	ध
×		०		२		०	

अन्तरा

नि़	-	रे	नि़रे
गा	ऽ	ये	गाऽ
३		४	

गम॑	प-	रे	ग	रे	सानि़	रे	सा	ग	-	रे	रेग
ऽऽ	येऽ	गु	नी	सु	च्छ	ऽ	म	गा	ऽ	ये	गाऽ
×		०		२		०		३		४	

मंप	प-	रे	ग	रे	सानि़	रे	सा	प	-	मं	ध
SS	येS	गु	नी	सु	च्छS	S	म	गा	S	ये	गा
×		०		२		०		३		४	

मं	प	रे	ग	रे	सानि़	रे	सा	सां	-	निध	नि
S	ये	गु	नी	सु	च्छS	S	म	गा	S	येS	गा
×		०		२		०		३		४	

-	प	रे	ग	रे	सानि़	रे	सा	सा	नि़	ध़	नि़
S	ये	गु	नी	सु	च्छS	S	म	सु	र	न	को
×		०		२		०		३		४	

रे	रे	रेग	मंप	प	रे	-	सा	मंप	धप	मंप	धप
S	भ	रीइ	SS	ली	हो	S	री	मंप	धप	मंप	धप
×		०		२		०		३		४	

ध	-	मंप	धप	मंप	धप	ध	-	मंप	धप	मंप	धप
ध	-	मंप	धप	मंप	धप	ध	-	मंप	धप	मंप	धप
×		०		२		०		३		४	

ध	-	प	मं	ग	रे	सा	सा	मं	प	ध	प
ध	S	प	S	सु	र	सु	ध	मं	प	ध	प
×		०		२		०		३		४	

संचारी

मंग	गग	मंमं	धध	मंमं	धध	सां	सां	नि	रें	सां	सां
तोम	दिर	दिर	तोम	दिर	दिर	त	न	न	त	न	न
×		०		२		०		३		४	
नि	रें	गं	रें	–	सां	नि	–	ध	मं	प	–
च	तु	ऽ	रं	ऽ	ग	गा	ऽ	ये	गु	नि	ऽ
×		०		२		०		३		४	
गं–	रेंरें	सांसां	निनि	सांसां	सांसां	नि–	ध–	धनि	-ध	मंमं	पप
धाऽ	किट	तक	धुम	किट	तक	धेऽ	त्ताऽ	कड़ा	ऽन	तिर	किट
×		०		२		०		३		४	
ग	–	मंमं	मंमं	प	रेरे	रेरे	सा	मं	प	मंप	धप
धा	ऽ	तिर	किट	धा	तिर	किट	धा	म	प	मप	धप
×		०		२		०		३		४	
ध	–	मं	प	मंप	धप	ध	–	मं	प	मंप	धप
ध	ऽ	म	प	मप	धप	ध	ऽ	म	प	मप	धप
×		०		२		०		३		४	

आभोग

मं	ग	मं	प	मं	प	सां	–	नि	रें	सां	सां
ना	ऽ	द	भे	ऽ	द	खो	ऽ	ऽ	ज	ऽ	त
×		०		२		०		३		४	

नि	रें	गं	रें	सां	सां	नि	–	ध	प	मं	प
आ	दि	त	रा	ऽ	म	पा	ऽ	यो	श्री	ऽ	ज
×		०		२		०		३		४	

ग	ग	रे	ग	मंध	मंप	रे	ग	रे	सा	नि़	ध़
प	ती	ऽ	ते	पऽ	रऽ	शा	ऽ	द	गा	य	क
×		०		२		०		३		४	

नि़	रे	रे	रेग	मंध	पमं	गरे	साऽ	मं	प	ध	प
हो	ऽ	क	रीई	ऽऽ	लीऽ	योऽ	ऽऽ	म	प	ध	प
×		०		२		०		३		४	

१-राग शुक्ल बिलावल-झपताल

[रचयिता—फैयाज हुसैन खाँ आगरे वाले]

स्थायी

ग	ग	म	-	ऩि	ध	प	ग	प	म
स	र	स	ऽ	बु	ध	ऽ	ते	ऽ	री
×		२			०		३		
ग	रे	ग	-	सा	सा	ग	प	म	-
ध	न	ध	ऽ	न	ध्या	ऽ	ऽ	रे	ऽ
×		२			०		३		
ऩि	सा	ग	-	म	प	ध	नि	सां	रें
ना	ऽ	ही	ऽ	छु	पो	ऽ	क	ऽ	र
×		२			०		३		
सां	-	ध	-	म	प	ध	नि	सां	ग
जो	ऽ	रूँ	ऽ	ति	हा	ऽ	रे	ऽ	ऽ
×		२			०		३		

अन्तरा

ग	म	प	नि	नि	सां	सां	सां	-	सां
क	ब	हुँ	द	र	श	दि	खा	ऽ	त
×		२			०		३		

नि	नि	सां	रें	सां	नि	ध	प	नि	नि
क	ब	हुँ	अं	ग	से	ल	गा	ऽ	त
ग	म	ग	–	म	प	ध	नि	सां	रें
क	ब	हुँ	ऽ	नै	ना	मि	ला	ऽ	त
सां	नि	ध	–	म	प	ध	नि	सां	ग
क	ब	हुँ	ऽ	नि	या	ऽ	रे	ऽ	ऽ

२-राग सावनी-झपताल

स्थायी

सा	ग	म	प	सां	प	म	ग	–	सा
जा	ऽ	ने	ऽ	अ	क	ल	स	ऽ	ब
×		२			०		३		

नि़	सा	ग	–	म	ग	–	सा	–	सा
औ	ऽ	र	ऽ	बे	अ	ऽ	क	ऽ	ल
×		२			०		३		

नि़	–	सा	–	सा	सा	–	प़	–	–
आ	ऽ	प	ऽ	भ	यो	ऽ	है	ऽ	ऽ
×		२			०		३		

सा़	सा	ग	–	म	प	प	नि	सां	मं
अ	प	नी	ऽ	क	ह	त	औ	ऽ	र
×		२			०		३		

गं	सां	सां	प	सां	प	म	ग	–	सा
का	हु	की	ऽ	न	मा	ऽ	ऽ	ऽ	ने
×		२			०		३		

अन्तरा

ग	म	प	नि	नि	सां	सां	सां	–	सां
ऐ	ऽ	से	ऽ	बो	ह	त	दे	ऽ	खे
×		२			०		३		
प	नि	सां	–	मं	गं	सां	प	सां	सां
द	र	स	ऽ	मा	न	स	ह	ऽ	म
×		२			०		३		
प	–	ग	–	म	ग	–	सा	सा	सा
या	ऽ	प्र	ऽ	थ	वी	ऽ	प	र	जो
×		२			०		३		
प	नि	सां	–	मं	गं	सां	प	नि	सां
नी	क	ष्ट	ऽ	ब	खा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×		२			०		३		
प	ग	म	प	सां	प	म	ग	–	सा
ऽ	ऽ	ने	ऽ	अ	क	ल	स	ऽ	ब
×		२			०		३		

३—राग हुसेनी तोड़ी—झपताल

स्थायी

नि़
नि

सा	–	सा	–	रे	सा	नि़	ध़	प़	म
रं	ऽ	ज	ऽ	न	की	ऽ	ज	य	ए
×		२			०		३		
प	ध	नि	सां	पध	पम	प	ग॒ (म)	रे	रेग॒म
म	न	मु	ऽ	क्त	मे	ऽ	रां	ऽ	ऽ
×		२			०		३		
ग॒	रे	सा	–	सा	रे	म	प	–	ध
प	र	ता	ऽ	प	सों	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
×		२			०		३		
ध	प	ग॒	रे	रेग॒म	ग॒	रे	सा	–	रे
अ	हे	म	ऽ	द	जू	ऽ	के	ऽ	नि
×		२			०		३		
नि़	सा	सा	–	रे	सा	नि़	ध़		प़
रं	ऽ	ज	ऽ	न	की	ऽ	ज		य
×		२			०		३		

अन्तरा

म	प	नि	–	नि	सां	सां	सां	–	सां
तू	ही	दू	ऽ	र	क	र	त	ऽ	दु
×		२			०		३		
मं	गं	रें	सां	रें	सां	नि	ध	प	ध
खि	ऽ	य	ऽ	न	के	ऽ	दु	ऽ	ख
×		२			०		३		
सां	नि	ध	प	ध	नि	–	ध	–	म
पू	ऽ	जा	ऽ	क	रे	ऽ	स	ऽ	ब
×		२			०		३		
प	ध	नि	सां	पध	पम	प	ग	रे	रेगम
जी	व	जं	ऽ	त	ते	ऽ	री	ऽ	ऽ
×		२			०		३		
प	र	ता	ऽ	प	सो	ऽ			
×		२			०				

४-राग पंचम-एकताल

स्थायी

ग	-	सा	म	-	म	म	म	-	पग	म	ग
मौं	ऽ	द	मौं	ऽ	द	मो	से	ऽ	का	ऽ	न
×		०		२		०		३		४	
म	-	ध	ध	सां	-	सां	सां	नि	-	ध	ध
मो	ऽ	प	र	पी	ऽ	ह	र	वा	ऽ	ऽ	ऽ
×		०		२		०		३		४	
प	प	म	म	म	-	ध	ध	सां	-	सां	सां
ऽ	ऽ	तु	म	सौ	ऽ	त	न	के	ऽ	सि	ख
×		०		२		०		३		४	
रेंनि	-	ध	-	नि	-	ध	प	म	पग	ग	मं
ला	ऽ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	आ	ऽ	ज	आ	ऽ	ये
×		०		२		०		३		४	

अन्तरा

म	ध	सां	सां	-	सां	सां	रेंनि	नि	ध	-	म
न	ई	ऽ	रे	ऽ	ल	ग	न	ऽ	तो	ऽ	री
×		०		२		०		३		४	
म	-	ध	ध	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां	सां
ला	ऽ	ऽ	गी	ऽ	द	र	स	ऽ	स	र	स
×		०		२		०		३		४	

ध	सां	गं	–	मं	गं	–	सां	सां ध	–	सां	सां
अं	ग	मे	ऽ	ति	हा	ऽ	रे	छा	ऽ	ज	त
×		०		२		०		३		४	

सां	–	रें	नि	ध	नि	ध	प	म	म	पग	मं
बै	ऽ	र	न	की	ऽ	ऽ	ऽ	सु	गं	ऽ	ध
×		०		२		०		३		४	

५—राग विभास—झपताल

स्थायी

रे	–	रे	–	ग	ग	प	ग	रे	सा
कुं	ऽ	द	ऽ	न	से	ऽ	गा	ऽ	त
×		२			०		३		
प	ग	प	–	प	ध	प	ग	रे	सा
मु	ख	ते	ऽ	इं	दु	ल	जा	ऽ	त
×		२			०		३		
सा	–	ग	–	ग	प	प	ध	सां	सां
चा	ऽ	ल	ऽ	नि	र	ख	सु	ऽ	ध
×		२			०		३		
ध	प	प	ग	प	ध	प	ग	रे	सा
भू	ऽ	ल	ऽ	जा	त	म	रा	ऽ	ल
×		२			०		३		

अन्तरा

ग	प	सां	–	सां	सां	सां	सां	–	सां
प	शु	प	ऽ	क्षी	ग	त	चीं	ऽ	ता
×		२			०		३		

सा	रें	गं	-	पं	गं	रें	सां	धु	प
भ	इ	है	ऽ	बे	हा	ऽ	ऽ	ऽ	ल
×		२			०		३		

ग	रे	सा	ग	प	प	-	धु	सां	सां
द्	र	श	दे	ऽ	ख	ऽ	ते	ऽ	रो
×		२			०		३		

सां	सां	धु	प	प	धु	प	ग	रे	सा
न	र	ना	री	भ	ये	बे	हा	ऽ	ल
×		२			०		३		

७-राग जोग-त्रिताल

स्थायी

म

पी

म ग॒ सा –	सा नि॒̣ ग॒ सा	सा – – नि॒̣प̣	नि॒̣ प̣, नि॒̣ सा
ह र बा ऽ	को ऽ बि र	मा ऽ ऽ ऽ	ऽ यो, बि र
०	३	×	२
ग म प –	सां नि॒ प मग	म – ग॒सा ग॒	सा नि॒̣ प̣, म
ह न को ऽ	अ ति ऽ बिस	रा ऽ ऽ ऽ	यो ऽ ऽ, पी
०	३	×	२

अन्तरा

सा – ग म	प – प सां	सां नि॒प म ग	म ग॒सा ग॒ सा
का ऽ ऐ सी	चू ऽ क भ	ई ऽ मो से	आ ऽ ऽ ली
०	३	×	२
सा – ग म	प प प म	प मग म ग॒सा	ग॒ सा नि॒̣प̣ म
जो ऽ प ति	द र स छु	पा ऽ ऽ ऽ	ऽ यो ऽ पी
०	३	×	२

८–राग चंद्रकौंस–त्रिताल

स्थायी

पध	नि
ए	ऽ

ध	प	म	–	म	म	म	म	प	म	ग	–	म	प	प	म
बे	गीं	आ	ऽ	ब	न	क	र	प्या	ऽ	ऽ	ऽ	रे	ह	मा	ऽ
०				३				×				२			

ग	रे	रे	सा	नि़	सा	म	–	म	–	ग	-	गम	धनि	सां	नि
ऽ	ऽ	ऽ	रे	बि	र	ऽ	ऽ	हा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	स
०				३				×				२			

सां	–	सां	सां	सां	नि	ध	प	–	–	–	प	प	ध	पध	नि
ता	ऽ	व	त	त	न	म	न	ऽ	ऽ	ऽ	जा	रे	ऽ	ऽ	ऽ
०				३				×				२			

अन्तरा

ग	ग	म	म	ध	ध	नि	नि	सां	–	–	–	सां	–	सां	–
र	ट	त	र	ट	त	र	ट	ना	ऽ	ऽ	ऽ	भ	ऽ	ई	ऽ
०				३				×				२			

मं	गं	रें	सां	नि	ध	प	म	ग	म	(नि)ध	-	नि	सां	-	-
सू	खे	म	ग	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	जो	ह	ग	ऽ	भ	ई	ऽ	ऽ
०				३				×				२			

सां	नि	ध	प	प	-	-	-	प	प	-	-	प	ध	पध	नि
द	र	श	जी	या	ऽ	ऽ	ऽ	ज	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
०				३				×				२			

६–राग दुर्गा–त्रिताल

स्थायी

रें	प	प	मपध	म	रे	सा	रे	प	प	प	मपध	म	रे	सा	–
रू	ऽ	प	जों	ब	न	गु	न	ध	रो	ही	र	ह	त	है	ऽ
०				३				×				२			

सा	रे	म	प	(सां)ध	ध	सां	–	सां	–	ध	मपध	म	रे	सा	–
इ	न	भा	ऽ	ग	न	के	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	गे	ऽ
०				३				×				२			

अन्तरा

म	म	प	ध	सां	सां	सां	–	सां	ध	सां	रें	सां	–	ध	म
द	र	श	का	हु	ने	ए	ऽ	सां	ऽ	ची	क	ही	ऽ	है	ऽ
०				३				×				२			

म	मं	मं	रें	–	सां	सां	सां	रें	सां	ध	मपध	म	रे	सा	–
जो	ऽ	ना	मा	ऽ	ने	वा	हे	त्या	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	गे	ऽ
०				३				×				२			

१०–राग मालकौंस–एकताल

स्थायी

म
या

ग	सानि	ग	सा	नि	ध	म	-	ध	नि	सा	-
हीं	बि	ऽ	ध	हों	ऽ	त	ऽ	सि	ऽ	ऽ	ऽ
३		४		×		०		२		०	

गनि	सा	ध	नि	सा	सा	सा	सा	सा	सा	ग	सा
ध	ऽ	क	र	द	र	श	भ	ज	न	ह	र
३		४		×		०		२		०	

नि	ध	ध	नि	सा	सा	म	म	म	म	म	म
को	ऽ	जो	लों	घ	ट	में	प्रा	ऽ	न	त	न
३		४		×		०		२		०	

ध	म	ग	सा	सा	ग	म	ग	सा	नि	सा	म
म	न	ऽ	ऽ	सों	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	या
३		४		×		०		२		०	

अन्तरा

ग
ता

म	ध	-	नि	सां	सां	-	सां	सां	सां	नि	सां
न	से	ऽ	न	बै	जू	ऽ	बा	व	रो	धों	ऽ
३		४		×		०		२		०	

सां	-	गं	सां	नि	ध	मम	ध	नि	नि	सां	-
ढु	ऽ	ब	ऽ	खू	ऽ	हरि	दा	ऽ	स	स्वा	ऽ
३		४		×		०		२		०	

मं	गं	सां	-	सां	-	सां	सां	-	सां	सां	नि
मी	ऽ	ऽ	ऽ	बा	ऽ	ल	बु	ऽ	ध	ग	गो
३		४		×		०		२		०	

ध	म	ग	म	ध	नि	सां	-	सां	नि	ध	म
ऽ	श	ना	र	द	मु	नि	ऽ	स	र	स्व	ती
३		४		×		०		२		०	

-	ग	सा	-	ध	नि	ध	-	ग	म	ध	नि
ऽ	म	हा	ऽ	दे	ऽ	व	ऽ	इ	न	स	ब
३		४		×		०		२		०	

सां	–	सां	–	नि॒	सां	सां	सां	गं॒	सां	नि॒	ध॒
पा	ऽ	यो	ऽ	ना	ऽ	ऽ	म	ह	र	की	ऽ
३		४		×		०		२		०	

म	ध॒	नि॒	सां	सां	नि॒	ध॒	म	ग॒	नि॒	सा, म	
पू	ऽ	ऽ	ऽ	ज	न	सों	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ या	
३		४		×		०		२		०	

११–राग सूरदासी मल्हार–त्रिताल

स्थायी

— — ग॒ म	रे सा नि़ सा	रें — सां सां	(नि॒) प म प
ऽ ऽ ग र	ज ग र ज	च ऽ हुँ ओ	ऽ र ड र
×	२	०	३

सां — — —	नि॒ — म प	नि॒ ध प म	रें — सा —
पा ऽ ऽ ऽ	बे ऽ बि ऽ	ज री या ऽ	मै ऽ को ऽ
×	२	०	३

नि़ सा रे म	रे म प नि॒	प नि सां सां	— रें सांरें सांनि॒
नि स दि न	पि या बि न	क छु ऽ ना	ऽ सु हा ऽ
×	२	०	३

पनि॒ पम ग॒ म	रे सा नि़ सा
यें ऽ ग र	ज ग र ज
×	२

अन्तरा

म म म प	— प नि॒ प	नि सां — —	सां — — —
झीं गर वा बो	ऽ ले च हुँ	झ न न न	न न न न
०	३	×	२

नि	नि	सां	सां	रें	रें	सां	सां	सां	रें	सां	सां	नि	ध	म	प
प	व	न	च	ल	त	स	न	न	न	न	न	न	न	न	न
०				३				×				२			

रें	मं	रें	सां	-	रें	सां	नि	प	म	प	म	रे	सा	नि	सा
ऐ	ऽ	सी	ब	ऽ	र	खा	ऽ	रु	त	में	ऽ	मो	री	आ	ली
०				३				×				२			

रे	म	रे	म	प	-	नि	प	नि	सां	सां	सां	सां	-	सां	सां
प्रे	ऽ	म	पि	या	ऽ	को	ऽ	ला	ऽ	वो	को	ऊ	ऽ	स	म
०				३				×				२			

पनि	पनि	सांरें	सांनि	पनि	निप	निनि	पम	रेंम	रेंसा	ग	म	रे	सा	नि	सा
झा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ग	र	ज	ग	र	ज
०				३				×				२			

राग गौरी–त्रिताल

(रचयिता—विलायतहुसैन खाँ आगरे वाले)

स्थायी

सा,	सा	नि़	ध़	नि़	–	रे॒	ग	–	–	गम॑	पध॒	प	–	म॑प	–
ऽ	सू	र	त	मो	ऽ	ह	नी	ऽ	ऽ	दे	ऽ	खी	ऽ	ऽ	ऽ
३				×				२				०			

–	म॑	ग	रे॒	ग	–	नि़	रे॒	ग	रे॒	गम॑	पध॒	पम॑	गम॑	गरे॒	गरे॒
ऽ	प्री	त	म	की	ऽ	सु	ध	बि	स	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ई	ऽ
३				×				२				०			

अन्तरा

–	ग	म॑	ध॒	सां	–	सां	सां	नि	सां	नि	ध॒	ध॒नि	सां	नि	–
ऽ	प्रा	न	पि	या	ऽ	म	न	ब	स	क	र	ली	ऽ	नो	ऽ
३				×				२				०			

गं	–	रें	सां	नि	ध॒	प	प	ग	रे॒	गम॑	पध॒	पम॑	गम॑	गरे॒	गरे॒
ने	ऽ	क	न	ज	र	छ	ब	दि	ख	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
३				×				२				०			

सा,	सा	नि़	ध़	नि़	–	रे॒	ग
ई,	सू	र	त	मो	ऽ	ह	नी
३				×			

१—राग भीमपलासी–त्रिताल (मध्यलय)

(रचयिता—अजमतहुसैन खाँ 'दिलरंग')

स्थायी

					सां		सां						ति		
मप	निप	मग	म	प	नि	-	नि	-	पनि	पनि	सां	निसां	ध	-	प
सऽ	बऽ	मिऽ	ल	गु	न	ऽ	की	ऽ	चर	चाऽ	ऽ	ऽऽ	की	ऽ	जे
३				×				२				०			

म	म			सा		म									
ग	ग	रे	सा	नि़	सा	ग	म	पम	गम	पनि	सांरें	सांनि	धप	मग	रेसा
ता	से	ब	ढ़े	मा	ऽ	न	गु	माऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	नऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
३				×				२				०			

अन्तरा

म			सां	सां		नि						सां		नि	
ग	म	प	नि	नि	सां	सां	सां	निसां	मंगं	रें	सां	नि	निसां	ध	प
गु	रु	गु	नि	य	न	प	र	ताऽ	ऽऽ	न	न	क	रीऽ	ये	ऽ
०				३				×				२			

म				सा				सा		म					
ग	-	म	ग	रे	रे	सा	सा	नि़	सा	ग	म	पम	गम	पनि	सांरें
जा	ऽ	ने	ऽ	दि	ल	रं	ग	स	क	ल	ज	हाऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
०				३				×				२			

सांनि	धप	मग	रेसा	मप	निप	मग	म	
नऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	सऽ	बऽ	मिऽ	ल	इत्यादि
०				३				

२-राग धूलिया सारंग-त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

रेरे
आऽ

सानि़ सा	रे	प		म	-	रे	-	-	-	रे	म	म	-	प,	म
लीऽ	मो	रे	घ	र	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	आ	ऽ	ऽ	ऽ	ये,	कु
३				×				२				०			

प	(सां) नि	सां	सां	रें	नि	सां	प	ध	म	प	रे	म	रे	(नि) सा,	रेरे
ऽ	ष्ण	ऽ	मु	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री	ऽ,	आऽ
३				×				२				०			

अन्तरा

म
ब

प	नि	प	(सां) नि	(नि) सां	-	-	-	सां	सां	(सां) नि	निसां	-	सां	सां,	नि
न्सि	या	ऽ	ब	जा	ऽ	ऽ	ऽ	व	त	दि	लऽ	ऽ	रं	ग,	जि
३				×				२				०			

				नि								म			
सां	नि॒सां	रें	सांरें	सां	-	नि॒	प	ध	म	प	-	प	-	-,	म
य	राऽ	ऽ	लुऽ	भा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ये	ऽ	ऽ,	नं
३				×				२				०			

	सां													नि	
प	नि॒	सां	सां	रें	नि॒	सां	प	ध	म	प	रे	म	रे	सा,	रेरे
द	को	ऽ	खि	ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	री	ऽ,	आऽ
३				×				२				०			

३–राग पूरियाधनाश्री–झूमरा (विलम्बित)

स्थायी

मं   ध   मं   मं

प ध ग ,ग मं ध धनिरें,निध | नि ध प प ध प, पधपप

का हे ऽ, ,गु मा ऽ नऽऽ,कऽ | रे ऽ ऽ बा व रे, याऽऽऽ

                                            ×

मंग मं रे ग रे सा, रेरेसासानि रे गरे,गमंप, धपमं–ध

ऽऽ ज ऽ ऽ ग में, जऽऽऽऽ ग नऽ,हींऽऽ, एऽऽऽऽ

नि––रें निध नि ध प ||

कऽऽऽ सऽ मा ऽ न ||

अन्तरा

                नि   नि   रें

मं धमं ध सां सां | सां – रें सां, सांरेंसांसां नि रें गं रें गं

ग रऽ ब ऽ की | बा ऽ त से, माऽऽऽ ऽ न घ ऽ टे

                                  ×

              नि

रें सां, सां रें निध नि ध – प, प – धग मं ध

ऽ ऽ, दि ल ऽऽ रौं ऽ ऽ ग, जा ऽ येऽ वि ऽ

नि रें–निध नि ध प |

ध्या ऽऽऽऽ ग्या ऽ न |

४-राग पूरियाधनाश्री-त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

	,मंप	धप	मंग	मं	ध	रें	निध	नि	ध	-	प	पमं	ध	प	-
	,कोऽ	यऽ	लिऽ	याऽ	ऽ	म	दऽ	बो	ऽ	ऽ	ल	बोऽ	ऽ	ली	ऽ
				३				×				२			
मंप	धप	मं	ग	मं	रे	ग	रे	गमं	धमं	ग	मं	ग	रे	सा	-
अंऽ	बुऽ	वा	की	डा	ऽ	र	रि	झाऽ	ऽऽ	वे	स	ब	न	को	ऽ
०				३				×				२			

अन्तरा

मं	ध	मं	ग	मं	धमं	धनि	सां	(नि) सां	-	नि	रें	गं	रें	सां	सां
दि	ल	रं	ग	कू	ऽऽ	केऽ	ऽ	डा	ऽ	र	डा	ऽ	र	प	र
०				३				×				२			
सां	सां	सां	नि	रें	नि	(प)	प	पमं	गरे	ग	मं	ग	रे	सा	-
र	स	के	ऽ	बो	ऽ	ल	सु	नाऽ	ऽऽ	वे	स	ज	न	को	ऽ
०				३				×				२			

५-राग मालकौंस-आड़ाचौताल (विलम्बित)

स्थायी

ग॒   ग॒ म
सा ग॒,मा   ग॒म,ग॒   मध॒,म | म - म,   मध॒मम   ग॒   म,मध॒
एऽ,ऽ   ऽऽ,ऽ   बेऽ,गि | आ ऽ ये,   प्राऽऽऽ   ऽ   न,अऽ
×

ग॒   नि॒   म ध॒ नि॒ सां नि॒
म ग॒ - सा, सानि॒ ग॒ - सा, ग॒ म ध॒ नि॒ सां सां
धा ऽ ऽ र, मोऽ ऽ ऽ रे, म न चिं ऽ ऽ ता

नि॒   नि॒   नि॒
- सां सां, ग॒ंसांसां ध॒ म ध॒ नि॒ सांनि॒नि॒ ध॒ म ग॒
ऽ स ब, दूऽऽ ऽ ऽ र भ ईऽऽ ऽ ऽ ऽ

ग॒
म ग॒ - सा ||
ऽ ली ऽ ऽ ||

अन्तरा

म ध़ नि़ सां
ग़ म ध़ नि़ | सां सां नि़सां सां, नि़ नि़ सां सां,
दि ल रं ग | दु ख ऽऽ वा, स ग ऽ रे,
×

नि ध नि सां नि
ध़नि़सांगं़मं गं़ – सां, गं़सांसां ध़ नि़ नि़ सां सांगं़मं
बऽऽऽऽ ह ऽ र, गऽऽ ऽ ये ऽ, पि छ ली दीऽऽ

नि ध
गं़ – सां गं़ सां, सां गं़सांसां ध़ म नि़ध़ नि़ ध़ म ध़मम
साऽऽ स ब, बि सऽऽ ऽ ऽ रऽ ग ई ऽ ऽऽऽ

म
ग़ म ग़ सा
ऽ ऽ ली ऽ

६—राग मालकौंस त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

				ग				नि		सा					
नि	सा	सा	गम	सा	सा	ग	सा	ध	ध	नि	नि	सा	सा	सा	सा
नि	स	नि	सऽ	दि	न	दि	न	घ	री	घ	री	प	ल	प	ल
×				२				०				३			

म		नि	सां												
ग	म	ध	नि	सां	-	सां	सां	सांनि	धनि	सांगं	सांनि	धनि	धम	गम	गसा
त	र	प	त	बी	ऽ	त	त	मोऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	हेऽ	ऽऽ
×				२				०				३			

अन्तरा

म	म			नि	नि	सां	सां								
ग	ग	म	म	ध	ध	नि	नि	सां	सां	सां	सां	सां	निसां	सां	सां
सां	व	री	सू	र	त	मो	ह	नी	छ	ब	दि	ख	लाऽ	व	त
×				२				०				३			

नि															
ध	नि	सां	मं	गं	-	सां	सां	सांनि	धनि	सांगं	सांनि	धनि	धम	गम	गसा
स	प	ने	ऽ	दी	ऽ	ख	त	मोऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	हेऽ	ऽऽ
×				२				०				३			

७–राग मलुहाकेदार–त्रिताल (मध्यलय)

स्थायी

धऺ	निऺ	सा	रे	सा	निऺ	धऺ	पऺ	धऺ	मऺ	पऺ	निऺ	सा	सानिऺ	रे	सा
ड	ग	र	च	ल	त	मो	री	ग	ग	रि	ढ	र	काऽ	ऽ	ई
०				३				×				२			

सा	सा	म	म	प	प	पध	पप	म	–	रे	सा	(धऺ)निऺ	सा	रे	सा
ऐ	सो	ये	नि	ड	र	चौंऽ	ऽऽ	च	ऽ	ल	ब	न	वा	ऽ	री
०				३				×				२			

अन्तरा

प	प	प	(प)सां	सां	सां	सां	नि	ध	नि	सां	रें	सां	सां	ध	प
नि	क	सी	घ	र	सों	दि	ल	रं	ग	नी	र	भ	र	न	को
०				३				×				२			

मं	गंमं	रें	सां	–	रें	सां	सां	सां	ध	प	म	रे	(धऺ)निऺनिऺ	सारे	सा
बा	ऽऽ	ट	रो	ऽ	के	ठा	डो	नं	द	को	आ	ली	खिऽ	लाऽ	री
०				३				×				२			

८-राग देस-धीमा त्रिताल

स्थायी

रे
म प पधपम,पनिसांरें - सांनिध- -नि पध (स) गग
बि ज लीऽऽऽ,ऽऽऽऽ ऽ ऽऽऽऽ ऽऽ चम के ऽऽ

म प
-रे निसा | निसारेगपम-- गरेग- रे, नि सा रे म प
ऽऽ डर | पाऽऽऽऽऽऽऽ ऽऽऽऽ वे, अ ब सो रा पि
×

रें
प, प पधपधपम पनिसांरें ध ,नि ध प, ध म ग रे,
यु ग योऽऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽ ,ऽ है ऽ, ऽ ऽ ऽ ऽ,

रेगम,ग म - म रे |
ऽऽऽ,बि दे ऽ स ऽ |

अन्तरा

प ध म प नि सां - निसां | सां - नि सां निसांरेंगंमं
घ न ग र ज त ऽ ऽऽ | बा ऽ द र वाऽऽऽ
×

गं मं,गंरें गं,रेंसां रें,सांनि सां निसां, म प नि सां
ऽ ऽ,ऽऽ ऽ,ऽऽ ऽ,ऽऽ ऽ कारे, मु र ला ऽ

नि सां
सां सां रें - नि ध प ध,म प - प, म प
क र त ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ,पु का ऽ र, जा ऽ

नि नि सां निसांरें ध--नि ध प पध (म) ग रे
य को ई ऽऽऽ ऽऽऽऽ दे ऽ इत ना ऽ ऽ

रेगम,ग म - म रे |
ऽऽऽ,सं दे ऽ स ऽ |

——*——

अनुक्रमणिका